ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री० लक्ष्मीचन्द जैन, एम० ए०

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

द्वितीय संस्करण
जून १९५८ ई०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२७

शेर-ओ-सुख़न

[मौजूदा दौरके ग़ज़लगो शाइरे-आजम]

भाग तीसरा

पुरातन शाइरीका कायाकल्प, लोकोपयोगी भावोका समावेश, पवित्र प्रेमकी आराधना, नारीका सम्मान और १९०१ से १९५८ तककी घटनाओंका गजलपर प्रभाव



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

द्वितीय संस्करण

इस द्वितीय सस्करणमे अनेक सशोधनोके अतिरिक्त निम्नलिखित परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन हुए हैं—

१—६७ पृष्ठोमे नये सस्मरण लिखे गये हैं और कलाम बढाया गया है।

२—'वहशत' कलकतवी और 'अमजद' हैदराबादीका परिचय एवं कलाम पुनः लिखा गया है।

३—३७५ नये मायने, कई उपयोगी टिप्पण और अशआर बढाये गये हैं।

४—इस संस्करणमे 'शब्द-कोश' नही दिया गया है। वह उपयोगिताकी दृष्टिसे पृथक पुस्तकाकार छपेगा।

५—अली अख्तर 'अख्तर' और 'रज्म' रुदौलवीका बहुत सक्षेपमे प्रथम सस्करणमे उल्लेख हुआ था। अत' द्वितीय सस्करणमे न देकर, उनका प्रसगानुसार कही अन्यत्र उल्लेख किया जायगा।

६—प्रथम सस्करणमे २६३ पृष्ठ थे, द्वितीय सस्करणमें २७५ पृष्ठ हो गये हैं।

१८ जून १९५८ ई०

—व्यवस्थापक

साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्रीको

अनेक शुभ भावनाओ एवं

शुभाशीर्वादोके साथ

सस्नेह भेंट



गोयलीय



विषय-सूची

सूचनाएँ

१—पहिले भागमें—उर्दूके प्रारम्भकालसे १९वी सदीके अन्तिमकाल तक ख्याति पानेवाले ग़ज़लोंके माने हुए मुख्य-मुख्य उस्तादोका परिचय एव कलाम और उस युगकी शाइरीपर विस्तृत अध्ययन दिया गया है।

२—दूसरे, तीसरे, चौथे भागमें—उनके योग्य उत्तराधिकारी वर्त्तमान गज़ल-गो शाइरोका परिचय एव कलाम दिया गया है।

३—पाँचवें भागमें—गज़लका क्रमबद्ध इतिहास सिंहावलोकन और मुशाइरोका रूप प्रस्तुत किया गया है।

४—उक्त २, ३, ४ भागोमें वर्त्तमान युगीन उन वयोवृद्ध शाइरोंका उल्लेख हुआ है, जो १९वी शताब्दीमें पैदा हुए और वीसवी शताब्दीके प्रारम्भिक युग १९१५-२० ई० तक ख्यातिके शिखरपर पहुँच गये और मुसल्लिम-उल-सवूत (प्रामाणिक) उस्ताद समझे गये। जिन्होंने पुराने उस्तादोंकी आँखें देखी और जिनके हजारों शिष्य वर्त्तमान भारत और पाकिस्तानमे मशहूर हैं।

५—इनमें-से कुछ पुरातन परम्पराके अनुयायी हैं, तो कुछ नवीनताके उपासक, और कुछ ऐसे भी है, जिन्होने प्राचीनता और नवीनताका अत्यन्त कलापूर्ण ढगसे सम्मिश्रण किया है। ग़रज सभी अपने-अपने रगके माने हुए उस्ताद हैं। इन तीनो भागोमें हर रगकी अनुपम गगा-जमुनी छटा देखनेको मिलेगी।

६—१९१५ ई० तकका काल एक तरहसे पूर्ववर्त्ती शाइरोका अनुकरण युग रहा है। उस समयतक ग़ज़लोमें कोई विशेष परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ हाली-ओ-आजादके नज्म-आन्दोलनके जोरके कारण ग़ज़ल कुछ जम्हाइयाँ एवं करवट-सी लेती हुई मालूम होती हैं।

१६१५ ई० के बाद गजलमे स्पष्टत. जागृतिके चिह्न झलकने लगते हैं। दोनों महायुद्धोकी विभीषिकाओं, असहयोग, खिलाफत, किसान-मजदूर-आन्दोलनो, साम्प्रदायिक-सघर्षों और स्वराज्य-प्राप्ति एव भारत-विभाजनके फलस्वरूप जो क्रान्तियाँ हुई, उन सबका गजलपर भी प्रभाव पडा और उसमे उत्तरोत्तर परिवर्तन एव परिवर्द्धन होते गये। गजल अपने प्रारम्भिक कालसे १६५७ ई० तक किस स्थितिसे गुजरकर कहाँ जा पहुँची है ? उसका प्रारम्भमें कैसा रूप था और वर्त्तमानमें कैसा काया-कल्प हुआ है। यह सब तीनो भागोमें देखनेको मिलेगा। फिर भी हमने पाठकोकी सुविधाके लिए पाँचवे भागके सिंहावलोकनमें तुलनात्मक अध्य-यन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

७—१६वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे विशेप ख्याति पानेवाले उस्ताद—अमीर, जलाल, तसलीम, दाग, हाली आदिके हजार-हा शिष्योमे-से हमने केवल चन्द प्रसिद्ध शाइरोका परिचय एव कलाम दिया हैं। इससे अधिकका परिचय देना हमारी सामर्थ्य और शक्तिके परे था। वकील मीर—

उम्र थोड़ी है और स्वाँग बहुत

८—ध्यान रहे हमने इन २, ३, ४ भागोमें उन्ही गजलगो शाइरोका परिचय दिया है, जो १६वी शताब्दीमे उत्पन्न हुए और १६२० ई०के पूर्व ही उस्तादीको मसनदपर आसीन हो गये। इसी युगके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गजलगो उस्तादो और १६२० ई०के बाद ख्याति पानेवाले गजल और नज्मगो शाइरोका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और शाइरीके नये मोड़में दिया जा रहा है।

६—यद्यपि कई शाइर प्रस्तुत २, ३, ४ भाग लिखनेसे पूर्व और अधिकांश शाइर पुस्तक लिखते-छपते जन्नतनशी हो गये हैं। फिर भी हमने उनका उल्लेख वर्त्तमान युगीन शाइरोमें किया है, क्योकि वे सब इसी बीसवी सदी—दौरे-जदीद—के शाइर हैं। इसी युगमे वे परवान चढे, उस्तादी हैसियत प्राप्त की और फले-फूले।

१०—प्रस्तुत २, ३, ४ भागोमे वर्णित शाइरोमें—साकिब, हसरत, फानी, असगर, जिगर और सीमावका परिचय संक्षेपमें शेरो-शाइरीमें दिया जा चुका था।। फिर भी ऐतिहासिक क्रमको वनाये रखनेके लिए इनका उल्लेख इन तीन भागोमें भी किया गया है। इनके वगैर इतिहास लँगडा-लूला रहता। अत. हमने इनका परिचय और कलाम शेरो-शाइरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन देनेका प्रयत्न किया है।

११—शाइरोका कलाम उनकी जिन कृतियोंसे चुना गया है, उनका नाम कलामसे पूर्व या वादमें दे दिया गया है। कृतियोंके अतिरिक्त उनका ताज़े-से-ताज़ा कलाम भी देनेका प्रयास किया गया है, और वह जिन पत्र-पत्रिकाओंसे सकलन किया गया है, उनका भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। जिन शाइरोके दीवान मुद्रित नही हुए, अथवा हमें प्राप्त न हो सके, उनका कलाम हमने जिन तज़किरो और पत्रोंके अख्वारोंसे खोजा है, उनके नाम भी कलामके साथ दे दिये है। उन सवकी तालिका पृथकमे नही दी गई है।

१२—अक्सर हर शाइरके कलामके अन्तमें हमने तारीख दी है, ताकि लेखनकालका पता लग सके। कई जगह वहुत नज़दीकी तारीखें अंकित हैं। उतने वक्फ़ेमे वह मज़मून लिखा ही नही जा सकता। इसकी वजह यही है कि कई-कई मज़मून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये, परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जव पूर्ण हुए तो लगातार होते चले गये और तभी मज़मून-समाप्तिकी तारीख डाल दी गई। शाइरोंका कलाम पढा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये है और उन्हें वादमें क्रमवद्ध कर दिया गया है। ये २, ३, ४, ५ भाग १९४९ ई०में लिखने शुरू किये गये थे और दिन-रातके लगातार परिश्रमके वाद १९५४ ई०में पूर्ण हो सके है।[1]

---

[1]द्वितीय संस्करणके संशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धनमें १९५७ का पूरा वर्ष व्यतीत हुआ है।

१३—इनकी आदतों के लिए हमें आज [illegible] गया हो गये। काफ़ी प्रयत्न करनेके बाद कुछ चित्र [illegible] और [illegible] भी ऐसी स्थिति कि उनके [illegible] बन सके। अतः [illegible] चित्रोंके ब्लॉक [illegible] बनाये गये, [illegible] हूँ।

१४—अधिकांश शायरोंका परिचय एवं कलाम इस पुस्तकमें अभि-लाषानुसार दिया नहीं जा सका है, न उनपर विशेष प्रकाश ही डाला गया है। इसका कारण यही है कि [illegible] नहीं। इसके अलावे भी सीमित साधन हैं। लिखते हुए भी ४ वर्ष व्यतीत हो गये थे। [illegible] जब [illegible] देने लगता था, तब भय हो उठता था कि [illegible] छपेंगे भी या नहीं। अतः अधिक प्रतीक्षा न करके जहाँ-जहाँ जितना भी कलाम मिल सका, संकलन करनेका यथाशक्य प्रयत्न किया गया है। पूर्ण परिश्रम करने और पूरी सावधानी रखते हुए भी अज्ञान जनित न जाने कितनी त्रुटियाँ रही होंगी? मैं स्वयं अपनी त्रुटियों और अल्पज्ञतासे परिचित हूँ। फिर भी पाठक इसे अपनायें तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है—

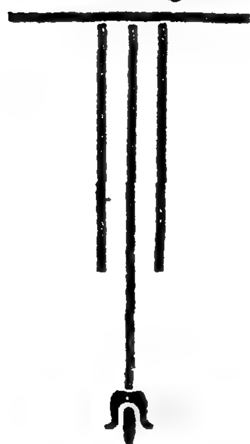
"यह सब आपकी इनायत है।
वरना मैं क्या, मेरी हक़ीक़त क्या?"

डालमियानगर
७ जनवरी १९५४

अ. प्र. गोयलीय

ग़ज़ल-गो शाइरे-आज़म

वर्त्तमान युगीन



देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शाइर



'शाद' अज़ीमाबादी

[१८४६—१९२७ ई०]

ख़ान बहादुर नवाब सैयद अलीमुहम्मद 'शाद' १८४६ ई०मे उत्पन्न हुए और १९२७ ई०में समाधि पाई। नियाज़ फतेहपुरीके शब्दोंमें—
"शाद ब-लिहाज़ तग़ज़्ज़ुल बडे मर्तबेके शाइर थे। उनके यहाँ मीर-ओ-दर्दका गुदाज़, मोमिनकी नुक्तासजी, ग़ालिबकी बुलन्द परवाज़ी और अमीर-ओ-दाग़की सलासत सब एक ही वक्तमें ऐसी मिली-जुली नज़र आती है कि अब ज़माना मुश्किलसे ही कोई दूसरी नज़ीर पेश कर सकेगा?"[1]

'शाद' अज़ीमाबाद (पटना सिटी)के रहनेवाले थे। आप ख़्वाजा मीर 'दर्द'की शिष्य परम्परामें हुए हैं। अत आपके कलाममे भी वही असर नज़र आता है। कहीं-कहीं तत्कालीन लखनवी रंगकी भी झलक मारती है। आप मीर 'अनीस'से भी काफी प्रभावित नज़र आते हैं।

शाद देहलवी-लखनऊ ज़बानके कायल नही थे। यही कारण है कि उनके कलाममे यत्र-तत्र मुहावरो और शब्दोका प्रयोग उक्त स्थानोकी परम्परासे भिन्न हुआ है।

'शाद' ख़्वाजा 'दर्द' स्कूलके स्नातक थे। इसीलिए हमने आपको

---

[1]इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० १५६।

मजलिसे-देहलीमे उच्चासन दिया है। आपका कलाम भी ईश्वरीय-प्रेम, आध्यात्मिकता और दार्शनिकतासे ओत-प्रोत है। आपका रगे-शाइरी ख्वाजा 'आतिश'[1] से बहुत कुछ समानता रखता है।

'आतिश' और 'शाद' दोनो ही अपने-अपने युगमे बहुत बुलन्द मर्तबेके शाइर हुए है। दोनोंके विचार, भाव और अन्दाजे-बयान मिलते-जुलते है। दोनोंकी अक्सर गजलें हमतरही ऐसी है कि अगर उनमे-से उपनाम निकाल दिये जाये तो कौन गजल किसकी है, निश्चयपूर्वक कहना आसान नही। जाहिरमे दोनो लखनवी, किन्तु भावों और विचारोकी दृष्टिसे अतरगमे देहलवी है। दोनों ही सूफियाना विचारके है।

इतनी समानता होते हुए भी दोनोका रग भिन्न-भिन्न है। 'आतिश'के यहाँ व्यग्य और तीखापन इस गजबका है कि कुछ न पूछिए। उनके कलाममें गर्मी, और अन्दाजेबयानमें तडप इस बलाकी है कि कोई भी शाइर उनका हमसर नज़र नही आता। 'आतिश'के यहाँ दुःख-दर्द, पीड़ा-व्यथामे भी मुसकान भरी होती है। उनके गममे भी एक लहक और चहक होती है—

क़फ़समें भी है वही चहचहा गुलिस्ताँका

रंजो-ग़म

शादके यहाँ रजो-गम, दर्दो-अलम, व्यथापूर्ण है। 'आतिश' इस विषयमे 'ग़ालिब'के अधिक समीप है और 'शाद' 'मीर'के नजदीक है। 'आतिश' रंजो-गममे बिलखते नही, यहाँ तक कि वे हृदयकी पीड़ाको व्यक्त करना भी अपनी शानके खिलाफ समझते है—

जौरो-जफाये-यारसे[2] रंजो-महन[3] न हो।
दिलपर हुजूमे-गम हो, जबींपर शिकन न हो॥

---

[1]'आतिश' का परिचय एवं कलाम 'शेरो-सुखन' प्रथम भागमें दिया जा चुका है; [2]प्रेयसीके अत्याचार करनेपर; [3]दुखी और व्यथित न हो।

'शाद' व्यथा-पीड़ाके आँसुओंको पीनेके बजाय, उन्हे प्रकट करना आवश्यक समझते हैं—

ख़मोशीसे मुसीबत और भी संगीन होती है।
तड़प ऐ दिल तड़पनेसे ज़रा तसकीन होती है॥

यूँ ही रातोंको तड़पेंगे, यूँ ही जाँ अपनी खोयेंगे।
तेरी मर्ज़ी नहीं ऐ दर्देदिल! अच्छा! न सोयेंगे॥

मगर वे अन्य शाइरोंकी तरह सरे आम हाय-हाय करनेके पक्षपाती नही—

तड़पना है तो जाओ जाके तड़पो 'शाद' ख़िलवतमें।
बहुत दिनपर हम इतनी बात गुस्ताख़ाना कहते हैं॥

उच्च भाव

इन दोनोंके कलाममें उल्लेखनीय विशेष अन्तर यह है कि 'आतिश'के यहाँ पतित भाव, हक़ीर विचार और बाज़ारी इश्क़ अधिकांश रूपमें पाया जाता है। लेकिन 'शाद'के कलाममें इतनी सजीदगी, बडप्पन और सुथरापन पाया जाता है कि वे उर्दू-शाइरोमे सर्वश्रेष्ठ नज़र आते हैं।

उर्दूके सर्वश्रेष्ठ शाइर 'मीर' भी अपना दामन इब्तिज़ाल (कमीने-ज़लील विचारो) से न बचाये रख सके। बकौल किसीके "उनके दीवानमे लौंडे भरे पड़े हैं" 'ग़ालिब' भी धौल-धप्पेपर उतारू हो जाते हैं—

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन॥

और 'मोमिन'का तो माशूक़ ही हरजाई नही, स्वय भी हरजाई थे हमेशा मृगनयनियो (ग़िज़ालचश्मो) को फाँसते रहे—

आये ग़िज़ालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मैं, गिरफ़्तार कम हुआ ॥

तात्पर्य यह कि प्राचीन और अर्वाचीन प्रायः सभी शाइरोंके कलाममें अधिकांश यह दोष पाये जाते हैं। लेकिन 'शाद'का कलाम इन दोषोंसे मुक्त है। उनके यहाँ 'वोसा' (चुम्बन) जैसा वदनाम और हकीर शब्द भी इतनी वुलन्दीसे नज्म हुआ है कि अन्यत्र मिसाल नही मिलती।

वोसए-संगे-आस्ताँ[1] मिल न सका हज़ार हैफ़।
आगे क़दम न वढ़ सका हिम्मते-सरफराज़का[2] ॥

उक्त शेरकी पवित्रता और मर्तवेको वही अनुभव कर सकता है, जिसने कभी संगे-आस्ताँके वोसा लेनेका प्रयत्न किया हो, परन्तु किसी कारण सफलता न मिली हो। राष्ट्रपिता वापूके शहीद किये जानेपर उनकी चिताकी राख लेनेके लिए लाखों नर-नारी लालायित थे। एक-दूसरेको धकेलकर वापूकी राखको मस्तकसे लगानेको कई लाख नर-नारी वढ़ रहे थे, परन्तु कितनोको सफलता मिली? जो भी राख न पा सके, अपने भाग्यको कोस रहे थे। जव किसीकी ऐसी स्थिति हो, तभी 'शाद'के उक्त शेरकी महत्ता प्रकट हो सकती है। आस्तानए-यार या शहीदोंकी समाधियोको वोसा देना 'शाद'की अछूती और उच्च भावना है—

शहीदाने-वफ़ाकी ख़ाक, क्या अक्सीरसे कम है ?
न हाथ आये कदम, वोसा तो ले जाकर मज़ारोंका ॥

यह वात 'ग़ालिव' और 'आतिश'को कहाँ नसीव ? 'ग़ालिव' तो स्वयं ही अपने इस हकीर ख़यालसे भयभीत नज़र आते है—

---

[1]माशूक़की चौखटके पत्थरका चुम्वन ; [2]अभिमानीके साहसका।

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसा मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा ॥

यारके पाँवका बोसा लेना या जहाँ उसने पाँव रखे हो, उस आस्ताँका बोसा लेना ज़ाहिरमें यकसाँ नज़र आते हैं। मगर 'शाद'के शेरमें श्रद्धा, भक्ति और पवित्र-प्रेमकी झलक है, तो ग़ालिबके यहाँ वासनाकी गन्ध; और 'आतिश' तो अपने इस शेरके प्रतिबिम्बमें सरीहन अय्याश मालूम होते हैं—

बोसेबाज़ीसे मेरी होती है ईज़ा उनको।
मुँह छिपाते हैं जो होते हैं मुहासे पैदा ॥

और एक 'शाद' हैं कि उनकी अभिलाषा अधिक-से-अधिक इतनी बढ़ती है कि उनकी ख़ाक यारके परिधानका बोसा ले सके तो अपनेको कृतकृत्य समझे—

बोसा लेनेका मेरी ख़ाकको भी अरमाँ—ताब उठनेकी कहाँ ?
जामे-ज़ेबीका भला ! ऐ सनमे-तंग-क़बा—कुछ तो दामनको झुका ॥

पाक इश्क़

यही पवित्र और उच्च इश्क़की झाँकियाँ 'शाद'के कलाममें दृष्टिगोचर होती हैं। स्वयं भी फ़र्माते हैं—

मेरा दीवाँ तो यसरिब है जहाने-पाकबाज़ोंका।
पढ़े कल्मा ज़बाने-फ़ारिस इस बाँगे-हिजाज़ोंका ॥

ग़ज़ल इतनी नाज़ुक और कोमल कला है कि तनिक-सी चूकसे वह आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है। शब्दोंके हेर-फेर और भावोंके उतार-चढ़ावसे इसमें पवित्र-से-पवित्र और पतित-से-पतित विचारोंका प्रतिबिम्ब झलकता है। 'आतिश' जैसा बुलन्द मर्तबेका शाइर जब ऐसा घटिया शेर कह सकता है—

शबे-विसालमें खोले कबाए-यारके बन्द।
कमरसे खींचके पटकेको हमने दे मारा॥

हाथ मलता हूँ जो मैं देखके सीनेका उभार।
कहते हैं "तोड़िए जिनको यह वोह नारंज नहीं"॥

जब 'आतिश' जैसे दरवेशका यह आ़लम हो, तब 'दाग़'का तो ज़िक्र ही क्या—

यह लुत्फ है कि दुपट्टा उड़ा रही है हवा।
छुपा रहे हैं जो सीना कमर नहीं छुपती[1]॥

ऐसे ही दूषित और विषाक्त भावोके कारण गजल बदनाम हो गई। इसकी अश्लीलतासे भले आदमी दामन बचाकर निकलने लगे। इसमें दुराचार और कामुकताके ऐसे घिनौने कीडे बिलबिलाने लगे कि लोग इसकी परछाईंसे भी दूर भागने लगे। इस छुतहा रोगसे बचानेके लिए 'हाली' और 'आज़ाद'ने भरसक प्रयत्न किये। लोगोका अनुमान था कि गज़ल अब जीवित नही रहेगी, परन्तु उसकी ख़ुशकिस्मती देखिए कि कुछ ऐसे लोग पैदा हो गये, जिन्होने गज़लको पुनर्जीवन ही प्रदान नही किया, अपितु उसे अमर कर दिया। उन्ही सपूतोंमें एक 'शाद' अ़ज़ीमाबादी है।

'शाद'का इश्क बाज़ारी इ़श्क न होकर पवित्र और उच्च है। जो शमअ़ सरेबाज़ार जलती है, ऐसी बेहयापर 'शाद' जल मरनेके कायल नही—

जो शमअ़ हुआ करती है रोशन सरे-बाज़ार।
उस शमअ़पे गिरता नहीं परवाना हमारा॥

'शाद' इश्कको जीका रोग नही समझते, बल्कि उनका विश्वास है कि इश्कसे इन्सानमे इन्सानियत आती है—

---

[1]उक्त अंशके लिखनेमें अप्रैल १९५१के 'निगार'में प्रकाशित सैयद शाह अताउर्रहमानके लेखसे हमें पर्याप्त सहायता मिली है।—गोयलीय

नहीं रहते रिया[1]-ओ-क़ुब्ह[2] फिर भूलेसे भी दिलमें ।
मुहब्बत यारको इन्सां बना देती है इन्सांको ॥

'शाद' भौंरे या तितलीके इश्कको इश्क नहीं समझते । वे तो जिसके हो गये, जीवनभर उसे निभाना ही सच्ची आशिकी समझते हैं ! मानवी प्रेमके साथ-साथ कोई ईश्वरीय प्रेमका भी दम भरे तो वह उसे कुफ़्र समझते हैं—

मशरबे-इश्कमें[3] दिला[4] ! कुफ़्र है यारसे रिया[5] ।
दिलको है गर बुतोंसे इश्क, जिक्रे-खुदाकी वजह क्या ?

'शाद' इश्कसे तंग आकर मरना नहीं चाहते, बल्कि वह तो उम्रे-दराज़ चाहते हैं—

मुझ-सा फकीर आपसे राज़ो-नियाज़[6] हो ।
या रब ! हयाते-इश्के-मुहब्बत दराज़[7] हो ॥

और वे अपने महबूबको इधर-उधर खोजना नादानी समझते हैं । उनका विश्वास है कि उनका प्रियतम सर्वत्र व्याप्त है—

गुबार आईनए-दिलका साफ हो तो फिर ।
उन्हींको शक्ल नुमायां रहे जिधर देखो ॥

और जब ध्यानमें प्रियतम आगया, तब वह ध्यान कैसे तोड़ा जाय ?

है जिसमें ध्यान काबए-अबरू-ए-यारका[8] ।
ऐसी नमाज़ जल्द इलाही अदा न हो ॥

---

[1]ज़ाहिरदारी, दिखावटीपन; [2]बुराई; [3]प्रेमधर्ममें; [4]ऐ दिल; [5]दिखावटी प्रेम; [6]अन्तरंग वार्तालापमें सम्मिलित; [7]प्रेमका जीवन लम्बा हो; [8]यारकी भवें रूपी काबेकी महराबका ।

और फिर एक दिन ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि प्रेमी सुध-बुध बिसारकर अपनेमे खो जाता है। नमाज़-रोज़े सब तर्क हो जाते है—

दिल है किधर खिंचा हुआ, महव है किसकी यादमें ?
क्या कहें इसकी वजह हम, तर्क हुई नमाज़ क्यों ?

आशिक़ कितना बावला है कि अपने प्रियतमकी खोजमे मारा-मारा फिरता है। सर्वत्र ढूंडता है, परन्तु अपना अन्तस्थल नही खोजता, हायरे भोलापन—

इसी चूकने हमें खो दिया, कहें 'शाद' किससे यह माजरा ?
कटी उम्र जिनकी तलाशमें, वह हमीं थे हमसे जुदा न थे ॥

जैन-पुराणोके अनुसार जब तीर्थंकर ससारमे जन्म लेते है, तो इन्द्र उनके अतुल रूपको निहारनेके लिए एक हजार नेत्र बना लेता है, फिर भी तृप्ति नही हो पाती। 'शाद' भी अपने हबीबको यूँ ही देखना चाहते है—

यही है धुन कि तेरी जलवागाहमें जाकर।
हज़ार आँखें हों, और सबसे यारको देखें ॥

'लिपटने' शब्दकी उर्दू-शाइरोने जो मिट्टी खराब की है, वह किसीसे पोशीदा नही। औरोको तो जाने दीजिए, 'अकबर' इलाहाबादी-जैसा मुहज़्ज़ब आदमी यह कहनेसे नही चूका—

लिपट भी जा अरे 'अकबर'! ग़ज़बकी ब्यूटी है।
नहीं-नहीं पै न जा, यह हयाकी ड्यूटी है ॥

अब इसी ज़लील शब्दको 'शाद'की ज़बाने-मुबारकसे सुनिए—

लिपटकर काकुले-जानाँसे[1] नाज़कर शानें[2]।
ख़ुदाने अर्शसे[3] रुत्वा तेरा बुलन्द किया॥

जिस जगह सती-व्रतवन्ती पाँव रख दें, वह स्थान तीर्थ बन जाते हैं। जिन्हें वे छू ले, वे अमर और कृतकृत्य हो जाते हैं। फिर उस कंघेके भाग्यका क्या कहना, जिसे उनके बालोंको सँवारनेकी इनायत अता हुई हो। बेशक उसका मर्तबा आस्मानसे बदर्जहा बेहतर है। हर घडी और हर जगह अपने प्रियतमकी यादमें लीन रहना ही तो वास्तविक नमाज़ है—

ज़बाँपै ज़िक्र तेरा उज़्र-ख्वाह दीदएतर।
यही वज़ू है, इसीको नमाज़ कहते हैं॥

जब इश्कमें यह तल्लीनता आजाती है तो वह बा-असर हो जाता है—

हज़ार शुक्र कि मुद्दतमें यह असर आया।
लिया जो नाम तेरा, दिलमें तू उतर आया॥

शादकी शराब

'शाद'की शराब वह शराब नहीं है, जिसे पीकर आदमी, आदमी न रह कर जानवर बन जाता है। 'शाद'की शराब वह आध्यात्मिक सुरा है कि उससे बेसुध होनेपर स्वर्गके देवता भी सार-सँभाल करनेको दौड़ पड़ते हैं—

असर देखो ज़रा लग़्ज़िशमें 'या साक़ी'के कहनेका।
फ़रिश्ते दौड़कर बाज़ू हमारा थाम लेते हैं॥

चन्द नमूने और देखिए, शादने शराबपर क्या पाकीज़ा शेर कहे हैं—

---

[1] प्रेयसीकी ज़ुल्फोंसे; [2] कंधे; [3] आकाशसे।

२०५५

लेके खुद पीरेमुगाँ हाथमें मीना आया।
मैकशो ! शर्म कि इसपर भी न पीना आया॥

मुग़बचे[1] हैं मुतहैय्यर[2] मुतवस्सिम साक़ी।
पीनेवाले तुझे पीनेका न अन्दाज आया॥

इसी उम्मीदमें बाँधे हुए हैं टकटकी मैकश !
कफ़ेनाजुकपै साकी रखके एक दिन जाम आयेगा॥

साग़र हमारा, मीना हमारा।
जन्नत हमारी, तौबा हमारा॥
दाताके दरसे लेकर फिरेंगे।
भर देगा इक दिन कासा हमारा॥
मैंपर किसीको, खुमपर किसीको।
साक़ीपै अपने, दावा हमारा॥

बचाके हाथ अलग-से-अलग सुबू लेते।
यह क्या मजाल कि साक़ीकाहाथ छू लेते॥

साकीकी चश्मे-मस्तपै, मुश्किल नहीं निगाह।
मुश्किल सँभालना है दिले-बेकरारका॥

कहाँसे लाऊँ सब्रे-हजरते-ऐयूब[3] ऐ साकी !
खुम आयेगा, सुराही आयगी, तब जाम आयेगा॥

न दे इल्जाम बदमस्तीका इक उफ़्ताद थी साकी !
मेरा गिरना, भरे सागरका चकनाचूर हो जाना॥

ग़जब निगाहने साकीकी बन्दोबस्त किया।
शराब बादको दी पहले सबको मस्त किया॥

---

[1]शराब पिलानेवाले; [2]हैरान; [3]एक प्रसिद्ध सन्तोषी पैगम्बर।

देके तहीसुबू[1] मुझे सबका हौसला दिया।
जिसकी तलब थी साक़िया! उससे कहाँ सिवा दिया॥

देखा किये वोह मस्त निगाहोंसे बार-बार।
जब तक शराब आये, कई दौर हो गये॥

बुरा इस वक़्तमें था या भला मैं।
ख़ुदा हाफ़िज़ हूँ, ले साक़ी! चला मैं॥

बग़ैर आत्मलीन हुए जीवनभर ईश्वर-ईश्वर पुकारनेसे क्या होता है? जहाँ उसमें अपनेको खोया नहीं कि एक संकेतपर फ़रिश्ते तो क्या ब्रह्माण्ड उलट सकता है। और जब मनुष्य आत्मलीन हो जाता है, तब उसके नेत्रोंके आगेसे तू, मैं, पर का पर्दा हट जाता है—

इस्लामो-कुफ़्र, कुछ नहीं आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तिला हूँ, मैं आप अपने हालमें॥

अ़दू

'अ़दू'को लेकर उर्दू-शाइरोंने कितनी गन्द उछाली है? कोई उसके मरनेकी दुआ माँगता है, कोई उसे अन्धा देखना चाहता है, कोई उसे हज़ारों गालियाँ देकर दिलकी भड़ास निकालता है। ग़रज़ उसे हर तरह बदनाम और बरबाद करनेके उपाय निरन्तर सोचे जाते हैं। 'शाद' अ़दूके बारेमें माशूक़से केवल इतना कहते हैं—

दोनोंमें तू ही फ़र्क़ कर लायक़े-महर[2] कौन है?
ग़ैर तेरा गिला करे, नाम न लें अदबसे हम॥

'कस्तूरबा'का निधन बन्दीगृहमें हुआ, उनकी समाधि भी वहीं बनाई गई! जीतेजी तो बन्दी रहीं ही, मृत्युके बाद भी शासकोंने बन्दी बनाकर रखना चाहा। शादका यह शेर उक्त घटनापर कितना मौज़ूँ होता है—

---

[1]ख़ाली सुरापात्र; [2]कृपा-योग्य।

कयामतका सितम है यह भी दुनियामें कि मरनेपर।
असीरोंकी[1] बनाई कब्र भी सैयादने घरमें॥

ये मजहबी दीवाने धार्मिक उन्मादमे कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठते है ? बरसोंकी राहो-रस्म और चोली-दामनके साथको एक क्षणमें नष्ट कर देते है, इसका सबब 'शाद' साहब यह बतलाते है–

जबानें सख्तबयानीपै बाइज़ोंकी खुलीं।
मुरव्वतोंको लपेट आये जानमाज़ोंमें[2]॥

हम देशसे निष्कासित कितना ही कष्ट क्यों न उठा ले, परन्तु हमारे देशपर आँच न आये–

हम बेनवा[3] बलासे क़फसमें असीर[4] है।
या रब ! मगर चमनमें खिज़ाँका[5] गुज़र न हो॥

प्रेरणात्मक

जो स्वय आप नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता। नेपोलियनने एक बार अपने सैनिकोंको सम्बोधित करते हुए कहा था–"तुम ईश्वरपर भरोसा करो या न करो यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है, परन्तु मै इतना जताये देता हूँ कि तुम्हारी बारूद गीली है तो उसे सुखाने ईश्वर नही आयेगा; वह तुम्हीको सुखानी होगी।" इसी भावके द्योतक 'शाद'के चार शेर सुनिए–



यह बज़्मे-मै[6] है याँ कोताह दस्तीमें[7] है महरूमी[8]।
जो बढ़कर खुद उठा ले हाथमें मीना[9] उसीका है॥

[1]बन्दियोकी; [2]जिस चटाईपर नमाज़ पढी जाती है; [3]अनबोल, बेजबान; [4]बन्दी, [5]पतझड़का; [6]मधुशाला; [7]हाथ न उठानेमें; [8]वंचित रहना; [9]मद्य-पात्र।

समझता हूँ इस दौरमें कौन किसको ?
करें 'रिन्द' ख़ुद एहतराम[1] अपना-अपना ॥

क्या ग़लत ज़ोम हूँ ! बाद अपने किसे ग़म अपना ?
हाय काबूमें हूँ, करलूँ अभी मातम अपना ॥

'शाद' आख़िर हूँ शब और पाँवमें ताक़त हूँ अभी ।
इस सरासे है यही वक़्त निकल जानेका ॥

चन्द नैतिक शेर

हसरत आमेज़[2] सदा आती हूँ यूँ कब्रोंसे—
"आज आता जो मेरे काम, न वोह काम किया" ॥

अगर किसीकी बुराई भी दिलमें आई 'शाद' !
हमें तो अपनी ही नीयतसे ख़ुद हिजाब आया ॥

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया ।
तअ़ज्जुब है कि तो भी ज़ुमरए-इन्सांमें नाम आया ॥

यह मुमकिन है कि लिक्खी हो, क़लमने फ़त्ह आख़िरमें ।
जो हैं अहबाबे-हिम्मत ग़म नहीं करते शिकस्तोंमें ॥

बशरके दिलमें न पड़ता जो आर्ज़ूका दाग़ ।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता ॥

भलाई इसलिए चाही कि हो भले मशहूर ।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम ॥

बार जिन कलियोंपै थीं परछाइयां ।
ऐ ख़िज़ां ! पहले वही मुरझाइयां ॥

---

[1]आदर-सत्कार; [2]निराशाभरी आवाज़ ।

अभी नौखेज है रगत जमानेकी नहीं देखी।
विकसती है जो कलियाँ, वाज गुंचे मुसकराते है॥

'शाद' अपने विरोधियो और आलोचकोसे चिढते नही। न तुर्की-ब-तुर्की जवाब देते हैं। बल्कि यह कहकर चुप हो जाते है–

आखिर तो समझ लेगा कोई नुक्ता-रस इक दिन।
हासिदसे कहो 'शाद'को बदनाम किये जा॥

चुना हुआ कलाम

१९३८में प्रकाशित 'शाद'का दीवान 'मैखानए-इल्हाम' हमारे समक्ष हैं। अनुमानतः ४,००० अशआर होगे। उनमे-से चुनकर कुछ अशआर पेशे-नजर है–

बारे-सुबू[1] वही उठाये जिसपै हो फ़ज्ले-मैफरोश[2]।
जाहिदेखुश्क! यह भी क्या बोझ है जानमाजका[3]?
जलवए-हुस्नकी तरफ देख तो कुछ पता चले।
जाने दे, वलवला न पूछ आशिके-पाकवाजका॥

कहाँ है उसका कूचा, कौन है वह? क्या खबर क़ासिद!
पर इतना जानते है, नाम है आशिक़-नवाज उसका॥
न छोड़े जुस्तजूए-यार खिज्रे-शौक़से कह दो।
किसी दिन खुद लगा लेगी, पता उम्रे-दराज उसका॥

अबस[4] शिकवा है मै-सी चीजका वाइज है क्यों दुश्मन।
बसीरत[5] जब नहीं, बेशक बजा है एहतराज उसका॥
अब इसका जिक्र क्या क़ासिदपै जो गुजरी गुजरने दो।
न कहना इस खबरको 'शाद'से दिल है गुदाज[6] उसका॥

---

[1]मद्यके घडेका बोझ; [2]शराब-विक्रेताकी कृपा; [3]नमाज़ पढने-की चटाईका; [4]व्यर्थ; [5]दृष्टि, बुद्धि; [6]द्रवित।

किसीको आबोहवा मुआफिक हुई न अफसोस इस चमनकी।
हमेशा थे नालाकश अनादिल,[1] गुलोंने ता उम्र ख़ून थूका॥
पुकारकर वहशियोंसे कह दो "ख़िज़ाँका भी दौर है ग़नीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो लें, अगर न मौक़ा मिले रफ़ूका॥"

गुलोंपर क्या है, काँटों तकका मैं दिलसे दुआ-गो हूँ।
ख़ुदावन्दा न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

मौजे-फ़ना[2] मिटा न दे नामोनिशाँ वजूदका[3]।
देख हुबाबकी[4] तरह शौक़ न कर नमूदका[5]॥
ऐ शबेवस्ल! जा तो जा, ऐ शबेहिज्र! आ तो आ।
दिलने ख़याल उठा दिया, अपने ज़ियाँ-ओ-सूदका[6]॥

बोरिया था, कुछ शबीना-मैं[7] थी, या टूटे सुबू।
और क्या इसके सिवा, मस्तोंके वीरानेमें था॥

बड़ा एहसाँ शबेग़मने किया ऐ जागनेवाले!
यही तेरी खुली आँखें मिटा छोड़ेंगी शक तेरा॥
बहुत तूने जब अपने पाँव फैलाये तो क्या चारा?
अदब करती रही ऐ अश्क! मुद्दत तक पलक तेरा॥

गलीमें यारकी हो क़ब्र, या ख़राबेमें[8]।
हमें तो हश्रके दिन तक कहींपै सो रहना॥

अगर मरते हुए लबपर न तेरा नाम आयेगा।
तो मैं मरनेसे दरगुज़रा, मेरे किस काम आयेगा॥
शबे-हिजराँकी[9] सख़्ती हो तो हो लेकिन यह क्या कम है?
कि लबपर रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

---

[1]बुलबुलें, [2]मृत्यु-लहर; [3]अस्तित्वका; [4]पानीके बुलबुलेकी; [5]नामका, [6]हानि-लाभका, [7]रातकी बची शराब; [8]मदिरालय, उजड़ा स्थान, खंडहर; [9]विरहरात्रिकी।

यही कहकर अजलको[1] क़र्ज़ख़्वाहोंकी तरह टाला।
कि "लेकर आज कासिद यारका पैगाम आयेगा॥"

गलीमें यारकी ऐ 'शाद' ! सब मुश्ताक़[2] बैठे हैं।
ख़ुदा जाने वहाँ से हुक्म किसके नाम आयेगा ?

जब अहले-होश कहते हैं अफसाना आपका।
सुनता है और हँसता है दीवाना आपका॥

सरापा सोज़[3] हो ऐ दिल ! सरापा नूर[4] हो जाना।
अगर जलना तो जलकर, जलवागाहे-तूर हो जाना॥

हमारे ज़ख़्मे-दिलने दिल्लगी अच्छी निकाली है।
छुपायेसे तो छुप जाना मगर नासूर हो जाना॥
ख़याले-वस्लको अब आर्ज़ू झूला झुलाती है।
क़रीब आना दिले-मायूसके[5] फिर दूर हो जाना॥
शबे-वस्ल अपनी आँखोंने अजब अन्धेर देखा है।
नक़ाब उनका उलटना रातका काफ़ूर हो जाना॥

वोह जिब्ह करके यह कहते हैं मेरे लाशेसे—
"तड़प रहा है कि मुँह देखता है तू मेरा ?"
कराहनेमें मुझे उज़्र क्या मगर ऐ दर्द !
गला दबाती है रह-रहके आबरू मेरा॥
कहाँ किसीमें यह क़ुदरत सिवाय तेगे-निगाह।
कि हो नियाममें[6] और काट ले गुलू मेरा॥

इसे कहते हैं खूबी हम तो इस खूबीके क़ायल हैं।
हुआ जब ज़िक्र यकताईका,[7] नाम आया वहीं तेरा॥

---

[1]मृत्युको; [2]अभिलाषी; [3]पूर्णरूपेण जलना; [4]प्रकाशमान; [5]निराश हृदयके; [6]मियानमें; [7]अद्वितीयताका।

बहुत सरगोशियाँ[1] करने लगे रस्तेमें अब रहबर[2] !
बहुत चर्चा है बाज़ारोंमें ऐ ख़िल्वत-नशीं[3] ! तेरा ॥

दिलको चकसूईने[4] बेपर्दा दिखाया था तुझे।
बीचमें मुफ़्त क़दम आ गया बीनाईका[5] ॥

मुँहपै आशिक़के मुहब्बतकी शिकायत, नासेह !
बात करनेका भी नादाँ न क़रीना आया ॥
आ गया था जो ख़राबातमें[6] पी लेती थी।
तुझको सुहबतका भी ज़ाहिद न क़रीना आया ॥

तेरी गलीमें रक़ीब आयें और मैं देखूं।
क़सम है तेरे क़दमकी तेरा ख़याल किया ॥
तलबके पहले ही जब हुक्म दे चुका था तू।
तेरे फ़क़ीरने क्या सोचकर सवाल किया ॥

चाक करनेका है इल्ज़ाम मेरे सर नाहक़।
हाथ उनका है, मैं उनका हूँ, गरीबाँ उनका ॥

अब अश्क़में तेरे आता नहीं लहू ऐ चश्म !
तुझीपै क्या है ? ज़मानेका ख़ूँ सफ़ेद हुआ ॥

समझ-समझके बढ़ा दस्ते-आर्ज़ू[7] ऐ मस्त !
न मैकदा न सबूही न ख़ुम न जाम तेरा ॥

न मरनेवालोंकी आँखें न दिल है क़ाबूमें।
यह कौन वक़्त था आया है जब पयाम तेरा ?

---

[1]कानाफूसी; [2]भय-प्रदर्शक, [3]एकान्तमें रहनेवाले; [4]तल्लीनताने; [5]दृष्टिका, [6]मधुशालामें, [7]अभिलाषाका हाथ।

यह इख़्तियार तुझे है कि दे न दे साक़ी !
गिला समझते हैं हम बादाकश हराम तेरा ॥

जहाँ चाहे लगे, जिस दिलको चाहे चूर कर डाले ।
ज़बाँसे फेंक मारा, बात थी नासेह कि ढेला था ॥

ज़बाँपै आह जो आई तो हँसके टाल दिया ।
किसीके इश्कका अफ़साना मैंने राज़ किया ॥

हर निवाला अब तो उसका तल्ख़ है ।
उम्र नेमत थी मगर जी भर गया ॥
जिस गलीमें था वहाँ थी क्या कमी ?
ऐ गदा[1] ! क्यों माँगने दर-दर गया ?

ताबूतपै[2] मेरे आये जो वोह, मिट्टीमें मिलाया यूँ कहकर—
"फैला दिये दस्तो-पा[3] तूने इतने ही में बस जी छूट गया ॥"

उन्हें जो मजूर देखना है तो आके ऐसेमें देख जायें !
लिया सहारा मरीजे-ग़मने, चिराग कुछ बुझके झिलमिलाया ॥

निकहते-गुल[4] बहुत इतराई हुई फिरती है ।
वोह कहीं खोल भी दें तुर्रए-गेसू[5] अपना ॥
निकहते-ख़ुल्दे-बरीं[6] फैल गई कोसोंतक ।
वोह नहाकर जो सुखाने लगे गेसू[7] अपना ॥
लिल्लहे-हम्द ! कुदूरत[8] नहीं रहने पाती ।
मुँह धुला देता है हर सुबहको आँसू अपना ॥

---

[1]भिक्षुक; [2]अर्थीपै; [3]हाथ-पाँव; [4]फूलकी गन्ध; [5]चोटी; [6]जन्नत-जैसी सुगन्ध; [7]बाल; [8]द्वेष-भावना ।

ग़ममें परवानए-मरहूमके[1] थमते नहीं अश्क।
शमअ़! ऐ शमअ़! ज़रा देख तो मुँह तू अपना॥

सबू अपना-अपना है जाम अपना-अपना।
किये जाओ मैख़्वार काम अपना-अपना॥
न फिर हम न अफ़सानागो ऐ शबे-ग़म[2]!
सहरतक[3] है क़िस्सा तमाम अपना-अपना॥
जिनांमें[4] हैं ज़ाहिद, तेरे दरपै हम हैं।
महल अपना-अपना, मुक़ाम अपना-अपना॥
हुबाबो[5]! हम अपनी कहें या तुम्हारी।
बस एक दम-के-दम है क़याम अपना-अपना॥
कहाँ निकहते-गुल,[6] कहाँ बूए-गेसू[7]!
दिमाग़ अपना-अपना मशाम[8] अपना-अपना॥
ख़राबातमें मैकशो! आके चुन लो!
नबी अपना-अपना इमाम अपना-अपना॥

हम वह मैकश हैं कि साग़रकी तरह ऐ साक़ी!
सर हमेशा तेरी ख़िदमतमें रहा ख़म अपना॥
ऐ असीराने-क़फ़स! कुछ तो शगुन अच्छा है।
हाथ जाता है ग़रीबांको जो पैहम[9] अपना॥

मेरा सब हाल कह लेना तो क़ासिद! यह भी कह देना—
"ख़बर करदी तुम्हें, है इख़्तियार आने-न-आनेका॥"

हश्रमें जो है, वोह लेता है क़दम झुक-झुककर।
आज देखे कोई रुत्बा तेरे दीवानेका॥

---

[1]मृतक पतंगेके; [2]दुखकी रात्रि; [3]प्रातःकालतक; [4]जन्नतमें; [5]पानीके बुलबुलो; [6]फूलकी सुगन्ध; [7]बालोंकी खुशबू; [8]सूँघनेकी वह जगह जो नाक और मस्तकके बीचमें है; [9]बार-बार।

चला जाऊँगा मैं जो महफ़िलसे तेरी।
कोई और मेरी जगह आ रहेगा॥
यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

जब किसीने हाल पूछा रो दिया!
चश्मे-तर! तूने तो मुझको खो दिया॥
दाग़ हो या सोज़ हो, या दर्दे-ग़म।
ले लिये ख़ुश होके जिसने जो दिया॥

दैरो-हरममें[1] गर नहीं, ख़ैर न हों नहीं सही।
मेरे ही पास जब नहीं, आप कहीं हुए तो क्या?
हम थे मिटे हुए यूँ ही, रोज़े-अज़लसे[2] ऐ अजल[3]!
रूए-ज़मींपे हैं तो क्या, ज़ेरे-ज़मीं हुए तो क्या?
जोशे-शबाबमें दिला! कुफ़्रमें भी था इक मज़ा।
मिट गई जीकी जब उमंग, तालिबे-दीं हुए तो क्या?

हम-से सहरागर्दको[4] छोड़ ऐ ग़ुबार[5]!
तू कहाँ तक पीछे-पीछे आयगा?
खो गये हैं दोनो जानिबके सिरे।
कौन दिलकी गुत्थियाँ सुलझायगा?
मैं कहाँ, वाइज़ कहाँ, तौबा करो!
जो न समझा ख़ुद वोह क्या समझायगा?
बाग़में क्या जाऊँ, सरपर है ख़िज़ाँ।
गुलका उतरा मुँह न देखा जायगा॥

---

[1]मन्दिर-मस्जिदमें; [2]सृष्टिके आदिसे; [3]मृत्यु; [4]जंगलोंमें विचरने वालेको; [5]गर्द, धूल।

सबक़ तो मकतबे-उल्फ़तमें सबका था यक्साँ।
किसीको शुक्र, किसीको फ़क़त गिला आया॥
शराब दे कि न दे तुझपे मैं फ़िदा साक़ी!
मुझे तो बातमें तेरी बड़ा मज़ा आया॥
सबूके आते ही अल्लाहरे ख़ुशी ऐ मस्त!
इमाम आये, रसूल आ गये, ख़ुदा आया॥

ज़ाहिदसे जब सुनो तो ज़बांपर है ज़िक्रे-हूर।
नीयत हुई ख़राब तो ईमान कब रहा?

हज़रते 'शाद'से करनी है फ़रिश्तो! क्या अर्ज़?
चुप रहो, ग़ुल न करो, आपने आराम किया॥

तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा।
उसी क़दर उसे हैरत है, जिस क़दर समझा॥
कभी न बन्दे-क़बा खोलकर किया आराम।
ग़रीबख़ानेको तुमने न अपना घर समझा॥
पयामे-वस्लका मज़मूं बहुत है पेचीदा।
कई तरह इसी मतलबको नामाबर समझा॥
न खुल सका तेरी बातोंका एकसे मतलब।
मगर समझनेको अपनी-सी हर बशर समझा॥

शबेग़म सूंघ गया सांप मोअज़्ज़िनको[1] भी।
आज जल्दीसे न काफ़िरको ख़ुदा याद आया॥
हक़परस्तोंके यह माने हैं तो ज़ाहिद मैं बाज़।
जब बुतोंपर न चला ज़ोर ख़ुदा याद आया॥

---

[1]अज़ान देनेवालेको।

सदमा तेरे फ़िराकका मैं क्या करूँ बयाँ ?
बस इन्तहा तो यह है कि मरनेका डर न था ॥

हुजूमे-ग़मने सिखानेकी लाख की कोशिश।
हमें तो आह भी करना न उम्रभर आया ॥
लहदमें शाना हिलाकर यह मौत कहती है—
"ले अब तो चौंक मुसाफ़िर कि अपने घर आया ॥"

हज़ार शुक्र ! हुआ आफ़ताबे-हश्र तुलूअ़[1]।
बड़ी तो बात रही यह कि तू नज़र आया ॥

चली जो रूह तो यूँ जिस्मसे कहा मुड़कर—
"कि हस्बख़्वाह न मेहमाँका एहतराम[2] हुआ ॥"
मिली न 'शाद'को अफ़सोस कोई नेमते-ख़ास।
बस इन्तहा है कि मरना तलक भी आ़म हुआ ॥

जवाब है कहीं इस हदकी बदगुमानीका।
कि मिटनेवाले मिटे और मिटा न शक तेरा ॥

ख़मोश हूँ तेरे नालोंपै यह ग़नीमत जान।
अगर जवाबमें कह दे कि "मै नहीं सुनता ॥"

जो कली सूख गई वोह तो खिलेगी न कभी।
बाग़में फ़स्ले-बहार आये तो क्या, जाये तो क्या ?

फिर आज शामसे नासेह ! है ग़ैर हाल अपना।
तुझे है अपना खयाल, है मुझे खयाल अपना ॥
शराबख़ानेसे टलना मुहाल है वाइज़ !
बिका हुआ है इसी घरमें बाल-बाल अपना ॥

---

[1] प्रलयका सूर्य निकला; [2] आदर-सत्कार।

खबर मिली थी कि आयेंगे आज शामको वोह।
हमीं समझते हैं, जिस तरह दिन तमाम किया॥

जगह दामनमें हम क्योंकर न देते।
कि तिफ़्ले-अश्क[1] अपना ही लहू था॥

मेरी तरफ़से हरममें[2] न कुछ सबा[3]! कहना।
सलाम ज़ुहदको[4] और इश्कको दुआ कहना॥

फ़िराक़े-यारमें रोनेको हद क्या?
समन्दर है किनारा आस्तींका॥
मेरी मायूसियोंको कुछ न पूछो।
न दुनियाका भरोसा है न दींका॥

किसीको हुस्न दिया और किसीको माल दिया।
ग़रीब जानके उसने मुझीको टाल दिया॥

ज़र्रे-ज़र्रेको तेरे कूचेमें था मुझसे गुबार।
मैं जो करता भी तो किस-किससे सफ़ाई करता॥

ख़ुशी बहारको धड़का ख़िज़ांके आनेका।
गुलो! फ़क़त यह उलट-फेर है ज़मानेका॥

चुस्त कमरका क्या सबब तंग कबाकी वजह क्या?
हम तो किये हैं दिल निसार, हमसे अदाकी वजह क्या?
ख़ाकमें जो मिला हो ख़ुद, उसपै सितमसे फ़ायदा?
हुस्नकी यह सरिश्त है, वर्ना जफ़ाकी वजह क्या?

---

[1]पुत्ररूपी आंसू; [2]काबेमें; [3]वायु; [4]दिखावटी उपासनाको दूरसे ही प्रणाम करना।

वस्ल आख़िर लफ़्ज़े-बेमानी बने।
तूल इतना ऐ फ़िराके-यार ! खींच ॥

ख़ते-शौक अपना लिफ़ाफ़ेमें रखो।
आर्ज़ूओंको कफ़न पहनाओ 'शाद' !

मेरी ख़ताकी नहीं हद, मगर सज़ा महदूद।
वफ़ूरे-शौक़[1] यहाँ, और तेरी जफ़ा महदूद ॥

फिर गये रास्तेसे वोह गर्दो-गुवार देखकर।
रह गई मेरी वेकसी सूए-मज़ार[2] देखकर ॥
वस्लो-फ़िराककी ख़वर कौन पढ़े किसे दिमाग़ ?
वढ़ गई और वेख़ुदी नामए-यार देखकर ॥

उठ गये उस मुक़ामसे अश्क भर आये जिस जगह।
आज तलक बचाये हैं, इश्ककी आवरूको हम ॥

अदू देखें ख़ुशी, अहबाव तेरे रंजो-ग़म देखें।
कहाँसे यह कलेजा लायें, किन आँखोंसे हम देखें ?
न आई दो घड़ी पहले अजल अफ़सोस क्या करिए।
रक़ीव और हाथ रखकर तेरे बीमारोंका दम देखें ॥

वज़्ममें साक़िया शराव बढ़ती है सफ़को[3] तोड़कर।
सब तो हैं एक हालमें, उसपै यह इम्तियाज़[4] क्यों ?

तेरी गलीके क़ुऊदो-क़्यामकी क्या वात !
इसीको दिलकी ज़बांमें नमाज़ कहते हैं ॥

---

[1]अभिलाषाकी अधिकता; [2]समाधिकी तरफ; [3]पंक्तिको; [4]भेद-भाव।

बेजाये क़रीबे-नख़्लेगुल, चारा ही नहीं कुछ बुलबुलको।
सैयादका देखो जुल्म ज़रा, ज़ालिमने छुपाया दाम कहाँ ?

वोह ख़ुशनिगाह नहीं, जिसमें ख़ुदनुमाई नहीं।
यह चश्मदीदा है, बातें सुनी-सुनाई नहीं॥
ख़यालसे है कहीं दूर आस्तानए-दोस्त।
वहांका शौक़ है दिलको, जहाँ रसाई नहीं॥
मरीज़े-हिज्रको लाज़िम है तेरे जुल्मकी याद।
दवा यही है मगर हमने आजमाई नहीं॥
वोह आशिक़ोंसे है नाराज़ क्यों, ख़ुदा जाने ?
वफ़ूरे-शौक़का होना कोई बुराई नहीं॥
ज़बांपै ज़िक्र मगर दिलमें वसवसा ऐ 'शाद' !
ख़ता मुआफ़ यह धोका है पारसाई नहीं॥

हमें पैग़ाम्बरने कुछ तो ऐसी ही ख़बर दी है।
कहें क्या तुझसे ऐ नासेह ! कि किस मतलबसे जीते हैं ?

उन्हें देखो कि अबतक ग़फ़लतोंसे काम लेते हैं।
हमें देखो कि बेदेखे उन्हींका नाम लेते हैं॥

जहांतक हो बसरकर जिन्दगी आला ख़यालोंमें।
बना देता है कामिल बैठना साहेब-कमालोंमें॥

जो आँखें हों तो चश्मे-ग़ौरसे औराक़े-गुल[1] देखो।
किसीके हुस्नकी शरहें[2], लिखी हैं इन रिसालोंमें॥

वोह सलामत रहें इतना भी बहुत है क़ासिद !
पूछ लेते है, ग़रीबोंपै करम[3] करते हैं॥

---

[1]फूलकी पत्ती रूपी पृष्ठ; [2]टीकायें; [3]दया।

जो दें सवालपै उनको सनद नहीं ऐ 'शाद' !
वही करीम हैं जो बे-सवाल देते हैं ॥

पैराक वही हिज्रे-मुहब्बतके हैं ऐ 'शाद' !
डूबें तो किसी हाल उभरते ही नहीं हैं ॥

इश्क और अक़्लमें ऐ दोस्त ! हमेशासे है वैर ।
लोग जो कुछ मुझे कहते हैं बजा कहते हैं ॥

हूँ इस कूचेके हर ज़र्रेसे वाक़िफ़ ।
इधरसे उम्र भर आया-गया हूँ ॥
लहदमें[1] क्यों न जाऊँ मुँह छुपाये ।
भरी महफ़िलसे उठवाया गया हूँ ॥
कुजा मै और कुजा ऐ 'शाद' दुनिया ।
कहाँसे किस जगह लाया गया हूँ ॥

सराए-दहरमें[2] ऐ रूह ! अपना जी नहीं लगता ।
ख़ुदा जाने, यहाँ कितने दिनों रहनेको आये हैं ॥

मेरी तलाशसे मिल जाय तू, तो तू ही नहीं ।
इस अम्रे-ख़ासमें कुछ जाएगुफ़्तगू ही नहीं ॥
नियाज़मन्दको लाज़िम है चश्मतर रखना ।
अदा नमाज़ न होगी अगर वज़ू ही नहीं ॥
वोह दामन अपना उठाये हुए हैं क्यो दमे-क़त्ल ?
ख़ुदाके फ़ज़्लसे याँ जिस्ममें लहू ही नहीं ॥

सदा यह आती है क़ब्रोंसे—"घुट रहा है दम ।
कि बेकसीके सिवा कोई आस-पास नहीं ॥"

---

[1] क़ब्रमें ; [2] संसाररूपी सरायमें ।

फ़साना कैससे सौदाए-इश्कका पूछो।
मुझे तो सरके खुजानेका भी हवास नहीं ॥

हुस्नो-इश्क एक हैं, जाहिरमें फकत नाम हैं दो।
यह अगर सच है तो, क्या उनके बराबर हम हैं ?
अक़्लसे राह जो पूछी तो पुकारा यह जुनूँ—
"वह तो ख़ुद भटकी हुई फिरती है, रहबर[1] हम हैं ॥"

हिज्रके बाद अगर है वस्ल, तब तो कोई अलम नहीं।
रहम है जिसकी इन्तिहा, फिर वह सितम-सितम नहीं ॥

वाइज़को इख़्तियार है, चाहे वह हो मलूल।
हम तो कलामे-हक़का बुरा मानते नहीं ॥
ऐ 'शाद' जिनके साथ ज़माना बसर किया।
अल्लाह ! अब वही मुझे पहचानते नहीं ॥

बेकार हमको जिब्ह किये देती है बहार।
बरसा चमनमें अब कि तेग़ें बरस गईं ॥

परवानेकी बिसात ही क्या थी फ़ना हुआ।
देखा तो शमअ़ भी न रही अपने हालमें ॥

रुसवाइयाँ ग़ज़बकी हुईं तेरी राहमें।
हद है कि ख़ुद ज़लील हूँ अपनी निगाहमें ॥
मैं भी कहूँगा देंगे जो आज़ा[2] गवाहियाँ।
या रब ! यह सब शरीक थे मेरे गुनाहमें ॥
थी जुज़्वे-नातवाँ[3] किसी ज़र्रेमें मिल गई।
हस्तीका क्या वजूद तेरी जलवागाहमें ॥

---

[1]पथ-प्रदर्शक; [2]इन्द्रियाँ; [3]निर्बलताके परमाणु।

ऐ 'शाद'! और कुछ न मिला जब बराए-नज़्र[1]।
शरमिन्दगीको लेके चले बारगाहमें[2]॥

बज़ाहिर मिल नहीं सकता अदाका तेरी अन्दाज़ा।
मगर अहले-नज़र आंखोंमें सब कुछ तोल लेते हैं॥

कहीं निशाँ न मिलेगा तेरा हमें न सही।
किसीका क्या है हम अपनेको आप खोते हैं॥

हम ऐसे गुमशुदा इन्साँका ज़िक्र क्या ऐ 'शाद'!
जो बा-निशाँ थे उन्हींका कहीं निशान नहीं॥

निकली यह कहके आ़लमे-पीरीमें[3] तनसे रूह—
"बस अब हमारे रहनेके क़ाबिल यह घर नहीं॥"

मंज़िले-दोस्तका निशाँ देखिए किस तरह मिले।
अ़क्ल तो खुद बहक गई, अब किसे रहनुमा करें?

कोई मातम करे मेरे लिए क्यों?
सज़ा जीनेकी है, इतना जिए क्यों?

कुछ इख़्तियार है मालिक उरूज दे जिसको।
वोह शहसवार कहाँ और मेरा ग़ुबार कहाँ?

कहने लगते हैं जवानीकी कहानी जो कभी।
पहले हम देर तलक बैठके रो लेते हैं॥
एक तो जाम फिर उस हाथसे अहसन्त ऐ 'शाद'!
यूँ कहो, पाते हैं हम, यूँ न कहो, लेते हैं॥

---

[1]ईश्वरको भेंट करनेके लिए; [2]ईशमन्दिरमें; [3]वृद्धावस्थामें।

ख़ुदा शाहिद, बुरा कहता नहीं जन्नतको मैं लेकिन।
मज़ा कुछ और ही है, मैं-कशीका बादाख़ानेमें॥

दराज़ी उम्रकी हदसे ज़ियादा जब सताती है।
ब-हसरत हम तुझे ऐ मौत! घड़ियों याद करते हैं॥

हज़ार तल्ख़[1] हैं, पीरे-मुग़ाँने[2] जब दी है।
ख़ुदा-न-करदा[3] जो मैं मुंह बना-बनाके पियूं॥
मज़ा है बादाकशीका वहीं तो ऐ साक़ी!
पियूं जो अब तो तेरे आस्तांपै आके पियूं॥
ज़मींपै जामको रख दे ज़रा ठहर साक़ी!
मैं इसपै हो लूं तसद्दुक़ तो फिर उठाके पियूं॥

अब उनका नाम न ले हिज्रमें कटी जो शबें।
कर उनका ज़िक्र जो सरपर दिन आनेवाले हैं॥

तड़पना देखते हो दोस्तो! रह-रहके बिजलीका।
न फँस जाये कोई बेकस बलाए-आस्मानोंमें॥

वफ़ाके मुद्दई शिकवा जफ़ाका लबपै लाते हैं।
वोह गोया बेवफ़ा है, हम वफ़ा करना सिखाते हैं॥
जफ़ायें उनकी हैं बेमस्लेहत? अक़्लोंके नाख़ुन लो॥
अब ऐसे क्या वोह भोले हैं, कि बेसोचे सताते हैं॥

दरीचा खोलकर सुलझाते हैं वोह मुश्कबू ज़ुल्फ़ें।
यह ख़ुश्बू सूंघ लो ऐसेमें आकर ऐ! वतनवालो॥

अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो।
मौतको फँद लगा दी है, ग़नीमत समझो॥

---

[1] कड़वी, [2] मधुशाला-स्वामीने; [3] ख़ुदा न करे।

फ़ैसला होता है नेकी-ओ-बदीका हरदम।
दिलको इस सीनेमें छोटी-सी अ़दालत समझो॥

मयस्सर जिनका था दीदार बेखटके जमानेको।
वही खुश चश्म अब मिलते नहीं सुर्मा लगानेको॥
दमे-आख़िर हमारे दिलमें यूँ उम्मीद आती है।
कोई जाये कहीं शर्मिन्दगी जैसे मिटानेको॥

लेता है मेरा ज़ख़्मे-जिगर बोसे-पै-बोसे।
पैकांपै कहीं नाम तुम्हारा खुदा न हो॥

वोह पूछते ही रह गये वजहे-मलालेग़म।
'हम सोचते रहे जो कहीं कुछ गिला न हो॥
नाजुक मिजाज दिलको ही एहसां नहीं पसन्द।
शर्मिन्दए-क़ुबूल हमारी दुआ न हो॥

क़ासिद! वोह बात कह कि यक़ीं कुछ तो दिलको आय।
क्या कह रहा है तू कहीं वादा किया न हो॥

यह सब दुरुस्त कि तुम बुत भी हो ख़ुदा भी हो।
मगर नियाजके काबिल यह दिल रहा भी हो॥

दिल उसको बारगाहमें सिजदे करे तो क्या?
अपने नियाजमन्दसे जो बे-नियाज हो॥

कोई ऐ 'शाद'! पूछे या न पूछे इससे क्या मतलब?
ख़ुद अपनी क़द्र करनी चाहिए साहेब-कमालोंको॥

"मरीज़े-इ़श्कको मरते कभी नहीं देखा।"
दबी ज़बांसे यह क्या कह गये, इधर देखो!

मुर्दोकी कनाअतोपै है रश्क।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा ॥

अपनी आँखोंका यह ईमा है खयाले-यारसे।
तूने वेमौसमकी बरसातें न देखी हों तो देख ॥
एक हसरत दो तरफ़ रहती है, मसरूफे-कलाम।
तख़लियेको[1] गर मुलाकातें न देखी हों तो देख ॥

'शाद'! आता है बगोला अपने इस्तकबालको[2]।
दश्ते-ग़ुरबतकी[3] मुदारातें[4] न देखी हों, तो देख ॥

बरसरे-दार[5] खिंचे या न खिंचे वोह लेकिन।
जो कहे कलमए-हक़[6] तू उसे मंसूर समझ ॥

जुम्बिशे-अबरुए-खमदारका पूछो न सबब।
रक्खे-रक्खे यह कमाँ यूँ भी कड़क जाती है ॥

बहुत कुछ पाँव फैलाकर भी देखा 'शाद' दुनियामें।
मगर आख़िर जगह हमने न दो गज़के सिवा पाई ॥

लगा न दे तेरी रफ़्तारे-नाज़में धब्बा।
कहीं-कहीं जो निशाने-मज़ार बाक़ी है ॥

न रोकती जो मुझे ऐ ज़मीं! कशिश तेरी।
तो मेरी ख़ाक ख़ुदा जाने क्या-से-क्या होती ॥
तेरी तलाशमें हमने मिला दी ख़ाकमें उम्र।
तू ही बता कि यह कम्बख़्त रहके क्या होती ?

---

[1]एकान्तको; [2]स्वागतको; [3]भयानके जगलको; [4]आवभगत; [5]फांसीके तख्तेपर; [6]सत्य बात।

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा ख़मोशीके दम न मारा।
शरीफ़ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफ़त कहाँ रहेगी ?

बुत-कदा है कि ख़राबात[1] है या मस्जिद है।
हम तो सिर्फ आपके तालिब हैं ख़ुदा शाहिद है॥
न मुसल्लेकी जरूरत है न मिम्बर[2] दरकार।
जिस जगह याद करें तुझको, वही मस्जिद है॥

वोह चाहें बदलें-न-बदलें मेरे मुकद्दरको।
किसी क़दर मुझे तसकीं तो है दुआ करके॥

सुनें कि हम न सुनें तूने ख़ुद दिया है जवाब।
हुजूमे-यासमें[3] जब-जब तुझे पुकारा है॥

यह शर्त आपसमें की थी, मैं निकलती हूँ कि तू पहले।
मगर की रूहने सबक़त न निकली आर्जू पहले॥

मेरी जिन्दगानीका सौदा गिराँ है।
घटे तो ज़ियाँ[4] है, बढ़े तो ज़ियाँ है॥

निकालें बहरे-ग़मसे डूबतोंको यह कहाँ हिम्मत !
ख़ुद अपने हाथसे अपना डुबोना हमको आता है॥
निचोड़ें बैठकर, फिर ख़ुश्क कर लें, यह नहीं आता।
जहाँ बैठे वहाँ दामन भिगोना हमको आता है॥

फ़लकका जिक्र तो क्या है, जमींके भी न रहे।
हम अपनी चालमें आख़िर कहींके भी न रहे॥

---

[1]मधुशाला; [2]मस्जिदमें वह ऊँचा चौतरा जहाँ बैठकर भाषण दिया जाता है; [3]निराशाओंमें; [4]नुकसान, घाटा।

वोह साहबे-असर हूँ कि ऐ 'शाद'! बादे-मर्ग।
बोसे लिये हैं मेरी लहदके रक़ीबने॥

असर अब इससे ज़ियादा वफ़ाका क्या होगा।
क़सम हमारी मुहब्बतकी लोग खाने लगे॥

वोह नातवाँ[1] हूँ कि नाला मेरा तेरे दर तक।
लिये गया मुझे बेइख़्तियार खींचे हुए॥

मैं और अर्ज़ करूँ क्या जनाबे-नासेहसे।
बस एक आप ग़रीबोंके ख़ैरख़्वाह मिले!

वोह ज़माना वस्लका क्या हुआ, कभी आश्नाए-जफ़ा न थे।
कि बदनसे रूह अलग भी थी, मगर आप हमसे जुदा न थे॥
दिले-मुज़्तरिब! तुझे क्या कहूँ? अबस उनके पांवपै सर रखा।
जो ख़फ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह आदमी थे ख़ुदा न थे॥
हुए जाके तालिबे-दीद जो, यह क़सूर है तो उन्हींका है।
कोई और होंगे वोह दर-बकी, तेरे आस्तांके गदा[2] न थे॥

किसीकी बात भला उसके दिलपै क्या लगती?
ख़ुदाके बन्दोंने यूँ तो कही ख़ुदा लगती॥

हवाए-दहर[3] बिगाड़े हज़ार फूलोंको।
न हो वोह रंग, शराफ़तकी कुछ तो बू होगी॥

ब-वक़्ते-नज़अ वोह नाहक़ चले गये उठकर।
हम उसके बाद तो आँखोंको ख़ुद फिरा लेते॥

मैं निसार अपने ख़यालपर कि बग़ैर मैके हैं मस्तियाँ।
न तो ख़ुम है पेशे-नज़र कोई, न सबू है पास न जाम है॥

---

[1]निर्बल; [2]भिक्षुक; [3]संसारकी हवा।

बड़ी मुश्किलोंसे हुआ है हल यह किताबे उम्रका मस्अला।
उन्हें वस्ले-ग़ैर हलाल है, हमें शबकी नींद हराम है॥

इसी सोचमें है दिले-हज़ीं, कि क़यामत आनेको आयेगी।
हुए उनसे तालिबे-दीद हम, वोह कहेंगे—"मजमये आम है॥"

कह दो मरीज़े-गमसे कि आयेंगे क़ब्रपर।
रख लो ख़ुदाके वास्ते, इतनी-सी जान भी॥

बिछाकर जो गया बिस्तरपै काँटे।
वही ज़ालिम मेरा आरामे-जाँ था॥

जिसका दिल मुर्झा चुका हो ऐ सबा! उसके लिए।
फ़स्ले-गुल आई तो क्या, अब्रे-बहार आया तो क्या?

भला हुआ कि उड़ा दी सबाने ख़ाक मेरी।
तेरा तो सरपै न एहसान ऐ ज़मीन! लिया॥

आराम कर लो कब्रमें चन्दे मुसाफ़िरो!
मंज़िलतक और अब कोई मेहमाँ सरा नहीं॥

दो-चार वक़्त जाते हैं रोज़ उस गलीमें हम।
अबतक कोई नमाज़ हमारी क़ज़ा नहीं॥

मज़ा मिल जायगा जीनेका तुझको।
किसी ज़ालिम पै नासेह तू भी मर देख॥

ऐसा न हो मलाइक[1] करने लगें शिकायत।
तीरे-नज़र तुम्हारा कुछ दूर जा पड़ा है॥

रहे-वफ़ामें[2] क़दम डिगा न जायें देख ऐ दिल!
सतानेवाले अभी बहुत कुछ सतायेंगे॥

---

[1]फ़रिश्ते;　　[2]निभानेके मार्गमें।

यह अदा, यह उनका मिलना, यही कह रहा है मुझसे !
कि वफ़ा भी अब जो होगी तो ब-शक्ले-नाज़ होगी ॥

नज़र आए-न-आए कोई आंसू पोंछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देंगे ॥

उसके लिए तो हाथ उठाना भी है गुनाह।
जिनकी दुआ हो आप, वोह फिर क्या दुआ करे ?

मोती तुम्हारे कानके थर्रा रहे हैं क्यों ?
फ़रियाद किस ग़रीबकी गोश-आश्ना हुई ॥

गुलिस्ताने-जहांमें बस वही आज़ाद इन्सां है।
सबाकी तरह जिस गुलसे मिले उसको हंसा आये ॥

तुलनात्मक अशआ़र

अब हम 'आतिश' और 'शाद'की हमतरही ग़ज़लोंके चन्द तुलनात्मक शेर पेश कर रहे हैं, ताकि पाठक जान सकें कि एक ही क़ाफ़ियेमें दोनों उस्तादोंने कैसे-कैसे मज़ामीन नज़्म किये हैं। और दोनोंका मर्तबा ग़ज़ल-गोईमें कितना ऊँचा है। जहाँ शादने 'आतिश'के किसी क़ाफ़ियेपर शेर नहीं कहा है, वहां मजबूरन उसने मिलता-जुलता शादके दूसरे क़ाफ़ियेका शेर दे दिया है।

आतिश— न पूछ हाल मेरा चोबे-ख़ुश्के-सहरा[1] हूं।
लगाके आग मुझे, कारवां[2] रवाना हुआ ॥

शाद— ख़ुदा बुरा करे इस नींदका यह कैसी नींद ?
खुली न आंख कि जब कारवां रवाना हुआ ॥

---

[1]जंगलकी सूखी लकड़ी, [2]यात्रीदल।

आतिश— भरा है सीनए-दिल कूचए-मुहब्बतसे।
ख़ुदाका घर था जहाँ, वाँ शराबख़ाना हुआ॥

शाद— ग़ज़ब किया तेरे जानेने बज़्मसे[1] साक़ी!
बुलन्द चारतरफ़ शोर-आमियाना[2] हुआ॥

आतिश— हो जाये हुस्ने-मानी बेसूरत आश्कार।
रूए-हक़ीक़त उलटे जो पर्दा मजाज़का॥

शाद— उनकी निगाहे-नाज़ जो पलटी तो देखना।
मुँह देखती रहेगी हक़ीक़त, मजाज़का॥

आतिश— साक़ी! जलाल[3]-ओ-दर्द जो तौफ़ीक़[4] हो सो दे।
मस्तोंको तेरे होश कहाँ इम्तियाज़का[5]॥

शाद— देखा तो होगा हमने अज़लमें तेरा जमाल।
लेकिन वोह कोई वक़्त न था इम्तियाज़का॥

आतिश— क्योंकर वोह नाज़नीन करे बेनियाज़ियाँ।
अन्दाज़से भी हौसला आली है नाज़का॥

शाद— किस तरह दिलपै फ़ित्नए-महशरका हो असर।
हंगामा याद है तेरी रफ़्तारे-नाज़का॥

आतिश— याद करके अपनी बरबादीको रो देते हैं हम।
जब उड़ाती है हवाए-तुन्द[6] ख़ाके-कूए-दोस्त[7]॥

शाद— लाशए-उरियाँ आशिक़का[8] कोई देखे वक़ार[9]।
ढाँकती है उठके किस उल्फ़तसे ख़ाके-कूए-दोस्त॥

---

[1]महफ़िलसे; [2]आमफहम; [3]रूपका दर्शन, चमत्कार, [4]सामर्थ्य; [5]थोड़े-बहुतके भेदका; [6]तेज़ हवा; [7]प्रेयसीके कूचे

आतिश— दाग़े-दिलपर ख़ैर गुज़री तो ग़नीमत जानिए।
दुश्मने-जाँ है जो आँखें देखती हैं सूए-दोस्त[1] ॥

शाद— तू बड़ा आ़क़िल है नासेह ! तू ही समझा दे मुझे।
कौन शै रह-रहके दिलको खींचती है सूए-दोस्त ॥

आतिश— दो मरेंगे ज़ख़्मेकारीसे तो हसरतसे हज़ार।
चार तलवारोंमें शल हो जायेगा बाज़ूए-दोस्त ॥

शाद— ज़ख़्म गलेपर पड़ चुका था ख़ून देती थीं रगें।
वाये हसरत किस जगह आकर थका बाज़ूए-दोस्त ॥

आतिश— फ़र्शे-गुल बिस्तर था अपना ख़ाकपर सोते हैं अब।
ख़िश्त[2] ज़ेरे-सर नहीं, या तकिया था ज़ानूए-दोस्त ॥

शाद— किस ख़ुशीसे तहनियत दे-देके यूँ कहता है दिल।
वस्लकी शब है मुबारक दोस्तको पहलूए-दोस्त ॥

आतिश— हिज्रकी शब हो गई रोज़े-क़यामतसे दराज़[3]।
दोशसे[4] नीचे नहीं उतरे अभी गेसूए-दोस्त ॥

शाद— दहरमें क्या-क्या हुए हैं इनक़लाबाते-अ़ज़ीम।
आस्माँ बदला, ज़मीं बदली, न बदली ख़ूए-दोस्त[5] ॥

आतिश— इस बलाए-जाँसे 'आतिश' देखिए क्योंकर बने ?
दिल सिवा शीशेसे नाज़ुक, दिलसे नाज़ुक ख़ूए-दोस्त ॥

शाद— 'शाद' यूँही सहले-शक शकमें पड़े रह जायेंगे।
हम इन्हीं आँखोंसे इक दिन देख लेंगे रूए-दोस्त ॥

---

[1]प्रेयसीकी तरफ़; [2]ईंट; [3]लम्बी, [4]कन्धेसे; [5]मित्रका स्वभाव।

आतिश— फ़ुरक़ते-यारमें मुर्दा-सा पड़ा रहता हूँ।
रूह क़ालिबमें नहीं, जिस्म है तनहा बाकी ॥

शाद— मैकदेमें न वोह सागर है, न खुम है, न वोह जाम।
चल बसे यार, रहे हम तनें-तनहा बाक़ी ॥

आतिश—इस कदर सीनए-ग़म, इश्कसे मामूर हुआ।
न रही दिलमें मेरे हसरते-दुनिया बाकी ॥

शाद— काश जीते यूँ-ही मर-मरके कई बार ऐ दिल!
सैकड़ों साल रहेगी अभी दुनिया बाकी ॥

आतिश—गरमियाँ है जो यही आहे-शरर-अफ़्शाँकी[1]।
नहीं रहनेका मेरे यारका पर्दा बाक़ी ॥

शाद— चार दीवारे-अ़नासिरको[2] गिराया भी तो क्या?
वही धोका है, वही है अभी पर्दा बाकी ॥

आतिश—आ़शिक-नवाज़ हुस्नकी तारीफ क्या करूँ?
यूसुफसे भी अ़ज़ीज़ उसे अपना गुलाम है ॥

शाद— मस्तोंपै मुनहसिर है न अहले-शऊ़रपर।
साकी! तेरा तमाम ज़माना गुलाम है ॥

आतिश— जबतक करे हलाल न मुझ बेगुनाहको।
क़ातिलको दहने हाथका खाना हराम है ॥

शाद— इतना भी मैकशोंको नहीं मैकशीमें होश।
हदसे अगर सिवा हो तो पीना हराम है ॥

---

[1]चिनगारी झाड़नेवाली आह; [2]पंचतत्त्वको।

आतिश— माशूक ही नहीं जो न वादा खिलाफ हो।
चाहे जो तुझसे पुख़्तगीए-अ़हद[1] ख़ाम[2] है ॥

शाद— तेग़े-निगाहेयार ! तेरी काट अल्-अमाँ।
फौलाद भी तो आगे तेरे मोमे-खाम है ॥

आतिश— दौलतके सामने नहीं कुछ कद्रे-हुस्न भी।
महमूदका अयाज़-सा ख़ुशरू ग़ुलाम है ॥

शाद— कहते है किसको हुस्नको ख़िदमत-गुज़ारियाँ।
जिस मुब्तलाको देखिए दिलका ग़ुलाम है ॥

आतिश— सुबहे-वहार है मुझे साकी पिला शराव।
सब जानते है ईदका रोज़ा हराम है ॥

शाद— इक जामकी विसात तो साकी वहुत न थी।
पानी भी अव मुझे तेरे घरका हराम है ॥

आतिश— 'आतिश' ! बुरा न मानिए हक-हक जो पूछिए।
शाइर है हम, दरोग हमारा कलाम है ॥

शाद— मेहमाँ सराए तनसे चली रूह कहके हाय—
"इस घरमें अव न आयेंगे गर 'शाद' नाम है ॥"

हमतरही गज़लोंके अतिरिक्त इन दोनो वाकमाल उस्तादोंके ऐसे अशआर भी वहुत अधिक है, जो विचारो और भावोकी दृष्टिसे समानता रखते है। उनमें-से चन्द अशआर पेश किये जा रहे है, ताकि पाठक जान सकें कि एक ही तरहके भावो और विचारोको सिद्धहस्त शाइर अपनी-अपनी भापा और कल्पनाका परिधान पहिनाकर किस तरह सँवारते हैं।

---

[1]वादेकी दृढता; [2]कच्चा, व्यर्थ।

आतिश— दस्ते-याराने-वतनसे[1] नहीं मिट्टी दरकार।
दब मरूँगा मैं कहीं, रेगे-बयाबाँके[2] तले॥

शाद— लबे-तिश्ना[3] रहना, एहसाँसे बेहतर।
देखा किया मुँह, दरिया हमारा॥

खुश है गर तिश्ना-लबीने यूँ-ही मारा हमको।
चीने-अबरू नहीं, दरियाको गवारा हमको॥

आतिश— हमेशा झाड़ते है गर्दे-पैरहन[4] गाफ़िल !
नहीं समझते कि है जेरे-पैरहन[5] मिट्टी॥

शाद— शुस्तगोएज़बाँ[6] अबस,[7] दिलमें भरे है ख़ारो-ख़स[8]।
छोड़ अभी बरूनेदर,[9] फ़िक्रे दरूने-ख़ाना कर[10]॥

आतिश— आस्माँ ! मरके तो राहत हो कहीं थोड़ी-सी।
पाँव फैलानेको हाथ आये ज़मीं थोड़ी-सी॥

शाद— आरामसे हूँ क़ब्रके अन्दर जो बन्द हूँ।
मैं भी तो आदमी हूँ फ़राग़त पसन्द हूँ॥

आतिश— मारफ़तमें तेरी ज़ाते-पाकके।
उड़ते है होशो-हवास इदराकके[11]॥

शाद— तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा।
उसी क़दर उसे हैरत है जिस क़दर समझा॥

---

[1]देशवासी मित्रोंके हाथसे; [2]रेगिस्तानकी धूलमें; [3]प्यासा; [4]पोशाककी धूल; [5]लिबासके नीचे; [6]वाणीकी मधुरता; [7]व्यर्थ; [8]काँटे-तिनके; [9]वाहरी झाड़-पोंछ; [10]अन्तरंगकी; [11]बुद्धिके।

आतिश— दोनों जहाँके कामका रक्खा न इश्क़ने।
दुनिया-ओ-आख़ेरतसे किया बेख़बर मुझे॥

शाद— फ़लकका ज़िक्र ही क्या है, ज़मींके भी न रहे।
हम अपनी चालसे आख़िर कहींके भी न रहे॥

आतिश— बीना[1] हों जो आँखें तो रुख़े-यारको देखें।
नज़्ज़ारेके क़ाबिल जो तमाशा है तो ये है॥

शाद— यह आर्ज़ू है तेरी जलवागाहमें जाकर।
हज़ार आँखें हो और सबसे यार हम देखें॥

आतिश— हश्रपर वादए-दीदार न कर आशिक़से।
किसको मालूम है, फ़रदाए-क़यामत[2] कब है॥

शाद— तक्रिय-ए-वादयं[3] सब चुपके पड़े हैं तहे-ख़ाक[4]।
कल क़यामत जो न आई तो क़यामत समझो॥

आतिश— ठहरा हुज़ूरे-यार न माहे-चहार[5] वोह।
दिन हो गया नक़ाब जो शबको उठा दिया॥

शाद— शबे-वस्ल अपनी ही आँखोंसे यह अन्धेर देखा है।
नक़ाब उनका उलटना रातका काफ़ूर हो जाना॥

---

[1]देखनेवाली; [2]प्रलयका दिन; [3]वादेके भरोसेपर;
[4]मिट्टीके नीचे, समाधिमें; [5]चार चाँद।

आतिश---कालिबे-ख़ाकीको[1] तो सुनते हैं 'आतिश' ज़ेरे-ख़ाक।
कुछ नहीं मालूम हमको रूह[2] किस आ़लममें है॥

शाद--- जिसे पाक रखनेकी थी हविस वोह तो तेरे दरपै पहुँच गई।
यह जो मुश्ते-ख़ाक ज़मींपै है, उसे फेंक आओ कहीं सही॥

आतिश--- वक़्ते-आख़िर इ़श्क़े-पिन्हाँ, यारपर ज़ाहिर हुआ।
नज़अ़में ईसाने पहचाना मेरे आज़ारको॥

शाद--- तुझीको नज़अ़में पूछा तेरे ख़मोशोंने।
अख़ीर वक़्त जब आया छुपे न राज़[3] उनके॥

आतिश--- हाथ क़ातिलका मेरे, ख़ंजर तक आकर रह गया।
कुहनियों तक आस्तीनोंको चढ़ाकर रह गया॥

शाद--- हमारी जान सदके नौजवाँ क़ातिलके गुस्सेपर।
कोई अन्दाज़ देखे आस्तीनोंके चढ़ानेका॥

आतिश--- छेड़ बैठे जो हम अफ़सानए-गेसूए-दराज़।
सुबह होगी न रहेगी शबे-यल्दा[4] बाक़ी॥

शाद---जो कहूँ तो ख़त्म न हो सके, जो सुने कोई तो ख़लिश रहे।
यह फ़साना ज़ुल्फ़े-दराज़का[5] मेरी जिन्दगीसे दराज़[6] है॥

---

[1]मिट्टीरूपी शरीरकी; [2]आत्मा; [3]भेद; [4]सबसे बड़ी अँधेरी रात; [5]लम्बी ज़ुल्फ़ोंका; [6]लम्बा, विस्तृत।

तिश— अ़दमसे हस्तीमें जाकर यही कहूँगा मैं।
हज़ारों हसरते-जिन्दाको गाड़-ओ-दाव आया ॥

द—अभी वहुत दिलमें हैं उम्मीदें तड़पके हसरतसे मर न जायें।
मिलो अगर 'शाद' से अ़ज़ीज़ो! तो ज़िक्र करना न आर्ज़ूका ॥

आतिश— चमनिस्तांको गई नशवोनुमा फिरती है।
रुत बदलती है, कोई दिनमें हवा फिरती है ॥

शाद— खिज़ांमें खुश्क शाखोंसे लिपटकर मुफ़्त जी खोना।
वहार आयेगी घबराओ न ऐ उजड़े चमनवालो !

आतिश— आ़लमसे कुछ ग़रज़ नहीं ऐ जाने-जां ! हमें।
दिलको नहीं है कोई तुम्हारे सिवा कुबूल ॥

शाद— हज़ार मजमए-खूबाने-माहरू[1] होगा।
निगाह जिसपै ठहर जायेगी वह तू होगा ॥

आतिश— कहांतक आंखोंमें सुर्खी शरावख्वारीसे।
सफेदमू[2] हुए वाज़ आ सियाहकारीसे ॥

शाद— अव इज्तिनाव[3] मुनासिव है 'शाद' रिन्दोंसे।
सफेद आपके दाढीके वाल होने लगे ॥

---

[1]सुन्दरियोंका समूह; [2]सफेद वाल, [3]परहेज़, वचाव।

आतिश— राज़े-दिल[1] अफ़्शा[2] न हो ऐ दिल ! कहे देता हूँ मैं।
फोड़ डाली आँख अगर आँसू नज़र आया मुझे॥

शाद— हुजूमे-अश्कसे दीदारमें खलल न पड़े।
जो अबके रोऊँ तो आँखोंको मैंने फोड़ दिया॥

आतिश— नाफ़हमी[3] अपनी पर्दा है दीदारके लिए।
वर्ना कोई नकाब नहीं यारके लिए॥

शाद— गिला जलवेका तेरे क्या कि आलम आश्कारा है।
हमें रोना तो जो कुछ है वोह अपनी कमनिगाहीका॥

आतिश— खूब रोये हालपर अपने, वतनका सुनके हाल।
कोई गुरबतमें जो आ निकला हमारे शहरसे॥

शाद— चमनको याद करके देरतक आँसू बहाता हूँ।
कोई तिनका जो मिल जाता है उजड़े आशियानेका॥

आतिश— करम[4] किया जो सनमने सितम ज़ियादा किया।
शबे-फिराकमें मैंने खुदाको याद किया॥

शाद— कोई खफा हो-तो-हो, अमरे-हक[5] मगर यूँ है।
बुतोंकी चालने सबको खुदा-परस्त किया॥

---

[1]दिलका भेद; [2]प्रकट; [3]बेसमझी, अज्ञानता; [4]दया, मेहर्बानी; [5]वास्तविकता।

आतिश—हमेशा फिक्रसे यां आशिकाना शेर ढलते हैं।
ज़बांको अपनी बस इक हुस्नका अफसाना आता है ॥

शाद— न आईनेका किस्सा और न हाले-शाना कहते हैं।
हक़ीक़तमें जमाले-यारका अफसाना कहते हैं ॥

आतिश— हिकायते-गुले-रंगीने-यार क्या कहते ?
चमनको आग लगाता जो बाग़बां सुनता !

शाद— जमाले-यारका किस्सा चमनमें चलके कहो।
गुलोंके कान खड़े होंगे उस हिकायतसे ॥

---

२४ मई १९५३]

द्वितीय संस्करणके लिए

रुबाइयाँ

शादकी ९५ रुबाइयां अंग्रेजी अनुवादके साथ हमीद-मज़िल पटन सिटीने बहुत सुरुचिपूर्ण ढगसे प्रकाशित की है। उनमें-से ११ चुनकर यह दी जा रही है—

क्या मुफ्तका ज़ाहिदोंने इल्ज़ाम लिया।
तस्बीहके[1] दानोंसे अबस[2] काम लिया॥
यह नाम तो वोह है जिसे बे-गिन्ती लें।
क्या लुत्फ जो गिन-गिनके तेरा नाम लिया॥

क्यों न रहे ग़मे-निहानी[3] तेरा।
दुनियांमें बता कौन है सानी[4] तेरा॥

---

[1]मालाके; [2]व्यर्थ, [3]अन्तरग दुख, [4]तेरे जैसा

हम लेके असा[1] दूर तलक ढूंढ़ आये।
कोसों नहीं नाम है जवानी तेरा॥

घर क़ब्र बने अब वह महल[2] आ पहुँचा।
हुशियार कि पैग़ामे-अजल[3] आ पहुँचा॥
लेकर ख़ते-शौक़[4] चल चुका है क़ासिद।
पहुँचा न अगर आज तो कल आ पहुँचा॥

दुनियामें जो है भी तो न होने की तरह।
जागे भी अगर कभी तो सोनेकी तरह॥
हँसना तो बड़ी बात है, इसका क्या ज़िक्र।
रोना है कि रोये भी न रोनेकी तरह॥

क्या ख़ौफ़ है दुनियासे गुज़र जानेमें।
क्यों डरते हो 'शाद' अपने घर जानेमें?
कुछ ख़ैर है, जिन्दगीमें राहत[5] कैसी।
राहत तो है मेरी जान मर जानेमें॥

मसलक[6] जो अलग-अलग नज़र आते हैं।
यह देखके राहगीर घबराते हैं॥
रस्तेका फ़क़त फेर है रह-रव[7] आख़िर।
मंज़िलपै पहुँचते हैं तो मिल जाते हैं॥

जिस दिलमें ग़ुबार हो, वोह दिल साफ़ कहाँ।
फिर ख़ुल्क[8] कहाँ, वफ़ाओ[9] अल्ताफ़[10] कहाँ॥

---

[1]लठी; [2]अवसर, समय; [3]मृत्यु-सन्देश; [4]मृत्युका पत्र; [5]निराकुलता; [6]रास्ते; [7]यात्री; [8]ख़ुश मिज़ाजी; [9-10]निभाना और महर्बानियाँ।

जिस कौममें आ गया तअ़स्सुबका[1] कदम।
उस कौममें ऐ 'शाद' फिर इन्साफ कहाँ॥

ताकत तने-नातवाँकी[2] सब दूर हुई।
खम हो गई पुश्त,[3] आँख बेनूर[4] हुई॥
क्या शोख़ मिज़ाज थी जवानी मेरी।
पीरीसे[5] मिलाके आप काफ़ूर[6] हुई॥

वाइज़ जब तक कि बरसरे-मिम्बर[7] है।
रिन्दोंकी तरफ रुए-सुख़न[8] अक्सर है॥
इनसाफ़से इतना तो बता दे कोई।
क्या कीना-कशीसे[9] मैकशी[10] बदतर है?

कितनी ही हयात[11] हो मगर मरना है।
ता-उम्र इसी जीस्तका[12] दम भरना है॥
दोज़ख़ क्या है? हजूमे-गममें[13] रहना।
क्या शै है बहिश्त? दिलका ख़ुश करना है॥

बदले न सदाकतकी[14] निशाँ[15] एक रहे।
हर हालमें पिन्हाँ-ओ-अयाँ[16] एक रहे॥
इन्साँ है वही जो इस दुरंगीसे बचे।
लाज़िम है कि दिल और ज़बाँ एक रहे॥

१८ अगस्त १९५७ ई०]

---

[1]पक्षपात; [2]निर्बल शरीरकी; [3]कमर झुक गई; [4]प्रकाश रहित; [5]बुढ़ापेसे; [6]नौ-दो-ग्यारह; [7]व्याख्यान मञ्चपर; [8]मद्यपोंकी ओर व्याख्यानका रुख़ है, [9]द्वेष-भावने, [10]मदिरा पीना. [11]ज़िन्दगी; [12]जीवनका; [13]दु:खोंके समूहमें; [14]सचाईका; [15]चिह्न, [16]छिपा हुआ और प्रकट।

'हसरत' मोहानी

[१८७५—१९५१ ई०]



सैयद फ़ज़लुलहसन 'हसरत' उन्नाव ज़िलेके मोहाना क़सबेमें १८७५ई० में उत्पन्न हुए, और १९०३ ई०में आपने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से बी० ए० पास किया।

'हसरत' कट्टर और धार्मिक मुसलमान थे। नमाज और रोजेके सख़्त पाबन्द थे। औलिया[1] सिफत पीरके मुरीद थे। फिरंगी महल लखनऊके पीरे-ख़ानकाहके हाथपर आप बैअ़त[2] कर चुके थे, और इतनी श्रद्धा-भक्ति रखते थे कि अपने अन्तिम दिनोंमें आप फिरंगी महल आ गये थे। यही ता० १३ मई १९५१को आपकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पहले आपने केवल यही अभिलाषा प्रकट की, कि आपका भी प्रतिवर्ष पीरे-ख़ानकाहके साथ उ़र्स[3] किया जाय। आप अ़रसेसे प्रतिवर्ष हज-यात्राको भी जाया करते थे। किसी भी क़िस्मका नशा नहीं करते थे, यहाँतक कि तम्बाकूसे भी परहेज़ था।

मुसलमानोंके हितके लिए जीना और मरना जीवनका मुख्य ध्येय समझते थे। इस्लामके लिए आपके हृदयमें दहकती हुई ज्वाला थी,

---

[1]पहुँचे हुए फ़क़ीर ; [2]ईमान ला चुके थे, उनके भक्त हो गये थे; [3]समाधिपर कुरआन पढ़ना एवं धार्मिक गायन आदि।

जिसे आप तमाम उम्र सुलगाये रहे, बड़ी-से-बड़ी मुसीबतोके छींटे उसे कभी बुझा नही सके।

भारतकी बागडोर अंग्रेज़ोने मुस्लिम-शासकोंने छीनी थी। अत. आप अंग्रेज़ी-राज्यके कट्टर विरोधी थे। यह वह युग था जब कि भारतके मुसलमान नवाब और रईस अंग्रेज़ोकी चाटुकारितामें ही बड़प्पन समझते थे, और सर सैयदके आन्दोलनके फलस्वरूप जी-हुजूरी मुसलमानोमें व्याप गई थी। अंग्रेज़ोंके विरुद्ध बोलने और लिखनेकी कल्पना स्वप्नमें भी मुसलमानोंसे नही की जा सकती थी। 'हसरत' उस समय भी अंग्रेज़ोंके पाँव भारतसे उखाड़नेके स्वप्न देखने लगे थे।

उन दिनो लोकमान्य तिलक स्वराज्य-आन्दोलन बहुत सरगर्मीसे चला रहे थे। शत्रुका शत्रु अपना मित्र होता है, इसी नीतिके अनुसार 'हसरत' लोकमान्य तिलककी नीतिके समर्थक हो गये। शिक्षा समाप्त करते ही नौकरी आदिके चक्करमें न पड़कर आपने साहित्य और राजनीतिक विचारोंसे ओत-प्रोत 'उर्दूए-मोअल्ला' मासिक पत्र १९०४ ई० मे अलीगढसे निकालना प्रारम्भ कर दिया।

'हसरत' जैसे निर्धन युवकके लिए पत्र-प्रकाशन करना कण्टकाकीर्ण मार्गपर चलना था, परन्तु इरादेके मज़बूत और धुनके पक्के 'हसरत'को विचलित करनेका साहस किसमे था? उर्दूए-मुअल्ला बड़े आबोतावसे प्रकाशित हुआ और बड़े धड़ल्लेसे चलता रहा। साहित्यिक और राजनीतिक गंगा-जमुनी (दोनो) विचारधाराएँ निर्बाध गतिसे बहती रही। १९०४ ई०में आप पहलीबार प्रतिनिधिकी हैसियतसे कांग्रेस-अधिवेशनमें भी सम्मिलित हुए।

१९०८ ई०में एक सज्जनका टर्कीके सम्बन्धमे एक ऐसा लेख 'उर्दूए-मोअल्ला'मे प्रकाशित हो गया, जो अंग्रेज सरकारकी दृष्टिमें गैर कानूनी था। ऐसे विद्रोहको अलीगढ यूनिवर्सिटीके कर्त्ता-धर्त्ता कैसे बर्दाश्त कर सकते थे? उन्होंने जी खोलकर 'हसरत'के विरुद्ध गवाहियाँ दी। फलस्वरूप आप दो

वर्षको जेल भेज दिये गये। मगर चारित्रकी दृढता देखिए कि मजबूर किये जानेपर भी आपने वास्तविक लेखकका नाम नही बताया और सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली।

जेल जानेका तो आपको मलाल नही हुआ, क्योंकि जिस मार्गपर आप चल निकले थे, उसमें ऐसा पड़ाव आना लाज़िमी था। मगर वेहद क़लक़ पुलिसकी इस हरकतसे हुआ कि उसने आपके सामने ही पुस्तकोका वहुत वड़ा सग्रह फूंक दिया, जिसमे वहुत-से हस्तलिखित दीवान भी थे। जेलमे आपको बीस सेर गेहूँ रोजाना पीसने पड़ते थे। उसी जमानेमें आपने यह शेर कहा था—

हैं मश्क़े-सुख़न जारी, चक्कीकी मशक़्क़त भी।
इक तुरफ़ा तमाशा है, 'हसरत'की तबीअ़त भी॥

रमजानका महीना आया तो रोजे रखे, मगर जेलमें न रोजे इख़्तियार करनेके, न खोलनेके खाद्य पदार्थ उपलब्ध थे।

कट गया क़ैदमें माहे-रमजाँ भी 'हसरत'!
गरचे सामान सहरका[1] था न इफ़तारीका[2]॥

स्वदेशी-आन्दोलनके आप प्रवल समर्थक थे। भूलकर भी विदेशी वस्त्रका उपयोग नही करते थे। एक वार किसीके यहाँ आप मेहमान हुए तो मेजवानने आपके पलगपर ओढनेके लिए विदेशी कम्वल रख दिया। अतः आप उस जाड़ेकी रातमे वग़ैर ओढे ही पड़े रहे।

प्रथम महायुद्धमें टर्की, जर्मनीके साथ था। अतः भारतके मुसलमानों-की सहानुभूति जर्मनके साथ थी। विद्रोहकी आशकाके कारण अग्रेजोने कुछ भारतीय मुसलमानोंको नज़रवन्द कर दिया था। 'हसरत' भी उनमें-से

---

[1]खाद्य-पदार्थ जिन्हे सूर्योदयसे पहले खाकर रोजा इख़्तियार किया जाता है; [2]खाद्य-पदार्थ जिन्हे सूर्यास्तके वाद खाकर रोजा खोला जाता है।

एक थे। आप लड़ाई समाप्त होनेके बाद छोड़े गये। फिर कांग्रेस और खिलाफतका गठ्बन्धन हो जानेपर असहयोग-आन्दोलनमें आप जेल गये और कुछ दिनो बड़े सरगर्म कार्य-कर्त्ता रहे, किन्तु साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होनेके कारण आप १९२४के हिन्दू-मुस्लिम-सघर्षके बाद सदैवको देशोपयोगी कार्योंसे पृथक हो गये और मुस्लिम-लीग-जैसी साम्प्रदायिक सस्थासे रिश्ता जोड़ लिया। आप मुस्लिम-लीगके टिकटपर ससदके सदस्य निर्वाचित हुए। पाकिस्तानी आन्दोलनके पक्के हिमायती थे। लेकिन भारत-विभाजन होनेके बाद आप पाकिस्तान न जाकर भारतमें ही रहे, और निर्भीक होकर मुसलमानोंके हितोमें विचार व्यक्त करते रहे।

आप स्वभावत. उग्रविचारक और विद्रोही स्वभावके थे। पढ़ते समय यूनिवर्सिटीमें, कांग्रेसमें, मुस्लिम-लीगमे,ससदमे, हर जगह विद्रोहका झण्डा बुलन्द रखते थे। यहांतक कि पाकिस्तानके प्रबल अंग होते हुए भी आपकी मि० जिनाहसे पटरी नही बैठती थी। यही कारण है कि आप राजनीतिक क्षेत्रमे केवल योद्धा बने रहे, सचालन-सूत्र आप कभी हस्तगत नही कर सके।

'हसरत'के राजनीतिक विचारोंसे लोगोको मतभेद हो सकता है, लेकिन उनकी शाइराना अज़मत और मानवताको सभी आदर और सराहनाकी दृष्टिसे देखते हैं। शाइरीमे जो उनका स्थान है, उसका परिचय तो आगे मिलेगा ही, परन्तु इन्होने प्राचीन शाइरोका चुना हुआ कलाम पचासो भागोमें प्रकाशित किया, जिससे उन शाइरोंका कलाम नष्ट होनेसे बच गया। यदि 'हसरत' शाइर न भी होते तो भी यही एक कार्य उनकी ख्यातिके लिए बहुत बड़ा कार्य था।

साहित्यिक होनेके अतिरिक्त हसरत बहुत अच्छे इन्सान थे, जिनसे जो सम्बन्ध एक बार हो गया, उसे जीवनभर निभाया। बहुत ख़ुश-मिज़ाज, सुलह-कुल और सादा वजअ-कतअके बुज़ुर्ग थे। शेरवानी, तुर्की टोपी,

शरम्री पायजामा उनका मख़सूस लिबास था। दूरका चश्मा लगाते थे। पढ़ते वक़्त चश्मा उतार लेते थे। क़द छोटा, रंग साफ़ आँखें बड़ी, चेहरेपर चेचकके दाग, आवाज बारीक। भारत-विभाजनके बाद कुछ उर्दू पुस्तकोकी तलाशमे मैं दिल्ली गया था कि वही आपके दर्शनहो गये। बहुत अख़लाक़ और मुहब्बतसे पेश आये। मेरे यह निवेदन करनेपर कि मैं आपका कलाम चयन कर रहा हूँ, मगर चाहता हूँ कि एक अपना शेर अपने दस्ते-मुबारकसे डायरीमे लिख दे, आपने सहर्ष यह शेर लिख दिया—

पढ़िए इसके सिवा न कोई सबक़।
"ख़िदमते-ख़ल्क़[1]-ओ-इश्क़-हज़रते-हक़[2] ॥"

डायरीको पढ़ता हूँ और सोचता हूँ कि 'हसरत' तो चले गये, मगर कितनी बड़ी नसीहत अता फर्मा गये—

ख़िदमते-ख़ल्क़-ओ-इश्क़-हज़रते-हक़

१३ मई १९५१को ७५ वर्षकी आयुमे आपका निधन हो गया, और अनवरबागमें अपने पीरे-मुर्शिदके पास आपको समाधि मिली।

हसरतकी शाइरी—

'हसरत' सिर्फ़ गज़लगो शाइर थे, और यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। न तो वे कभी आध्यात्मिक तत्व-चर्चाओमे उलझे, न कभी दार्शनिक गुत्थियोको सुलझानेका प्रयत्न किया। उन्होने केवल वही बोल बोले जो उनके जीवनसे सम्बन्धित थे।

हसरतकी जो ख्याति और सर्वप्रियता मिली, वह बहुत कम लोगोको

---

[1] संसार-सेवा; [2] सत्यवादियोसे (हक़वालोसे) प्रेम।

नसीब होती है। जिन शाइरोने मृत्युशैयापर छटपटाती गज़लमें जीवन सचार करके उसे दर्शनीय और गौरवपूर्ण बनाया, उनमें-से एक आप भी है।

'हसरत'का शाइरीमे न तो कोई प्रतिद्वन्द्वी था, न उन्हें कभी अपने समकालीन शाइरोंसे तू-तू, मैं-मैंसे वास्ता पडा। वे छोटोसे आदर और बडोंसे सदैव स्नेह पाते रहे। उनका शाइराना रग और व्यक्तित्व दोनो ही उच्च थे।

'हसरत'की शाइरीमे कृत्रिमता नही, स्वय उनके जीवनके अनुभव है। उर्दूशाइरीमे यह एक बहुत बडा दोष पाया जाता है कि वह वास्तविकतासे कोसो दूर है। जिन शाइरोने कूचए इश्कमें कभी कदम नही रखा, जो नही जानते कि आंख लगनेसे कैसी पीडा होती है, वे भी अपनी शाइरीमे मजनूं और फरहादके उस्ताद नजर आते है। जो ज़िन्दगीभर ज़ाहिदे-खुश्क रहे, कभी एक बूंद सुरा हलकके नीचे उतारनेका अवसर नही मिला, वे भी अपनेको मैखानेका इमाम घोषित करते है। जो सारी ज़िन्दगी नमाज-रोज़ेमे गँवाते रहे, हज-यात्राको सरके बल जाते रहे, वे शाइर भी काबा-ओ-खुल्दकी खिल्लियाँ उडाते रहे है।

इसका कारण यही है कि उर्दू-शाइरीके महलका निर्माण इश्क और शराबके गारेसे हुआ है। गज़लमे शराबो-इश्कके अतिरिक्त और कुछ है ही नही। अत. हर व्यक्ति जो शाइर बनना चाहता है, उसे शराबो-इश्कके गीत गाने ही पडते है। चाहे उसके जीवनमें इनसे दूरका भी लगाव न हो।

उर्दू-शाइरोंके जीवन परिचयमे अक्सर यह पढनेमे आता है कि वे ९-१० वर्षकी आयुमें ही शेर कहने लगे थे। भला यह भी कोई उम्रमे उम्र है, जिसमें इश्क सम्बन्धी किसी भी बातका अनुभव हो सके। फिर भी शाइरोकी परम्पराके अनुसार इन बाल-कवियोंके कलाममें हुस्न, माशूक़, रकीब, दरबान, हरजाई आदि सभी देखनेको मिलते है। माँ-बापके अत्यन्त

प्रयत्न करनेपर भी दूध पीनेके लिए भी जिनकी नीद उचाट नही हो पाती, वे भी अपने आईनए-कलाममे, गमे-हिजरांमे रात-रातभर रोते-विसूरते नज़र आते है ।

तात्पर्य यह है कि वे अवोध किशोर जो प्रेम-सम्वन्धी अनुभवोसे शून्य है, वे भी उर्दू-परम्पराका सहारा लेकर कल्पना क्षेत्रमे आशिक वने मजनूंकी तरह घूमते है। जो नही जानते कि माशूक है किस मर्ज़की दवा, वे भी माशकोके हाव-भाव, नखरे-गमजे आदिको इस ढगसे नज्म करते है कि मालूम होता है कि इश्ककी सभी मजिलें तै कर ली है ।

उर्दूमे ऐसे अनुभवहीन, शाइरोंका इश्किया कलाम वहुत अधिक ह । 'हाली' जैसा शाइर इसी दूषित प्रथाके कारण अपने आपको वर्षो धोखा देता रहा। इस धोखे-धड़ीके सम्वन्धमे हाली लिखते है—

"शाइरीकी वदौलत चन्द रोज़ झूठा आशिक वनना पड़ा। एक खयाली माशूककी चाहमें दश्ते-जुनूं (उन्माद-मार्ग)की वह खाक उडाई कि क़ैस-ओ-फ़रहादको गर्द कर दिया। कभी नालए-नीमशवी (रात्रिमे विलखते हुए)से रुवअ़े-मिस्कूं (आवाद स्थान)को हिला डाला, कभी चश्मे-दरियावार (आँसुओ)से तमाम आलमको डुवो दिया। आहो-फुगाँके जोरसे कुर्रोवियाँके कान वहरे हो गये। शिकायतोंकी वौछारसे जमाना चीख उठा। तानोकी भरमारसे आसमान चलनी हो गया। जव रश्कका तलातुम (ईर्ष्याका वेग) हुआ तो सारी खुदाईको रकीव (प्रतिद्वन्द्वी) समझा। यहाँतक कि आप अपनेसे वदगुमान हो गये। .. वार-हा तेगे-अव्रू (भवें-रूपी तलवार)से शहीद हुए और वार-हा एक ठोकरसे जी उठे। गोया जिन्दगी एक पैरहन (वस्त्र) था कि जव चाहा उतार दिया और जव चाहा पहन लिया। मैदाने-कयामतमे अक्सर गुजर हुआ। वहिश्त-ओ-दोजखकी अक्सर सैर की। वादानोशी (शराव पीने) पर तो खुम-के-खुम लुंढा दिये और फिर भी सैर (सन्तुष्ट) न हुए।..... कुफ्रसे मानूस और ईमानसे वेजार रहे।...खुदासे शोखियां की।...

. . २० वर्षकी उम्रसे ४० वर्षतक तेलीके बैलकी तरह इसी एक चक्करमें फिरते रहे और अपने नजदीक सारा जहान तय कर चुके। जब आँख खुली तो मालूम हुआ कि जहाँसे चले थे, अब तक वही हैं।"[1]

'हसरत'की सबसे बडी विशेषता यही है कि उन्होने अपनेको इस धोखे-जालमे नही फँसाया। स्वय भी सच बोले और दूसरोको भी सच बोलनेके लिए प्रोत्साहित किया। 'हसरत'का प्रेम मानवी-प्रेम है। उन्होने ईश्वरकी आडमे प्रेमका बखान करके न तो भक्त बननेकी कभी चेष्टा की और न कभी दार्शनिक और आध्यात्मिक बननेकी भूल की। उन्होने केवल इसी दुनियाके प्रेमका बखान किया है।

हसरत एक सफल प्रेमी थे। अत उनके कलाममे हिज्र, नाले, नाकामी, बेएतनाई आदिकी कैफियतोका बयान बहुत कम मिलता है, और यत्र-तत्र जो थोडा-बहुत मिलता है, वह उर्दू-परम्पराके होज़में जी बहलानेके लिए कूद पडनेके कारण मिलता है।

हसरतका जीवन इश्क, तसव्वुफ और राजनीतिका सगम रहा है। इश्ककी धारा उनके यहाँ अबाध गतिसे प्रवाहित रही है, और एकाकार हो गई है।

तसव्वुफकी झलक यत्र-तत्र इसलिए मिलती है कि 'हसरत' धार्मिक व्यक्ति थे। नमाज़-रोज़ेके सख्त पाबन्द, अर्सए-दराज़मे हजके यात्री और सूफियोंके श्रद्धालु और ऐसे भक्त कि फिरंगी महलके एक सूफी बुजुर्गके हाथ पर बैअत करली। प्रतिवर्ष अजमेर, पीराने-कलियर, बहराइच आदि सूफियाए-करामके उर्सोंमें शरीक होते थे। यही नही, उन्होने अपनी जीवन-लीला भी फिरगी महलकी दरगाहमे समाप्त की। वही उनको समाधि मिली और प्रतिवर्ष उनकी समाधिपर भी उनकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार उर्स होते रहनेकी व्यवस्था हुई। इसी श्रद्धा-भक्तिके कारण

---

[1] शेरोशाइरी पृ० २७५-७६।

उनके कलाममे यत्र-तत्र सूफियाना शेर नज़र आते है। लेकिन उनका यह रंग फीका है और फीका होना लाज़िमी भी था। गुरुजनोकी श्रद्धा-भक्तिमें आनन्द तो मिलता है, पर प्रेयसी-मिलनकी प्रतीक्षामें जो उत्कठा, तड़प, बेचैनी, और गर्मी-ए-मुहब्बत होती है, वह श्रद्धा-भक्तिमे नही। कर्तव्य पूर्ण करने और हृदयकी उमगमे जो अन्तर है, या भाई और पतिके साथ नारीके स्नेह और चाहतमे जो अन्तर है, वही अन्तर 'हसरत'की आशिकाना और सूफियाना शाइरीमें है।

'हसरत'की राजनीतिक शाइरी तो और भी फीकी और बेजान है। जनाब खलीलुर्रहमान आजमी लिखते है—

"हसरतने बार-हा जेलमे चक्की पीसी और पुलिसके कोडे खाये। लेकिन उनकी सियासी (राजनीतिक) शाइरी रस्मी और फुसफुसी है। ....क्या वजह है कि उनकी शाइरीमे उनकी ज़िन्दगीका यह पहलू पूरे तौरपर अपना अक्स न दिखा सका? यह सवाल दरअस्ल बड़ा अहम (गंभीर) है और वाकई हैरत होती है कि वही 'हसरत' जिनकी ज़िन्दगीमे हिन्दोस्तानने कितनी करवटे ली, कांग्रेसकी इब्तिदाई तहरीके-आज़ादी (प्रारम्भिक आन्दोलन) से लेकर जगे-अज़ीम, कहते-बगाल, तक़सीमे-हिन्द, फसादात और न जाने कितने वाकेआत जिन्हे हिन्दोस्तानके बिगाड़ने और बनानेमे बडा दख्ल है, 'हसरत' ही के ज़मानेमे पेश आये और खुद 'हसरत' उसमें ज़ाती तौरपर शरीक रहे, लेकिन 'हसरत'की शाइरीमे इन वाक़ेआतकी गरमी, खनक और धमक कही महसूस नही होती। उन्होने तिलक, डा० अनसारी या बाज सियासी रहनुमाओ (राजनीतिक नेताओ)के बारेमें जो नज्में लिखी है, वोह बहुत रस्मी अन्दाज़में लिखी गई है, जैसे किसीका सेहरा लिख दिया जाये। वोह नक़्क़ाद (आलोचक) जो किसी शाइरपर लिखते वक़्त महज़ उसके ज़मानेके हालात और समाजी पसे-मंज़र (सामाजिक स्थिति)पर ही निगाह रखते है, यहाँ बड़ी दुश्वारीमे मुब्तिला हो जायेगे। आखिर 'हसरत'के बारेमे क्या फतवा सादिर किया जाय? क्या वे रजअ़त

पसन्द (दकियानूसी, पुराने खयालके) शाइर थे, कि ज़मानेकी तरफ़से आँख बन्द करके अपनी महबूबा (प्रेयसी)की यादमे मुब्तिला रहे ? क्या वे कौमी तरक़्क़ी और आज़ादीकी तहरीकमे दिलसे हिस्सा नही ले रहे थे ? मेरा खयाल है 'हसरत'का बड़े-से-बड़ा मुखालिफ भी इस बातकी जुरअत नही कर सकता कि उनके खुलूस (नीयत)पर शुबहा करे। उन्होने हिन्दुस्तानकी जगे-आज़ादीमें जो कुर्बानियाँ दी है, उनका एअतराफ न करना बडी बेईमानी होगी। लेकिन उनकी शाइरीको पढते और उसपर राय देते वक़्त ज़रा सब्रसे काम लेना पडेगा। 'हसरत' मुखलिस (साफ, निर्मल) थे, सच्चे थे। रजअत पसन्द नही, बल्कि बडे तरक्की पसन्द और इन्सानियतके लिए बडे मुफीद थे। लेकिन शाइरीपर इन्सानके उस शऊरका असर पडता है, जो उसके मिजाज और उसकी शख्सियत (व्यक्तित्व)का परवरदा (पाला हुआ, पोसा हुआ) होता है। अगर कोई नक्काद (आलोचक) शाइरके मिज़ाजको समझ ले और उसके शऊरका तजजिया (परख) कर ले तो उसकी शाइरीके महरकात (उभारो) और उसके मौजूआत (कविता-विषय)की नौअियतको बहुत आसानीमे समझ सकता है। दरअस्ल खारिजी दुनियामें जो कुछ हो रहा है, उससे तो इन्कार मुमकिन ही नही, लेकिन खारिजी दुनियाका अक्स हर शाइरपर उसके शऊरके एअतबार ही से पडता है। एक आदमी इन्किलाबकी जगमे एक मुखलिस (सच्चे) सिपाहीकी हैसियतसे काम करनेके बावजूद आज़ादी और इन्किलाबके इद्राक (सूझ-बूझ)से महरूम होता है, और उसके शऊरमे उसे जज़्ब करने और उसकी तहोतक पहुँचनेकी सलाहियत (क्षमता) नही होती। वह अपने जिस्मो-जानको उस राहमे कुर्बान करना तो ज़रूरी समझता है, लेकिन उसे यह पता नही होता कि यह राह किस तरह मुतअय्यन (निश्चित) की जाये। इसमे कौन-कौनसे मोहरे और चाले है। किन हथियारोंसे काम लिया जाये कि दुश्मनपर फ़तह हासिल हो। कब कदम फूँककर रखना है और कब तेज़गामीकी ज़रूरत है। उसे तो सिर्फ आज़ादीसे मुहब्बत

है, और उसका वह एक जाँनिसार सिपाही है। इस सिपाहीके खुलूसकी भी तारीफ की जाएगी, लेकिन उसके शऊर और इदराक (बुद्धि और समझ)पर भरोसा नही किया जा सकता। एक आदमी जो आज़ादी और इन्किलावके लिए इतनी कुर्वानियाँ नही दे सकता, लेकिन वह उससे अलग रहते हुए भी उसे अपने शऊरमें जज्ब करनेकी सलाहियत (क्षमता) रखता है और साथ ही साथ उसके अन्दर खुलूस है तो वह इस जज्बे (भाव) को शिद्दतसे महसूस कर सकता है; और उसके इदराक (सूझ-बूझ)पर हम ज़्यादा भरोसा कर सकते हैं। 'हसरत' और 'इकवाल' दोनोकी शाइरीको पढिए तो पता चलेगा कि सिर्फ शख्सियतोके फर्कने एक सियासी (राजनीतिक) आदमीको मुहब्बतका शाइर और गैर सियासी तथा गोशा-नशीन शख्सको कौमो-मुल्क आजादी-ओ-सियासत और इन्सानियतका शाइर वनाया। 'हसरत'की सच्चाईमे कोई शुवहा नही, लेकिन उनकी शख्सियतमे वोह उन्सर (तत्त्व) नही थे, जो एक शख्सको मदीख (वुज़ुर्ग, वरतर) सियासतदाँ, मुफक्किर, फल्सफी और मसाएले-हयात (जीवन-गुत्थियो)का इदराक रखनेवाला वना देते है। उनकी सियासी ज़िन्दगीसे जो लोग वाकिफ है, वे अच्छी तरह जानते है कि 'हसरत' एक सियासी कारकुन (कार्य-कर्ता) होनेके वावजूद सियासी सूझवूझ नही रखते थे। वोह पुर-खुलूस (सच्चे) मगर जज्वाती (भावुक) आदमी थे। वहुत जल्द किसीके वारेमे कोई राय कायम कर लेते थे। यही वजह है कि सियासतमें वोह हमेशा नाकाम रहे। हर जमाअतमें हिज़्वे-मुखालिफ (विद्रोहीवर्ग)की सरदारी उन्होने की और हर तजवीज़पर मुखालिफतमे धुआँधार तकरीरें करनेके लिए वे मशहूर थे। किसी वातको ठण्डे दिलसे ग़ौर करना, मसालेह (अच्छे-वुरे पहलुओ)पर नजर रखना, ज़व्तो-इस्तक़लाल (धैर्य और सजीदगी), हालात और वक़्तकी रफ्तारको पहचानना और उसके तकाज़ोको समझना, मुनासिव मौकेपर कदम उठाना, यह 'हसरत'की सियासतमे शामिल न था। यही वजह है कि हम उन्हें एक सच्चा और वफादार सिपाही कह सकते है। लेकिन वा-शऊर

सियासतदाँ नही। ज़ाहिर है कि सिपाही लड तो सकता है, लेकिन जगपर वा-शऊर तरीक़ेसे नज़र नही डाल सकता। वल्कि उसको तो अपनी कठिन मज़िलोमे अपने माज़ी (भूतकाल)की सुनहरी यादके सहारे ही दिल वहलाना होगा और मेरा ख्याल है कि हसरत जो बुढापेतक इश्किया शाइरी करते रहे, उसकी सबसे बड़ी वजह यही है।"[1]

'हसरत'की शाइरी उनकी आप बीती जीवनी है। यही उनकी शाइरीकी सबसे बडी विशेषता है और यही उनकी शाइरीका दोप भी। 'हसरत' एक अपने ही समाज और खान्दानकी युवतीसे प्रेम करते है। उनके लिए सामाजिक और खान्दानी रीतिरिवाजोसे सघर्ष करते है। इसी अवधिमें प्रेयसीसे छेड-छाड़ और आंख-मिचौनी चलती रहती है, और अन्तमे 'हसरत' उसे अपनी जोवन-सगिनी वना लेनेमें कामयाव हो जाते है।

प्रेयसीको पत्नी वना लेनेपर इश्क मर जाता है। जो प्रेयसी कभी मल्का समझी जाती थी, वह शादी हो जानेपर दासी हो जाती है। शादी होनेपर प्रेयसीका वह वुलन्द मर्तवा कायम नही रह सकता, जो पहले होता है। फूल केवल दूरसे निहारनेके लिए है, सूंघनेपर उसका गौरव नष्ट हो जाता है।

हसरतका इश्क शादी होनेके वाद कवतक स्थिर रहता? अधिक-से-अधिक ८-१० वर्ष। यानी हसरतकी २५-३० वर्पकी उम्रतक। हसरतकी प्रेयसी जो शादीके वाद 'वेगम हसरत' कहलाने लगी, उसे 'हसरत'के इश्किया अशआर सुननेके वजाय चूल्हे-चक्कीसे अधिक सरोकार हो गया। 'हसरत'से ज्यादा अव वह वाल-वच्चोको चाहने लगी। उनके भरण-पोपण, शिक्षा-दीक्षाकी चिन्तामें दिन-रात घुलने लगी।

यही कारण है कि 'हसरत'की इश्किया शाइरीमें एकरूपता नज़र आती है। यानी उन्हें जो अनुभव जवानीमें हुए, उन्हीको वुढापेतक नज्म

---

[1]निगार जनवरी १९५२ पृ० ९३।

करते रहे। हसरतकी शाइरी जवानीकी शाइरी है। उनकी शाइरीमे जवानीके उतारके साथ उतार आता गया है। होना तो यह चाहिए था कि उम्रके साथ-साथ नये-नये अनुभवोको अपनी शाइरीके बढ़ते हुए अभ्यासके साथ नित नये ढगसे सँजोते और तराशते जाते। लेकिन ऐसा नही हुआ, और इसका कारण केवल यही हो सकता है कि जवानीके बाद उनका इश्क भी बूढा हो गया, और उनका राजनीतिक जीवन इतना सघर्षमय हो गया कि फिर वे दिलकी शाइरी न करके रस्मी तौरपर शाइरी करते रहे। यही वजह है कि उनकी शाइरी भी उम्रके साथ बूढी होती चली गई, और उनकी शाइरीमे उत्तरोत्तर फीकापन आता चला गया।

वे ज़िन्दगीभर एक ही मौज़ूँसे लिपटे रहे। जवानीके उफानमें जो बोल, बोल गये—

याद कर वह दिन कि तेरा कोई सौदाई न था।
बा-वजूदे-हुस्न तू आगाहे-रअ़नाई न था॥

वही बुढापे (१९४१ ई०)मे भी बोलते रहे—

जब सिवा मेरे न था कोई निशाना तेरा।
याद है मुझको अभीतक वोह ज़माना तेरा॥

आज़मी साहब फ़र्माते है—

"हसरतके पहले दीवानसे उनके कलामका मुतालआ शुरू कीजिए तो तीसरे-चौथे दीवानतक पहुँचते-पहुँचते हसरत कुछ मद्धिम होना शुरू होते है, और ग्यारहवे-बारहवेतक पहुँचते-पहुँचते तो वे बिल्कुल बुझ जाते है। इधर दस-बारह सालसे अपनी ज़िन्दगी ही मे ब-हैसियत शाइरके उनका रोल तकरीबन खत्म हो गया था। कभी-कभार जो ग़ज़लें कहते थे, वह रस्मी और बेजान होती थीं। जिन्हे लोग तबर्रुकन पढते थे।"[1]

---

[1]निगार जनवरी १९५२ पृ० ११०।

हसरतका शाइरीमे मर्तवा—

'हसरत' मौजूदा गज़लगोईके बानी-मुबानी समझे जाते हैं। आपने उर्दू-ग़ज़लमें उस समय जीवन-संचार किया, जब कि वह मृत्यु-शैयापर पड़ी छटपटा रही थी। न उसमे युगके साथ चलनेकी शक्ति रही थी, न अपनी ओर आकर्षित करनेकी क्षमता। वह विस्तरे-मर्गपर पड़ी हुई कराह रही थी, और सन्निपात ज्वरमे इस तरह बड-बडा रही थी—

गिरे होते उलझकर आस्तांसे।
चले आते हो घबराये कहांसे ?

हमीं झूठे हैं, दग़ावाज हमीं हैं, साहब।
हम सितम करते हैं और आप करम करते हैं॥

बाग़बां कलियां हो, हलके रंगकी।
भेजना है एक कमसिनके लिए॥

छुपा-छुपाके नजर-बाजियां हों ग़ैरोंसे।
हमींसे आंख चुराना! जरा इधर देखो!!

'अमीर' इतना न छेड़ो उसको सरे-शाम।
कि शब भर प्यार करनेको पडी है॥

वोह फूलवालोंका मेला वोह सैर याद है 'दाग' !
वोह रोज झरनेपै जमघट, परी जमालोंका॥

गुद-गुदाया जो उन्हें नाम किसीका लेकर।
मुसकराने लगे वोह मुंहपै दुपट्टा लेकर॥

ईदका दिन है परीज़ाद हैं सारे घरमें।
राजा इन्दरका अखाड़ा है हमारे घरमें॥

पर्दा उठाके मुझसे मुलाक़ात भी न की।
रुख़सतके पान भेज दिये बात भी न की॥

सुबहको आये हो भूले शामके।
जाओ भी अब तुम रहे किस कामके॥
हाथा-पाईसे यही मतलब भी था।
कोई मुँह चूमे कलाई थामके॥

वस्लकी रात चली एक न शोख़ी उनकी।
कुछ न बन आई तो चुपकेसे कहा मान गये॥

पान बन-बनके मेरी जान कहाँ जाते है ?
यह मेरे क़त्लके सामान कहाँ जाते हैं॥

क्यों मुझसे है यह मुफ़्तकी तकरार, क्या हुआ ?
अच्छा जो मैंने कर ही लिया प्यार, क्या हुआ ?

जब वोह बाहें गलेका हार नहीं।
दूरका प्यार कोई प्यार नहीं॥

वोह एक हम कि जो चाहा किया विसालकी रात।
वोह एक तुम कि तुम्हारी हयासे कुछ न हुआ॥

तुमने एक बोसेपै 'मुज़त्र' दिले-मुज़त्र बेचा।
यार ईमानकी ये है कि बड़े दाम लिये॥

कहते हैं "वस्लमें तुम छेड़े ही जाते हो मुझे।
गालियाँ कुछ अभी पड़ जायें तो क्या बात रहे"॥

किसीसे वस्लमें सुनते ही जबान सूख गई।
"चलो हटो भी, हमारी जबान सूख गई"॥

आँखें दिखलाते हो जोबन तो दिखाओ साहब।
वोह अलग बाँधके रक्खा है जो माल अच्छा है॥

जले हैं गैर क्या-क्या, वोह जो खिल्वतसे मेरे निकले।
परेशाँ, बाँधकर जूड़ा, दुपट्टा ओढ़कर उलटा॥

छेड़ देना था कि भरमार थी दुश्नामोंकी।
एक सोशा था कि फर-फर उसे गरदान गये॥

इसतरहकी अश्लील बकवास जब कोई रोगी प्रारम्भ कर दे, तो घरवालोंके अतिरिक्त भला किसमे साहस है, जो उसकी परिचर्या या मिजाजपुरसीके लिए नजदीक आ सके। मृत्युके समीप जाती हुई गज़लको सबसे घातक चरका 'हाली'के नज्म-आन्दोलनसे लगा। जब घरका भेदी प्राण लेनेपर उतारू हो जाय, तब उसके बचनेकी आशा भी क्या की जा सकती है?

'हसरत'ने ठीक ऐसे संकटकालमे गज़लको सहारा दिया। 'दाग' और 'अमीर' मीनाईकी चिकित्सासे जो बड-बडाहट प्रारम्भ हो गई थी, उसे 'हसरत'ने प्राकृतिक चिकित्सा-द्वारा समाप्त ही नही किया, अपितु ऐसा कायाकल्प किया कि उसे अमरत्व प्राप्त हो गया। इस कायाकल्पका श्रेय केवल 'हसरत'को है, यह कहना न्यायसंगत नही होगा। 'हसरत' की शाइरीका जब युग प्रारम्भ हुआ, तब 'शाद' अज़ीमाबादी, 'यास' अज़ीमाबादी (अब नाम यगाना चगेज़ी) और लखनवी शाइर सफी, अज़ीज़, आरज़ू, जलील, असर, साकिब, महशर, तथा असगर गोण्डवी, फ़ानी बदायूनी आदि बडी तनदेहीसे गज़लकी सार-सँभाल कर रहे थे, और उस पतनोन्मुखी वातावरणमे भी उनके मुँहसे सुरुचिपूर्ण शेर निकल रहे थे।

'हसरत' और उनके समकालीन उक्त शाइरोंने सचमुच गजलको जीवनदान दिया। उसे भद्रसमाजके उपयुक्त बनाया और युगके साथ चलते रहनेकी शक्ति प्रदान की।

'हसरत'ने उर्दू-गजलकी पुरानी रवायतोको नये साँचेमें ढाला। नई तराश-खराश की। उसे आकर्षक रूप-रग दिया। उनके कलाममें 'मुसह्फी' जैसे कोमल और मधुर भाव और 'मोमिन' जैसी फारसी तरकीबोका सम्मिश्रण एक अजीब लुत्फ पैदा कर देता है। लेकिन उनके यहाँ 'मीर' जैसा सोज़ो-गुदाज नही है। स्वय भी फर्माया है—

'मीर'का　शेवए-गुफ़्तार　कहाँसे　लाऊँ ?

और 'मीर'का शेवए-गुफ्तार बाजारमे बिकनेवाली चीज़ होता तो 'हसरत' भी खरीद लाते। मगर जो शेवए-गुफ्तार दिलमे चरका लगनेपर और जीवनभर खून रोनेसे आता है, उसे 'हसरत' क्योकर प्राप्त कर सकते थे? वे कामयाब आशिक थे। वे क्या जानें असफलता और निराशाके आनन्दको। उन्हे प्रेयसीकी यादमे सर फोड़ने और बिलख-बिलखकर रोनेकी लज्ज़त कभी नसीब नही हुई।

'हसरत' 'तसलीम'[1] लखनवीके शिष्य थे, और 'मोमिन' स्कूलके तनहा यादगार। सो वह भी चल बसे। बकौल 'आसी' गाजीपुरी—

सुब्ह तक वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादेसबा !
यादगारे-रौनके-महफिल थी परवानेकी खाक॥

'हसरत' अवध प्रान्तीय और 'तसलीम' लखनवीके शिष्य होते हुए भी देहलवी रगके शाइर थे। खुद भी फर्माया है—

---

[1] 'तसलीम' 'तसनीम'के शागिर्द थे और 'तसनीम' 'मोमिन'के शिष्य थे। 'मोमिन' 'तसनीम' और 'तसलीम'का परिचय एव कलाम 'शेरो-सुखन' प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

'हसरत' मुझे पसन्द नहीं तर्जे-लखनऊ।
पैरो हूँ शाइरीमें जनाबे 'नसीम'का॥

'हसरत'ने जिन 'नसीम' साहबका पैरो (अनुयायी) होनेका उल्लेख किया है, वह 'नसीम' देहलवीसे मुराद है, जो 'मोमिन'के शिष्य और 'हसरत'के उस्तादके उस्ताद थे। हसरतके उस्ताद 'तसलीम' लखनवी होते हुए भी सदैव देहलवी स्कूलके अनुयायी रहे।

'हसरत'के चन्द अशआरकी झाँकी

मूसाने खुदाका जलवा तो देखना चाहा, लेकिन अपनेमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य न जुटा सके, जो खुदाके जलवेको सह सके। खुदा तो फिर भी खुदा है, लेकिन 'हसरत'की प्रेयसी भी इतनी महान है कि उसकी ओर भी देखनेका साहस नही होता—

मेरी निगाहे-शौकका शिकवा नहीं जाता।
सोतेमें भी पाससे देखा नहीं जाता॥

'हसरत'का इश्क कितना बुलन्द और पवित्र है कि वे उसके आगे फिरदौसको भी हेच समझते है—

वल्लाह तुझे छोड़के ऐ कूचए-जानाँ!
'हसरत'से तो फिरदौसमें जाया नहीं जाता॥

हमारा प्राणप्यारा जीवन सर्वस्व हमें विसार बैठा है, इसका कारण शायद यही है कि हमसे कोई अक्षम्य भूल हुई है। अन्यथा उसकी यह उपेक्षा हमपर कदापि न होती—

फिर और तग़ाफुलका सबब क्या है ख़ुदाया!
मैं याद न आऊँ उन्हें, ऐसा नहीं मुमकिन॥

बच्चेकी तोतली और रसभरी वाणी सुनते-सुनते मन तृप्त नही होता। जी यही चाहता है कि बच्चा अपनी बातें बार-बार दुहराये जाय।

इसीलिए ऐसा भाव धारण कर लिया जाता है कि हम उसकी बातें सुनना नही चाह रहे है। फलस्वरूप वह नई-नई अठखेलियो-द्वारा अपनी बातको बार-बार दुहराता है, और माँ-बाप आदि उसकी इस सरलताका आनन्द लूटते है। 'हसरत'की प्रेयसीकी भी यही आन्तरिक अभिलाषा है कि वह अपने प्यारेके प्यार भरे बोल बराबर सुनती रहे—

खुद उसको मेरी अर्ज़े-तमन्नाका शौक़ है।
क्यों वर्ना यूं सुने है कि गोया सुना नहीं॥

भारतीय नारी पतिको ही परमेश्वर समझकर चारो ओरसे ध्यान समेटकर उसीकी हो रहती है। लेकिन पुरुषकी ओरसे उसे वह प्यार और सम्मान नही मिलता, जिसकी वह अधिकारिणी है। जो नारी जननी है, अम्बा है, सृष्टिकर्त्ता है, वह नारी भी ईश्वरका ही रूप है। पुरुष यदि कामुकताकी आँखे बन्द करके नारीके इस रूपका दर्शन करे तो फिर स्वर्ग और बैकुण्ठमे जानेकी ज़हमत गवारा क्यो की जाय? इसी पृथ्वीपर जन्म लेनेको विष्णु ब्रह्मा, तरस उठे 'हसरत' इसी पवित्र भावनाको यूं व्यक्त करते है—

हम क्या करें अगर न तेरी आर्ज़ू करें।
दुनियामें और भी कोई तेरे सिवा है क्या?

अपने प्यारेकी यादमे दिन-रात लीन रहनेके अतिरिक्त और कुछ भी सुखकर नही है—

शब वही शब है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जायें॥

प्राचीन शाइरोने प्रेमको असाध्य रोग बताया और उससे बचते रहनेकी कड़ी-से-कड़ी चेतावनियां दी। वर्तमान युगीन शाइर 'शाद' और 'जोश'ने

कहा कि इश्क मनुष्यके लिए आवश्यक है। विना इसके आदमीमे आदमीयत नही आती। लेकिन 'हसरत' एक कदम आगे बढ़ते हुए फर्माते है कि इश्क इस आदमीयतको अमरत्व प्रदान करता है—

तुमपर मिटे तो ज़िन्दए-जावेद[1] हो गये।
हमको बका[2] नसीब हुई है, फ़नाके[3] बाद॥

और सचमुच—"जिसे मरना नही आया, उसे जीना नही आया।"

मांगनेसे भी कभी राजनीतिक अधिकार मिले है? अधिकार मांगे नही जाते, छीने जाते है। इसी आशयको 'हसरत' गज़लके अन्दाज़मे यूं व्यक्त करते है—

वस्लकी बनती है इन बातोंसे तद्बीरें कहीं?
आर्ज़ूओंसे फिरा करती है, तक़दीरें कहीं?

इश्क किया नही जाता, हो जाता है। अनजानेमे ही दिलपर ऐसी चोट लग जाती है कि उस चोटका घाव जीवनभर नही भरता, और यह अनजानेमें, बेसमझीमें जो हो जाता है, उसकी याद भी कभी विस्मरण नही होती। वह एक अव्यक्त आनन्दका अनुभव कराती रहती है—

हुस्नसे अपने वोह ग़ाफ़िल था, मै अपने इश्कसे।
अब कहांसे लाऊं वोह नावाकिफ़ीयतके मज़े॥

'हसरत'की प्रेयसी लज्जाशील नारी है—

आईनेमें वोह देख रहे थे बहारे-हुस्न।
आया मेरा ख़याल तो शरमाके रह गये॥

---

[1]अमर; [2]ज़िन्दगी; [3]मृत्युके।

मिर्ज़ा ग़ालिबका अनुभव[1] है कि मृत्युसे पूर्व दु:खोसे छुटकारा नही मिल सकता। लेकिन 'हसरत' और ही कुछ कहते है—

क्यों कहें हम कि ग़मे-दर्दसे[2] मुश्किल है फ़राग़[3] ॥
जब तेरी यादमें हर फ़िक्रसे हासिल है फ़राग़ ॥

जब इश्कमे पुख्तगी आ जाती है, तब विरह और मिलनमे कोई अन्तर नही रहता—

अब सदमए-हिजरॉसे भी डरता नहीं कोई।
ले पहुँची है याद उनकी बहुत दूर किसीको ॥

अपने प्यारेकी यादके अतिरिक्त ससारके समस्त कार्य व्यर्थ है। यहाँतक कि पूजा-पाठसे भी आत्म-विज्ञापन और अभिमानकी गन्ध आती है—

कुछ भी हासिल न हुआ, जुहदसे[4] नख़वतके[5] सिवा।
शग़्ल बेकार है सब उसकी मुहब्बतके सिवा ॥

इसी रंगके दो शेर और—

---

[1]वह अनुभव यह है—

क़ैदे-हयात-ओ-बन्दे-ग़म अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाए क्यों ?

[यह जीवन शरीररूपी पिंजरेमें क़ैद है, जबतक इस शरीरमें रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। ज़िन्दगी और कष्टोंका बन्धन (क़ैदेहयात-ओ-बन्दे-ग़म) परस्पर भिन्न नही, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम है। दुखोंके पुंजको ही ज़िन्दगी कहते है। इसलिए मुक्तिसे पूर्व ग़मोंसे छुटकारेकी आशा व्यर्थ है] [2]दर्दके रंजसे, पीड़ासे ; [3]छुटकारा ; [4]दिखावटी उपासनासे ; [5]अभिमानके।

हसरत मोहानी

सबसे मुंह मोड़के राज़ी हैं तेरी यादसे हम।
इसमें इक शाने-फरागत[1] भी है राहतके[2] सिवा॥

शाम हो या कि सहर याद उन्हींकी रखनी।
दिन हो या रात हमें ज़िक्र उन्हींका करना॥

हसरतके यहां भी उर्दू-गज़लकी परम्पराके अनुसार रकीबका ज़ि
आता है। मगर किस खूबीके साथ ? वे रक़ीबकी महफिलमें अपने हबीब
बेजा हरकतोंको देखने या उसकी चौकसी करने नहीं जाते। वे तो केव
अपनी प्रेयसीके हमराह रहते हैं—

बज़्मे-दुश्मनमें भी दिल थामे हुए बैठा रहा।
ग़ैर मुमकिन है जहां ऐ शोख़ ! तू हो, मैं न हूं॥

अक्सर लोगोंने हसीन, मगर बेशऊर, युवतियोंको रेलवे प्लेटफार्म
किसी दरियापर स्नान करते और कपड़े बदलते देखा होगा। उनके फूहड़
और बेशऊरपनसे वहां खड़े हुए शोहदे लुत्फ उठानेसे बाज़ नहीं आते—

तमन्नाने की खूब नज़्ज़ारा-बाज़ी।
मज़ा दे गई हुस्नकी बेशऊरी॥

हसरतके दीवानमें इस तरहके गिरे हुए शेर स्थान न पाते तो उत्त
होता—

तुझमें कुछ बात है ऐसी, जो किसीमें भी नहीं।
यूं तो औरोंसे भी दिल हमने लगा रक्खा है॥

बात तो 'हसरत' अपनी प्रेयसीसे यही कहना चाहते थे कि तू विश्वक
सुन्दरियोंमें यकता है, तेरा कोई जवाब नहीं। मगर—"औरोंसे भी दि
हमने लगा रक्खा है" कहकर अपनेको भौंरा साबित कर दिया और प्रेयसीक
व्यर्थमें आशंकित और बरहम कर दिया। इसी बातको 'मीर'ने इस खूबी

व्यक्त किया है कि उनकी प्रेयसीके अनुपम सुन्दरी होनेके साथ ही 'मीर'के पारखी हृदय और सच्चे इश्कका परिचय मिलता है—

फूल, गुल, शम्सो-कमर[1] सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत॥

चुना हुआ कलाम

अब हम 'कुल्लियाते हसरत'से चुनकर सभी रगके कुछ शेर सन्वार दे रहे हैं। ताकि पाठक हसरतकी शाइरीके उतार-चढावका अनुमान लगा सकें।

१८९३—१९०३ ई०

जो आना हो तो आओ बेतकल्लुफ।
यह अर्ज़े-जलवए-हैरत-फ़ज़ा[2] क्या ?

करते थे कभी हौसलए-तर्के-मुहब्बत।
अब सदमए-दूरी भी उठाया नहीं जाता॥
उम्मीद नहीं उनसे मुलाकातकी हरचन्द।
आँखोंसे मगर शौके-तमाशा नहीं जाता॥

अल्लाहरी महरूमी, अल्लाहरी नाकामी।
जो शौक किया हमने सो खाम[3] नजर आया॥
इस शुग़्लसे[4] आँखोंको दमभर जो नहीं फ़ुरसत।
रोनेमें वह क्या ऐसा आराम नजर आया ?

कफसमें सैयाद बन्द करदे, नहीं तो, बेरहम छोड़ ही दे।
यहाँ उम्मीदोबीममें[5] आख़िर रहेंगे हम जेरे-दाम[5] कबतक ?

---

[1]चांद-सूर्य ; [2]जलवा देखनेके लिए प्रार्थना कबतक की जाय ? [3]व्यर्थ; [4]कार्यमें ; [5],[5]आशा और डरके जालमे कबतक फँसे रहेगे ?

सताइए न मुझे यूं ही दिलफिगार[1] हूं मैं।
रुलाइए न मुझे ख़ुद ही बेकरार हूं मैं॥
तेरा यह रंग कि है बेसबब ख़फ़ा मुझसे।
मेरा यह हाल कि बेवजह बेकरार हूं मैं॥

हज़ारों बार छेड़ा, जोशिशे-ग़म-हाय-फ़ुरक़तने[2]।
हज़ारों बार आंसू आपके सरकी कसम निकले॥

वोह जो बेचैन हुए देखके हालत मेरी।
हो गई और परेशान तबीअ़त मेरी॥

छेड़ा है दस्ते-शौक़ने[3], मुझसे ख़फ़ा है वोह।
गोया कि अपने दिलपै मुझे इख़्तियार है!

१९०३-१९१२ ई०

हम रहे यां तक तेरी ख़िदमतमें सरगर्मे-नियाज़[4]।
तुझको आख़िर आइनाए-नाज़े-बेजा[5] कर दिया॥

मानूस[6] हो चला था तसल्लीसे हाले-दिल।
फिर तूने याद आके बदस्तूर कर दिया॥

किसे फ़ुरसत? तुम्हारी जुस्तजूके शौक़े-बेहदसे।
अभी हमने कहां ढूंढा, अभी हमने कहां पाया?

दयारे-शौक़में मातम बपा है मर्गे-'हसरत'का।
वोह वज़ए-पारसा उसकी, वोह इश्क़े-पाकबाज़ उसका॥

---

[1]भग्नहृदय; [2]विरह-कष्टोंके जोशने; [3]अभिलाषी हाथोंने; [4]नम्र प्रार्थी; [5]आवश्यकतासे अधिक सौन्दर्याभिमानी; [6]अभ्यस्त, परिचित।

चल भी दिये वोह छीनके सब्रो-करारे-दिल।
हम सोचते ही रह गये यह माजरा है क्या?

देखो जिसे, है राहे-फ़नाकी तरफ़ रवाँ।
तेरी महल-सराका यही रास्ता है क्या?

इरादे थे कि उनसे हाले-दिल सब मिलके कह देंगे।
मगर मिलनेपै हमसे आज होता है न कल कहना॥

खुले न हमसे ख़मोशाने-आर्ज़ूकी ज़बाँ।
जो इत्तिफ़ाक़ भी हो, उनसे हमकलामीका॥

अब तो उठ सकता नहीं आँखोंसे बारे-इन्तिज़ार[1]।
किस तरह काटे कोई लैलो-नहारे-इन्तिज़ार[2]॥
उनकी उल्फ़तका यक़ीं हो उनके आनेकी उम्मीद।
हों यह दोनों सूरतें, तब है बहारे-इन्तिज़ार॥
उनके ख़तकी आर्ज़ू है, उनकी आमदका ख़याल।
किस क़दर फैला हुआ है, कारोबारे-इन्तिज़ार॥

कमाले-ख़ाकसारीपर यह बेपरवाइयाँ 'हसरत'!
मैं अपनी दाद ख़ुद दे लूँ, कि मैं भी क्या क़यामत हूँ॥

हमपर भी मिस्ले-ग़ैर हैं, क्यों मेहरबानियाँ?
ऐ बदगुमाँ! यह ख़ूब नहीं, बदगुमानियाँ॥

भुलाता लाख हूँ लेकिन बराबर याद आते हैं।
इलाही तर्के-उल्फ़तपर वोह क्योंकर याद आते हैं॥
हक़ीक़त खुल गई 'हसरत' तेरे तर्के-मुहब्बतकी।
तुझे तो अब वह पहलेसे भी बढ़कर याद आते हैं॥

---

[1]प्रतीक्षाका बोझ; [2]प्रतीक्षाके रात-दिन।

निगाहे-यार जिसे आश्नाए-राज़[1] करे।
वोह अपनी ख़ूबिए-क़िस्मतपै क्यों न नाज़ करे॥

और तो पास मेरे हिज्रमें क्या रक्खा है।
इक तेरे दर्दको पहलूमें छुपा रक्खा है॥
आह वह याद कि उस यादको होकर मजबूर।
दिले-मायूसने मुद्दतसे भुला रक्खा है॥

न देखे और दिले-उश्शाकपर[2] फिर भी नज़र रक्खे।
क़यामत है निगाहे-यारका हुस्ने-ख़बरदारी[3]॥
यही आ़लम रहा गर उसके हुस्ने-सहर परवरका[4]।
तो बाक़ी रह चुकी दुनियामें राहो-रस्मे-हुशियारी॥

मेरे उज़्रे जुर्मपर मुतलक़ न कीजे इल्तिफ़ात[5]।
बल्कि पहलेसे भी बढ़कर कजअदा[6] हो जाइए॥
मेरी तहरीरे-नदामतका[7] न दीजे कुछ जवाब।
देख लीजे और तग़ाफ़ुल-आश्ना[8] हो जाइए॥
हाय री बे-इख़्तियारी यह तो सब कुछ है मगर।
उस सरापा नाज़से क्योंकर ख़फ़ा हो जाइए॥

मुझे शिकवए-जफ़ाकी नहीं आने पाई नौबत।
वोह सितम भी गर करे है, तो ब-लुत्फ़े होशमन्दी॥

देख ऐ सितमे-जानां! यह नक़्शे-मुहब्बत है।
बनते हैं ब-दुश्वारी, मिटते हैं ब-आसानी॥

---

[1]भेद जाननेवाला, अन्तरंग साथी; [2]आशिकोंके दिलपर; [3]सावधानीकी खूबी; [4]रातके जादूका; [5]कृपा; [6]तिरछे, ख़फ़ा; [7]क्षमा-याचनाके, पत्रका; [8]उपेक्षापूर्ण।

थी राहते-हसरतकी किस दर्जा फ़रावानी ?
मैंने ग़मे-हस्तीकी सूरत भी न पहचानी ॥

मैं उस बुते बद-खूकी[1] इस आनपै मरता हूँ।
खींचा न कभी उसने अन्दोहे-पशेमानी[2] ॥

अर्ज़े-करमपै[3] तर्के-जफा भी न कीजिए।
ऐसा न हो कि आप मिला भी न कीजिए ॥

अब रोनेसे क्या होगा, परवाना है बे-परवा।
बरबाद है सब मेहनत, ऐ शमअ्-लगन तेरी ॥

ज़ाहिर मलाले-रश्को-रकावत[4] न कीजिए।
बेहतर यही है उनसे शिकायत न कीजिए ॥

उज्ऱे-सितम जरूर न था आपके लिए।
'हसरत'को शर्मसारे-नदामत न कीजिए ॥

सितम हो जाये तमहीदे-करम[5] ऐसा भी होता है।
मुहब्बतमें बता ऐ जब्ते-गम ! ऐसा भी होता है ॥

न मुझको इसकी ख़बर है, न ख़ुद उन्हें है ख़ियाल।
कुछ इस तरहसे मुहब्बत बढ़ाई जाती है ॥

यह भी आदाबे-मुहब्बतने गवारा न किया।
उनकी तसवीर भी आँखोंसे निकाली न गई ॥

---

[1] बदआदत; [2] अपने जुर्मपर शर्मिंदा होनेकी परेशानी न उठाई; [3] कृपाकी याचनापर; [4] ईर्ष्या-शत्रुताका रंज; [5] कृपाकी भूमिका।

दिलको था हौसलए-अर्ज़े-तमन्ना[1] सो उन्हें।
सरगुज़िश्ते-शबे-हिजराँ[2] भी सुनाई न गई ॥

१९१२-१६ ई०

शर्फ़[3] हासिल हो उस जाने-जहाँसे[4] मुझको निसबतका[5]।
गुलामीका सही, गर हो न सकता हो मुहब्बतका ॥

आपको अब हुई है क़द्रे-वफ़ा।
जब कि मैं लाएक़े-जफ़ा न रहा ॥

तुझको पासे-वफ़ा ज़रा न हुआ।
हमसे फिर भी तेरा गिला न हुआ ॥
कट गई एहतियाते-इश्क़में उम्र।
हमसे इज़हारे-मुद्दआ न हुआ ॥
कौन लाता तेरे एताबकी[6] ताब।
ख़ैर गुज़री कि सामना न हुआ ॥
छिड़ गई जब जमाले-यारकी बात।
ख़त्म ता-देर सिलसिला न हुआ ॥
मैं गिरफ़्तारे-उल्फ़ते-सैयाद।
दामसे छुटके भी रिहा न हुआ ॥
हर घड़ी शेख़को है फ़िक्रे-सवाब[7]।
यह भी इक तरहका अज़ाब[8] हुआ ॥
अब यह क्यों आप मनके फिर बिगड़े।
अब यह किस बातपर अताब हुआ ॥

---

[1]अभिलाषा प्रकट करनेका साहस, [2]विरह-रात्रिकी बीती घटना; [3]इज़्ज़त; [4]विश्वसुन्दरीसे, [5]सम्बन्धित होनेका, [6]रोषकी; [7]पुण्यकी चिन्ता; [8]कष्ट, दुख।

आपके हाथसे करम[1] कि सितम।
जो हुआ मुझपै बेहिसाब हुआ॥

रहने लगी उनकी याद हरदम।
अब और हमें रहेगा क्या याद?

वोह तो करदें मेरा क़ुसूर मुआफ़।
मैं ही कहता नहीं, 'हुज़ूर मुआफ़'॥

सब आये, पर इक तू न आया, न आया।
तेरा ब-देर देखा किये रास्ता हम॥*
यह क्या मुंसिफी[2] है, कि महफ़िलमें तेरी।
किसीका भी हो जुर्म पायें सजा हम॥
तेरी ख़ूए-बरहमसे[3] वाकिफ़ थे फिर भी।
हुए मुफ़्त शर्मिन्दए-इल्तिजा[4] हम॥

तमहीदे-सुल्हे-शौकके[5] सामान हो गये।
जितने थे उनके जौर[6] सब एहसान हो गये॥

ख़न्दए-अहले-जहाँकी[7] मुझे परवा क्या थी।
तुम भी हँसते हो मेरे हालपै रोना है यही॥

---

[1]कृपा;

*साक़ी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये।
आना था जिनको वो ही न आये तमाम रात॥
—शमीम जयपुरी

[2]न्यायपरायणता; [3]क्रोधीस्वभावसे; [4]प्रार्थना करके शर्मिन्दा; [5]सुलह करनेके; [6]अत्याचार; [7]संसारके हँसनेकी।

अगर हुआ भी तो उल्टा असर दुआमें हुआ।
सकूने-यास[1] मिला, इज्तिरावके[2] वदले॥

जमाले-यारकी[3] रंगीनियां अदा न हुई।
हज़ार काम लिया हमने खुश वयानीसे॥

वहुत खजिल[4] हूं तेरे दर्दसे दुआ मेरी।
यह ख़ौफ है कि न सुन ले कहीं खुदा मेरी॥
छुपे वोह मुझसे तो क्या।यह भी इक अदा न हुई।
वोह चाहते थे न देखे कोई अदा मेरी॥*
कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तिज़ारका लुत्फ।
कहीं कुबूल न हो जाए इल्तिजा मेरी॥†

मुझसे वरगश्ता न होते तो तअज्जुव होता।
आपको उज्रे-तग़ाफुलकी ज़रूरत क्या है॥

खींच लेना वोह मेरा पर्देका कोना दफ्अतन।
और दुपट्टेसे तेरा वोह मुंह छुपाना याद है॥

ग़ैरकी नजरोंसे वचकर सवको मर्ज़ीके खिलाफ।
वोह तेरा चोरी छुपे रातोको आना याद है॥

---

[1]निराशाका चैन; [2]तड़पके; [3]प्रेयसीके रूपकी; [4]शर्मिन्दा।

*अन्दाज अपना देखते हैं आईनेमें वोह।
और यह भी देखते हैं, कोई देखता न हो॥
—निज़ाम रामपुरी

†हम आंख वन्द करके तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वोह आजायें तो क्या हो॥
—रियाज़ खैरावादी

पर्देसे इक झलक जो वोह दिखलाके रह गये ।
मुश्ताक़े-दीद[1] और भी ललचाके रह गये ॥
टोका जो बज़्मे-ग़ैरसे आते हुए उन्हें ।
कहते बना न कुछ वोह क़सम खाके रह गये ॥

१९१६-१९१७ ई०

सुनके ज़िक्रे-इश्क रह जाते हैं अक्सर हम खमोश ।
अब तलक इतना असर बाक़ी है उनकी यादका ॥

क्या हुआ 'हसरत' वोह तेरा इद्दआए-ज़ब्ते-ग़म[2] ।
दो ही दिनमें रंजे-फ़ुरक़तका गिला होने लगा ॥

की मैंने लुत्फ़े-यारकी पहले न कुछ भी क़द्र ।
होती है किससे जिन्से-फ़रावांकी एहतियात[3] ॥

ऐ सेहरे-हुस्ने-यार[4] मैं अब तुझसे क्या कहूँ ?
दिलका जो हाल तेरी बदौलत है आजकल ॥
इकतर्फ़ा बेख़ुदीका है आलम कि इश्क़में ।
तकलीफ़ आजकल है न राहत है आजकल ॥

हमपर तेरी निगाह जो पहले थी अब नहीं ।
वह भी न कुछ दिनोंमें रहे तो अजब नहीं ॥

'हसरत' जफ़ाए-यार[5] तो इक आम थी अदा ।
इज़हारे-इल्तेफ़ात[6] मगर बेसबब नहीं ॥

---

[1]देखनेके अभिलाषी; [2]कष्ट सहनेकी क्षमता; [3]अधिक वस्तुका आदर, चौकसी; [4]प्रेयसीके रूपका जादू [5]माशूक द्वारा किये गये जुल्म; [6]कृपाओंका प्रदर्शन ।

उसीसे छुपते हैं होती है जिसपर उनकी नजर।
अगर यही है तो उम्मीदवार हम भी हैं॥

मुझमें तावे-जमाले-यार कहां?
शौक उन्हें मेरे रूबरू न करे॥

उनके कदमोंपे रख दिया सरे-शौक।
हम यह क्या बेख़ुदीमें कर गुज़रे?

शबे-फुरकतमें याद उस बेखबरकी बार-बार आई।
भुलाना हमने भी चाहा, मगर बेइख्तियार आई॥

आग़ाजे़-आशिकी[1] था, जोशो-ख़रोश यकसर।
या इन्तहाए-ग़म है, हैरानी-ओ-ख़मोशी॥

१९१७-१९१८ ई०

इसकी बात और है पायें जो हम इसमें भी मज़ा।
आपने तो न दिया कुछ भी अज़ीयतके[2] सिवा॥

उनको यां वादेपे आ लेने दे ऐ अब्रे-बहार!
जिस कदर चाहना फिर बादमें बरसा करना॥
कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है 'हसरत'!
उनसे मिलकर भी न इज़हारे-तमन्ना करना॥

नज़र फिर न की उनपै दिल जिसका छीना।
मुहब्बतका यह भी है कोई करीना?
'हसरत' फिर और जाके करें किसकी बन्दगी?
अच्छा, जो सर उठायें भी उस आस्तांसे हम॥

---

[1]प्रारम्भिक प्रेमासक्ति; [2]कष्टके।

पूछते हैं वह कि "हमसे, तेरी ख्वाहिश है सो क्या ?"
दिलमें जो-जो कुछ हैं मेरे, अब मैं उनसे क्या कहूँ ?

ख़ुदा जाने यह अपना हाल क्या है हिजरे-जानाँमें।
कि आहें लबतक आती हैं, न अश्क आँखोंसे बहते हैं ॥
खमोशी को अ़जब यह गुफ़्तगू है वस्लमें बाहम।
न कहते हैं वोह कुछ हमसे, न हम कुछ उनसे कहते हैं ॥

हाल खुल जायेगा बेताबिए-दिलका 'हसरत'!।
बार-बार आप उन्हें शौक़से देखा न करें ॥

शौक जब हदसे गुजर जाय तो होता है यही।
वर्ना हम और करमे-यारकी परवा न करें ॥

हविसे-दीद[1] मिटी है, न मिटेगी 'हसरत'!
देखनेके लिए चाहो उन्हें जितना देखो ॥

हर नग़मेने उन्हींकी तलबका दिया पयाम।
हर साजने उन्हींकी सुनाई सदा[2] मुझे ॥

१९१८-१९२२ ई०

शिकवए-ग़म तेरे हुजूर किया।
हमने बेशक बड़ा क़ुसूर किया ॥

नादिम हूँ जान देकर, आँखोंको तूने ज़ालिम !
रो-रोके बाद मेरे क्यों लाल कर लिया है ?

देख ले अब भी कहीं आकर जो वोह ग़फ़लत-शआ़र।
किस कदर हो जाय मर जानेमें आसानी मुझे ॥

---

[1]देखनेकी तृष्णा; [2]आवाज़।

१९२२-१९२३ ई०

जान दे दी पहुँचके उनके हुजूर।
हमने और उनसे कुछ कहा न सुना॥

दिले-मजबूर भी क्या शै है कि दरसे अपने।
उसने सौ बार उठाया तो मैं सौ बार आया॥

सब मुश्किल है, आर्जू बेकार।
क्या करें आशिकीमें क्या न करें॥

इक यह भी हकीकतमें है शानेकरम उनकी।
जाहिरमें वोह रहते है जो हर वक़्त ख़फा-से॥

मेरा इश्क भी ख़ुदग़रज़ हो चला है।
तेरे हुस्नको बेवफा कहते-कहते॥

१९२३ ई०

हम शिकवए-फ़लक ही करेंगे हुज़ूरे-दोस्त।
ज़ाहिर न होने देंगे वहाँ भी कुसूरे-दोस्त॥

अहदे-यकज़ाम्र फरागतसे भी ख़ुशतर गुज़रा।
वोह जो इक लहज़ा तेरी यादमें हमपर गुज़रा॥

तुझसे अब मिलके तअज्जुब है कि अरसा इतना।
आजतक तेरी जुदाईका यह क्योंकर गुज़रा॥

आपको आता रहा मेरे सतानेका ख़याल।
सुल्हसे अच्छी रही मुझको लड़ाई आपकी॥*

*वोह दुश्मनोंसे देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी निगाहमें॥ —आतिश

कदमोंपे उनके रखके सर रफ़ए-मलाल[1] कर दिया।
हिम्मते-उज्रख़्वाहने[2] आज कमाल कर दिया॥

चलो जान देके 'हसरत' हुई ख़ूब ग़मसे फ़ुरसत।
वोह कभी न तुमसे मिलते यूँ ही सुबहो-शाम करते॥

१९२५-३४ ई०

करनेको तो मैं अहद करूँ तर्के-हविसका[3]।
पर दिलसे कहूँ क्या जो नहीं है मेरे बसका॥

हो रही है सुबहे-इश्क़ तुलूअ़[4]।
हो चले हैं चिराग़े-अ़क़्ल ख़मोश॥

तुझको ऐ महवे-तग़ाफ़ुल[5] मेरी परवाह ही नहीं।
हाले-दिल किससे मैं कहता, तूने पूछा ही नहीं॥

१९३५-१९४० ई०

किस्मते-शौक़ आज़मा न सके।
उनसे हम आँख भी मिला न सके॥
हम तो क्या भूलते उन्हें 'हसरत'!
दिलसे वोह भी हमें भुला न सके॥

थी कभी याद उनकी वजहे-सुकूँ।
अब किसी हालमें करार नहीं॥

१९४१-१९५० ई०

उस शोख़का शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया?
इससे तो ऐ मर्दे-ख़ुदा! बेहतर था मर जाना तेरा॥

---

[1]मलाल दूर कर दिया; [2]क्षमा माँगनेके साहसने, [3]तृष्णा त्यागका; [4]प्रेमरूपी पौ फट रही है; [5]उपेक्षामें लीन।

यह कि तर्के इल्तजाए-तमन्नाका[1] पास है कि वोह शोख़।
ब-ज़ोमे-नाज़[2] भी दामन छुड़ा नहीं सकता॥

रौनके-दिल यूँ बढ़ा ली जायगी।
ग़मकी इक दुनिया बसा ली जायगी॥
दिल न तोड़ो 'हसरतें'-नाकामका।
जुल्फ़ तो फिर भी बना ली जायगी॥

ख़ुद-फ़रामोशियोंमें[3] भी तो हमें।
भूल जाना किसीका याद रहा॥

बदगुमाँ आप हैं क्यों, आपका शिकवा है किसे?
जो शिकायत है हमें गरदिशे-ऐयामसे है॥

पैमाने-वफ़ाके ईफ़ाका[4] हम उनसे तक़ाज़ा भूल गये।
इसका भी तो अब एहसास नहीं, क्या याद रहा क्या भूल गये॥

'हसरत'की तमाम ग़ज़लोंकी संख्या ७७१ होती है, जिनमें ३८३ ग़ज़लें क़ैद या नज़रबन्दीकी हालतमें लिखी गई थीं।

'हसरत'की पहली ग़ज़ल जो उन्होंने १२ या १३ सालकी उम्रमें मदने पहले कही—

मैं तो समझा था क़यामत आ गई।
ख़ैर फिर साहब सलामत हो गई॥
मस्जिदोंमें कौन जाये वाइज़ा!
अब तो इक बुतसे इरादत हो गई॥
जब मैं जानूँ दिलमें भी आओ न याद।
गरचे ज़ाहिरमें अदावत हो गई॥

---

[1]नम्रतापूर्ण अभिलाषाका; [2]अभिमानका बल रखते हुए, [3]अपनेको भूले रहनेपर भी, [4]निबाह करनेके वायदेका।

उनको कब मालूम था तर्जे-जफा।
ग़ैरकी सुहबत क़यामत हो गई॥
इश्कने उसको सिखा दी शाइरी।
अब तो अच्छी फ़िक्रे 'हसरत' हो गई॥

और यह अन्तिम गजल उन्होने मृत्युसे छ. माह पूर्व २० नवम्बर १९५०को लखनऊमें कही थी—

शौक कि दादे-हया मिलती नहीं।
वोह निगाहे-आश्ना मिलती नहीं॥
शेवए-अहले-रियासे जीनहार।
खूए-अरबावे-सफा मिलती नहीं॥
दीवनी है यह मुरव्वत हुस्नकी।
जुर्मे-उल्फ़तकी सजा मिलती नहीं॥
उनसे मिलनेकी हविसमें शौक़को।
ढूँढ़ता है और दुआ मिलती नहीं।
आशिक़ीसे खूए-नाजे-हुस्ने-दोस्त!
वरसबीले-एतना मिलती नहीं॥
यह भी 'हसरत' क्या सितम है इश्कसे।
हुस्नको दादे-जफा निलती नहीं॥

२१ मई १९५२ ई०]

'फ़ानी' बदायूनी

[१८७९–१९४१ ई०]



'मीर' उर्दू-शाइरीके खुदाये-सुखन समझे जाते हैं, और 'फ़ानी' यास-यातके इमाम। यासयात यानी असफल और निराश व्यक्तियोंके ऐसे नेता कि जिन्हें कभी जीवनमें एक क्षणको भी सफलता और आशाकी एक भी किरण दिखाई नहीं दी। तमाम उम्र अथक परिश्रम और उद्योग करते रहे, किन्तु असफलता और निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगा। तब मजबूरन तक़दीर (भाग्य)के आगे तद्बीर (पुरुषार्थ)को घुटने टेकने पड़े। इस पराजयकी घुटनको 'फ़ानी'ने यूँ व्यक्त किया है—

देख 'फ़ानी' वोह तेरी तद्बीरकी मैयत[1] न हो।
इक जनाज़ा[2] जा रहा है, दोशपर[3] तक़दीरके॥



तमाम उम्र हाथ-पाँव मारते गुज़र जाये, फिर भी किनारा हाथ न आये, तब छटपटाकर डूब जानेके अतिरिक्त अन्य उपाय भी क्या है?

कुछ आस्तिक कहेंगे कि 'फ़ानी'ने ऐसे घोर संकटके समय ईश्वरको पुकारा होता तो निश्चय ही बेड़ा पार हो जाता। फ़ानीने यह भी करके

---

[1]अर्थी; [2]शव; [3]कन्धेपर।

देख लिया। वे जीवनभर आस्तिक बने रहे, घोर सकटके क्षणोमे भी वे ख़ुदाको नही भूले। उनका दृढ विश्वास था कि ख़ुदा रहीम है और उसकी रहमत कभी-न-कभी उनपर भी होगी। लेकिन मरते दमतक भी रहमतका सहारा जब नही मिला तो धीरजका बाँध टूट गया, और उसी बेकलीमे उनके मुँहसे निकल गया—

> या रब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फ़ानी'।
> लेकिन तेरी रहमतकी ताख़ीरको क्या कहिए[1] ?

आपदाओके भँवरमें जब फ़ानीकी जीवन-नौका चक्कर काट रही थी, उनकी सगिनी और युवा कन्या भी चल बसी। जो बच रहे उनको क्षणभर भी निराकुल न देख सके। यह वह मनोव्यथा है कि इस टीसका अनुभव भुक्त-भोगी ही कर सकता है। 'मीर' तो एक कल्पना ही करके रह गये कि उन-जैसा बदनाम मद्यप भी मस्जिदका इमाम बन गया है—

> मस्जिदमें इमाम आज हुआ आके वहाँसे।
> कलतक तो यही 'मीर' ख़राबात-नशीं था॥

ख़राबात (मद्यालयो)के मीर (सरदार) रहे तो क्या, और मस्जिदमे इमाम[2] बने तो क्या ? इससे बिगडता-बनता क्या है ? लेकिन 'फानी' तो जीवनभर असफलताओ और निराशाओसे द्वन्द्व करते रहे और एक क्षणको भी विजयी न हुए, इसीलिए उर्दू-आलोचक उन्हे यासियातका इमाम कहते है।

---

[1]कौन कम्बख़्त तेरी दयालुता और दीनबन्धुत्वमें सन्देह करता है ? हमें तो आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि तू अपनी रहमतका हाथ हमारे लिए भी बढायेगा। लेकिन इतना जो विलम्ब (ताख़ीर) हो रहा है इसको क्या कहा जाय ? क्या हम डूब जायेंगे तब · · ?

[2]धार्मिक नेता, जिसके पीछे खड़े होकर लोग नमाज़ पढें।

यासियातका इमाम तो वह भी कहला सकता है, जो असफल और निराश व्यक्तियोंमें आशाका संचार करे, कर्तव्य-क्षेत्रमें डटे रहनेके लिए उत्साहप्रद भावना भरे। लेकिन 'फ़ानी' ऐसे इमाम नहीं हैं, अपितु किसी व्यक्तिमें आशा-उत्साहका कोई अंकुर रह भी गया हो, तो उनकी इमामत (नेतृत्व) उसे जड़-मूलसे उखाड़ फेंकती है, इसी अर्थमें वे यासियातके इमाम हैं।

यही कारण है कि कुछ आलोचक उनकी जीवितावस्थामें ही यह दोषारोपण करने लगे थे कि 'फ़ानी' हर वक्त रोते-बिसूरते रहते हैं। उनकी प्रेमज्वाला ठंडी पड़ गई है। ग़मसे घबराकर हर वक्त मौतकी कामना रखते हैं। उनकी शाइरीमें व्यक्तिगत रोने-झींकनेके अतिरिक्त और रखा ही क्या है? हाय-हाय करना, छाती पीटना, विधवाओंकी तरह शोकमग्न रहना, बिलखते रहना, उनका स्वभाव है। लखनवी शाइरोंकी तरह वह भी प्रेमको एक रोग समझते हैं। उनकी शाइरीमें जनाज़ा, मैयत, कफ़न, लहद, मज़ार, ग़मअ, परवाना आदि शब्दोंकी भरमार रहती है। 'जोश' मलीहाबादी' तो उन्हें मानवतासे गिरा हुआ कहनेमें भी संकोच नहीं करते, क्योंकि मनुष्य होकर जो ग़मोंसे घबरा उठे, उसे वे मनुष्य नहीं, मनुष्यताका अभिशाप समझते हैं।

किसी हालतमें उक्त आलोचनाएँ ठीक हैं, किन्तु एक ही काँटेपर थान और मोती नहीं तोले जा सकते। हर व्यक्तिके जीवनके भिन्न-भिन्न पहलू होते हैं, और भिन्न-भिन्न वातावरणमें रहने-सहनेके कारण जुदा-जुदा आचार-स्वभाव होते हैं। रामायणका पाठक महाभारतके कौरव-पाण्डवोंमें भी भरत-राम-जैसा स्नेह-सम्बन्ध देखना चाहेगा तो निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। हर शाइर 'ग़ालिब' और 'जोश' नहीं

---

[1] 'जोश मलीहाबादीका परिचय 'शाइरीके नये दौर' प्रथमभागमें दिया गया है।

हो सकता। न हर शाइर 'मीर' और 'फ़ानी' जैसा दर्दीला दिल पा सकता है।

ग़ालिब और फ़ानी

प्रारम्भमे 'फानी' भी 'गालिब'से प्रभावित नजर आते हैं, जैसा कि इन चन्द अशआरसे आभास मिलता है—

ग़ालिब— हस्तीके मत फ़रेबमें आजाइयो 'असद'!
आलम तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल है॥

फानी— हर मुज़दए-निगाहे-ग़लत जल्वा ख़ुदफ़रेब।
आलम दलीले गुमरहीए-चश्मोगोश था॥

ग़ालिब— है ग़ैब-ग़ैब जिसको समझते है हम शहूद।
हैं ख़्वाबमें हनूज़ जो जागे है ख़्वाबमें॥

फ़ानी— तजल्लियाते-वहम है मुशाहिदाते-आबो-गिल।
करिश्मए-हयात है ख़याल, वोह भी ख़्वाबका॥
एक मुअम्मा है समझनेका न समझानेका।
ज़िन्दगी काहेको है ? ख़्वाब है दीवानेका॥

ग़ालिब— हाँ खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती।
हर चन्द कहें कि है, नही है॥

फ़ानी— है कि 'फ़ानी' नहीं है क्या कहिए।
राज़ है बेनियाज़े-महरमे-राज़॥

ग़ालिब— न गुले-नग़मा हूँ, न परदए-साज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़॥

फ़ानी— हूँ, मगर क्या यह कुछ नहीं मालूम।
मेरी हस्ती है ग़ैबकी आवाज़॥

गालिब— लो वोह भी कहते हैं कि "यह बे-नंगो-नाम है"।
यह जानता अगर तो लुटाता न घरको मैं॥
फानी— बहला न दिल, न तीरगीए-शामे-ग़म गई।
यह जानता तो आग लगाता न घरको मैं॥

ग़ालिब— छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हर-एकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं॥
फानी— वोह पाए-शौक़ दे कि जेहत्-आश्ना न हो।
पूछूँ न ख़िज्रसे भी कि जाऊँ किधरको मैं॥

ग़ालिब— उग रहा है दरो-दीवारसे सब्ज़ा 'ग़ालिब'!
हम बयाबाँमें हैं और घरमें बहार आई है॥
फानी— याँ मेरे क़दमसे है वीरानेकी आबादी।
वाँ घरमें ख़ुदा रक्खे आबाद है वीरानी॥

ग़ालिब— मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़े-ख़िरमनका है, ख़ूने-गर्म दहक़ाँका॥
फानी— तामीरे-आशियाँकी हविसका है नाम बर्क़।
जब हमने कोई शाख़ चुनी शाख़ जल गई॥

ग़ालिब— हो चुकीं 'ग़ालिब' बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥
फानी— अपनी तो सारी उम्र ही 'फानी' गुज़ार दी।
इक मर्गे-नागहाँके ग़मे-इन्तज़ारने॥

'ग़ालिब' और 'फानी'में अन्तर यही है कि दोनों आपदाओंकी भट्टीमें जीवनभर सुलगते रहते हैं और अन्तमें राख हो जाते हैं। लेकिन 'ग़ालिब' तब भी मुसकराते रहते हैं, तीखे व्यंग्य कसते हैं, और ऐसा मुँह चिढ़ाते हैं कि आपदायें भी झेंप-झेंपकर रहा जाती हैं—

न लुटता दिनको तो, कब रातको यूँ बेखबर सोता।
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़नको !

है किसीमे ऐसी हिम्मत कि सर्वस्व लुट जाये, फिर भी आह न करे, उलटा चोरका आभार ही माने ? अपने उजडे घरको देखकर कितना तीखा व्यग्य करते है—

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर बहर न होता तो बयाँबा होता॥

[हमारा घर तो उजाड होना ही था, फिर रो-रोकर उसे आँसुओ-द्वारा हमने स्वय ही डुबो दिया तो क्या बुरा किया ?]

कम किरायेके टूटे-फूटे मकानमे रहते है। उसकी दीवारोपर काई जम गई है। छतों और मुंडेरोपर घास उग आई है। जानते है कि निर्धनताके कारण ऐसे मकानमे रहना पड रहा है, किन्तु अपनी इस बेबसीपर आँसू न बहाकर किस खूबीसे मुँह चिढाते है कि मकान-मालिकने यह शेर सुना होगा तो अपना सर पीट लिया होगा—

उग रहा है दरो-दीवारपै सब्ज़ा 'गालिब' !
हम बयाबांमें है और घरमें बहार आई है॥

घास और काईको 'सब्ज़ा' और घरकी जीर्णताको 'बहार' कहना गालिबका ही कलेजा है।

दु.ख-दरिद्रतामे जीवन व्यतीत करते-करते खयाल आया कि अगर खुदा मुझे लोक और परलोक दोनो प्रदान कर दे तो क्या हो ? चट स्वाभिमानी हृदय घृणासे भर आया, कि जिस खुदाने एक लमहेको सुख-चैनकी साँस नही लेने दी, उसका दिया हुआ अब क्यो स्वीकृत किया जाय ? लेकिन अपनी वज़अ-क़ितअकी शराफतके कारण 'नही' कहनेका साहस भी नही होता, सकुचाकर रह जाते है—

दोनों जहान देके वोह समझा कि खुश हुआ।
याँ आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करें॥

मीरका प्रभाव

लेकिन 'फ़ानी' दुःखकी भट्टीमें जलते हुए 'ग़ालिब'की तरह मुसकरा नहीं सकते थे। उनका हृदय जिन परमाणुओंने बना था, उनमें मुसकानके अणु नहीं थे। 'फ़ानी' अपनी व्यथा-पीड़ाके कारण 'ग़ालिब'के बजाय 'मीर'के अधिक समीप मालूम होते हैं, उनके बहुतसे अशआर में 'मीर'का धोका होता है। ऐसे चन्द शेर दिये जाते हैं—

'फ़ानी'को या जुनूँ है या तेरी आर्जू है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

नाला क्या? हाँ इक धुआँ-सा शामे-हिज्र।
बिस्तरे-बीमारसे उट्ठा किया॥

आया है बादे-मुद्दत बिछड़े हुए मिले हैं।
दिलसे लिपट-लिपटकर ग़म बार-बार रोया॥

नाज़ुक है आज शायद, हालत मरीज़े-ग़मकी।
क्या चारागरने समझा, क्यों बार-बार रोया?

ग़मके टहोके कुछ हों बलासे, आके जगा तो जाते हैं।
हम हैं मगर वह नींदके माते जागते ही सो जाते हैं॥

महवे-तमाशा हूँ मैं या रब! या मदहोशे-तमाशा हूँ।
उसने कबका फेर लिया मुँह अब किसका मुँह तकता हूँ॥

गो हस्ती थी ख़्वाबे-परीशाँ नींद कुछ ऐसी गहरी थी।
चौंक उठे थे हम घबराकर फिर भी आँख न खुलती थी॥

फ़स्ले-गुल आई, या अजल आई, क्यों दरे ज़िन्दाँ खुलता है ?
क्या कोई वहशी और आ पहुँचा या कोई क़ैदी छूट गया ॥

या कहते थे कुछ कहते, जब उसने कहा—"कहिए"।
तो चुप हैं कि क्या कहिए, खुलती है ज़बाँ कोई ?

यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'फ़ानी' उम्रभर जलते-भुनते रहते, लेकिन उन्हें अपने दिलकी टीस शाइरीमे बखेरकर पाठकोके हृदयको द्रवित करने और उन्हे निराशावादका पाठ देनेका क्या अधिकार था ? उन्हे तो अपने रिसते हुए नासूरपर मरहम लगाकर डब-डबाई आँखोके आँसू पीकर जाहिरामे मुसकराते रहना चाहिए था।

दिलमें हज़ार ग़म हों, ज़बाँपर शिकन न हो

लेकिन शाइरी चित्र-जैसी कला नही कि मनोभाव दबाकर फ़र्माइशके अनुसार चित्रित की जा सके। लाख प्रयत्न किये जाये, शाइरके कलाममे उसके हृदयगत भाव व्यक्त हुए बग़ैर रह नही सकते। 'ग़ालिब'ने लाख चाहा कि वे हृदयमे सुलगते ज्वालामुखीको दबाकर जीवनभर मुस्कराते रहे और व्यंग्योक्तियाँ कसते रहे। मगर यह उनसे भी बराबर नही निभ सका, और उनकी हृदयगत आग उनके चारो ओर फैले बग़ैर नही रह सकी—

दिलमें ज़ौक़े-वस्ल-ओ-यादे-यार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घरको लगी ऐसी कि जो था जल गया ॥

किससे महरूमिए-क़िस्मतकी शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जायें, सो वह भी न हुआ ॥

और जिसे माँगेसे मौत भी न मिले, वह असहाय और लाचार घुट-घुटकर जीने और मनको यह सान्त्वना देनेके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है—

कैदे-हयात-ओ-बन्दे-ग़म, अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाये क्यों ?

शाइरी एक दर्पण है, जिसमें अनिच्छा होते हुए भी हृदयगत भावोंका प्रतिबिम्ब पडे बग़ैर नही रह सकता। सैयद सुलेमान नदवीके शब्दोमे—

"ग़ज़ल लिखनेके लिए स्याही बाज़ारमें नही मिलती, बल्कि खूँ-चकाँ सीनेमें पाई जाती है। उसके लिए ज़ख्मी दिल दरकार है। इसीलिए 'इक़बाल'ने कहा है—

मिसरअ़ेमन कतरए खूने मनस्त।

और 'कतरएखून' शारीमें उसी वक्त टपकता है, जब कि शाइरका खुलूस उसमें कारफ़रमा हो। शेरमे शेरियत (कवित्व)के साथ-साथ तासीर (प्रभाव, असर)का होना भी ज़रूरी है।"[1] तासीर बग़ैर शेर निष्प्राण शरीरके समान है।

'फानी के एक-एक शब्दमे उनकी आत्मा बोल रही है। उनके कलामके अध्ययनसे उनके जीवन-पृष्ठ स्वय उजागर हो जाते है; और यही उनकी शाइरीका कमाल है। ज़हीरुद्दीन अहमदख़ाँ लिखते है—

"वही शाइरी बुलन्दपाया (उच्चतम) होगी, जिसको शाइरने खुद महसूस किया हो। जिन्दगीकी चक्कीमे जिसने अपनेको पीसा हो, और रजो-ग़मकी भट्टीमे जिसने अपनेको सुलगाया हो, उससे जो आवाज़ निकलती है, वही शाइरी है।"[2]

'फानी' इस शाइरीकी कसौटीपर पूरा उतरते है, जैसा कि उनके जीवन-परिचयसे आभास मिलता है।

फानीका परिचय

शौकतअलीख़ाँ 'फानी' १३ सितम्बर १८७९ ई०में बदायूँ ज़िलेके

---

[1]निगार अप्रैल १९४८, पृ० १०; [2]निगार अप्रैल १९४८, पृ० ११।

इस्लामनगरमें उत्पन्न हुए। वे पठान हैं और उनके पूर्वज शाह आलमके शासनकालमे काबुलसे भारत आये और यहाँ उच्च पदोपर प्रतिष्ठित रहे।

'फानी'के परदादा नवाब बशारतखाँ, बदायूँ सूबेके गवर्नर थे और २०० गाँव उनकी जागीरमे थे। धीरे-धीरे जागीर खिसकती गई और नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि आपके पिता मुहम्मद शुजाअतअ़लीखाँ पुलिसकी नौकरी करनेपर मजबूर हुए और उस थोडे-से वेतनमे ही अपनी सारी जिन्दगी गुज़ार गये।

'फानी'ने १९०१मे बी० ए० और १९०८ में एल-एल० बी० पास किया। १९२३ तक लखनऊमें रहे, उसके बाद सन् ३२ तक आगरेमे वकालत करते रहे। कुछ अर्से बरेली और बदायूँमें भी वकालत की। जब कहीं भी प्रैक्टिस न चली, तब हैदराबादके प्रधान मत्री महाराजा किशनप्रसाद 'शाद'ने मेहरबानी फर्माकर हैदराबाद बुला लिया। मगर वहाँ भी अभाग्यने साथ नही छोडा। वहाँ जाकर जिन असुविधाओ और विघ्न-बाधाओंका सामना करना पडा होगा, उसका कुछ आभास निम्न पत्रसे होता है, जो कि उन्होने २८ जून १९३३ को अपने एक सम्बन्धीको लिखा था—

"मेरा तकर्रुर (नियुक्ति) नही हुआ है, देखिए कब होता है ? और कहाँ ? या गालिबन होता भी है या नही।"

'फानी'को वहाँ मुल्की और गैरमुल्की झगडोंके कारण भी परेशानी उठानी पड़ी।[1] आखिर राम-राम करके फानी-जैसे शाइरको वहाँके एक हाईस्कूलकी हेडमास्टरी नसीब हुई।

---

[1]हैदराबादमे यह प्रान्तीय भावना बहुत पुरानी है। सरकारी नौक-रियोमे मुसलमानोको तो तरजीह दी ही जाती रही है, लेकिन वहाँके मुसलमान भी यह बर्दाश्त नही करते थे कि उनके यहाँ कोई अन्य प्रान्तीय आये। हैदराबादसे बाहरके लोगोको वहाँ 'गैरमुल्की' समझा जाता है। मिर्ज़ा 'दाग'की नियुक्तिपर भी यह एतराज़ उठा था। आज भी वह रोग ज्यो-का-त्यो बना हुआ है।

इसी अर्सेमें उनकी जीवन-संगिनी और युवा पुत्री चल बसी। यहाँ तक कि उनके वहाँ एकमात्र हितैषी महाराजा किशनप्रसाद भी स्वर्गस्थ हो गये। इसे भाग्य-रेखके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? बक़ौल 'जिगर' मुरादाबादी—

मेरे ग़मख़ानए-मुसीबतको।
चाँदनी भी सियाह होती है॥

आजीविकाकी खोजमें—लखनऊ, बरेली, इटावा, आगरा, हैदराबाद—न जाने कहाँ-कहाँकी खाक छानी। जहाँ भी गये असफलताओं और निराशाओंने आगे बढ़कर स्वागत-सत्कार किया। 'फ़ानी' भावुक थे, तनिक- तनिक-सी बातें उनके दिलपर चरका पहुँचाती थी, और दिल जब ज़ख्मी होता है तो बक़ौल 'सीमाब'—

सितारोंकी चमकसे चोट लगती है रगे-जाँपर

हैदराबादमें जिसप्रकार उन्होंने दिन गुज़ारे, उनके बारेमें वहाँके पत्र 'पयाम'ने लिखा था—

"इस सरज़मीनपर शायद ही कोई ऐसा साहिबे-कमाल इस कसमपुरसीकी हालतमें दफ़्न हुआ हो, जिस हालतमें 'फ़ानी'ने अपनी जिन्दगीके चन्द आख़िरी साल गुज़ारे।"[1]

शेरगोईका शौक़ 'फ़ानी'को ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही हो गया था। यानी सबसे पहली ग़ज़ल आपने १८९० ई०में कही और २० वर्षकी

---

[1] इसी हैदराबादमें 'जलील' मानिकपुरी भी रहते थे और 'फ़ानी' बदायूनी भी। जलील उस्तादे-शाह थे और फ़ानी गदाए-राह (मार्गके भिक्षुक)।

—जोश मलीहाबादी

आयुमें दीवान मुकम्मिल हो गया था। अफसोस कि वह नष्ट हो गया। १९०६मे दूसरा दीवान तैयार किया तो वह भी पहले दीवानकी तरह गुम हो गया। आख़िर दिल वैठ गया और १९१७ तक 'फ़ानी' दुनियाए शाइरीसे रूपोश रहे। इसके बाद जलवागर हुए तो उनका पहला दीवान वदायूँसे छपा। दूसरा दीवान 'बाकिआते फ़ानी' १९२६मे और शेष कलाम 'वजदानियात' १९४०मे प्रकाशित हुआ। वक़ौल किसीके—

"लतीफतरीन एहसासात रखते हुए तवाहियों और वरवादियोका मुसलसल(निरन्तर) शिकार होना और फिर ज़िन्दा भी रहना एक इन्सानको फानी न बना दे तो और क्या तवक़्क़ोअ (आशा) हो सकती है ? हवादिस-ओ-सदमात (मुसीवते और रंजोगम) इब्तदामे दर्दनाक भी मालूम होते है, और नाकाविले वरदाश्त भी। इन्सान चीखता भी है और आँसू भी वहा लेता है। लेकिन उस हिरमाँ-नसीव (असफल-निराश व्यक्ति)को क्या कहिए ? जिसके आँसू भी इन मुतवातिर और पैहम (लगातार-निरन्तर) चोटोसे खुश्क हो जाते है। फिर उसकी मुसकराहट भी 'आह' वन जाती है, और यास (निराशा) मे उसको लुत्फ भी आता है। चुनाँचे किसी मातमकदे (शोक-गृह)के नौहा (मातम) करनेवालेसे अगर तरानए-शादियाने (मंगलवाद्य)की तवक़्क़ोअ (आशा) नही की जा सकती तो 'फानी'की शाइरी भी यासयाते (निराशावादी) शाइरी ही हो सकती थी।"

फानीने जव होश सँभाला तो लखनवी शाइरीसे कघी, चोटी, सुरमा-मिस्सी, चोली-दामन विदा हो गये थे। लखनऊकी नवावी मिट चुकी थी। इसलिए रंगीन और जनानी शाइरीकी जगह मर्सिया ले रहा था। लखनऊके उरूजके दिनोमे वहाँके शाइरोने जिस तत्परतासे रंगीन एवं खारिजी शाइरीके नोक-पलक सँवारे थे, उसी तेज़ीमे मर्सियाके मैदानमे भी कूदे। जिस घरमें शादीके नग्मोसे कान पड़ी आवाज सुनाई न देती हो, उस घरमे अकस्मात दुर्घटना होने पर क्रन्दन भी आकाश भेदी उठता है।

मर्सियागोई रंगीन शाइरीकी प्रतिक्रिया थी, और यह स्वाभाविक भी था। उन दिनों लखनवी शाइरोंको रंजो-ग़म गिरिय-ओ-मातम, गोरे-ग़रीबाँ और यासो-हिरमाके अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। यहाँतक कि ग़ज़लमें भी मर्सियतका रंग चढ़ रहा था। रंगीन शाइरीकी तरह इसमें भी लखनवी शाइरोंने तकल्लुफ़ और कृत्रिमताको हाथसे नहीं छोड़ा।

फ़ानीकी प्रकृति इस वातावरणके अनुकूल थी। वे इस रंगसे काफ़ी प्रभावित हुए। यद्यपि प्रारम्भमें वे ग़ालिबके अनुयायी नज़र आते हैं, किन्तु लखनवी मर्सियतका वातावरण उनके अधिक अनुकूल रहा। अतः करुणा-व्यथा भरे बोल उनके मुँहसे अनायास निकलने लगे।

यहाँतक कि इस पृथ्वीका स्वर्ग काश्मीर भी उनके हृदय-कमलको नहीं खिला सका, वहाँका प्रसिद्ध 'निशातबाग़' भी उन्हें फ़र्सूदा (कुम्हलाया हुआ) नज़र आया—

इस बाग़में जो कली नज़र आती है।
तसवीरे-फ़सुर्दगी नज़र आती है॥
कश्मीरमें हर हसीन सूरत 'फ़ानी'।
मिट्टीमें मिली हुई नज़र आती है॥

फूलोंकी नज़र-नवाज़ रंगत देखी।
मख़लूक़की दिल-गुदाज़ हालत देखी॥
क़ुदरतका करिश्मा नज़र आया कश्मीर।
दोज़ख़में समोई हुई जन्नत देखी॥

उनकी पत्नी और पुत्री मिट्टीमें मिल जायें और उनका घर जिसे वह जन्नत बनाना चाहते थे, दोज़ख़ बन जाये; तब हर हसीन सूरत उन्हें मिट्टीमें मिली हुई और 'जन्नत' दोज़ख़में समोई हुई दिखाई न देती और क्या दे? यही व्यथा-भरा प्रलाप धीरे-धीरे वह रूप लेता गया, जिसे आज 'फ़ानी'की शाइरी कहा जाता है। व्यथा रूपी दीमकसे खाये

हुए उनके मनसे यही ध्वनित होगा, चाहे वह काश्मीरमें रहें या हैदराबाद-में—

दैरमें या हरममें गुज़रेगी।
उम्र तेरे ही ग़ममें गुज़रेगी॥

और धीरे-धीरे 'फ़ानी' रज-ओ-ग़मके इतने आदी हो गये हैं कि उन्हे सुख-चैनका तो ख्वाबो-खयाल भी नही आता। उन्हे तो अब यही आशंका खाये जाती है कि दुःखसे भरे-पूरे दिन उनके जो व्यतीत हो रहे हैं, वे भी दुर्दैव कही उनसे छीन न ले।

हाँ नाखुने-ग़म कभी न करना।
डरता हूँ कि ज़ख्मे-दिल न भर जाये॥

और इस दुःखको वे मर्दानावार आमन्त्रण देते हैं—

ग़ैरत हो तो ग़मकी जुस्तजू कर।
हिम्मत हो तो बेक़रार हो जा॥

और इस गमको वे अपना सर्वस्व समझते हुए सगर्व कहते हैं—

चुन लिया तेरी मुहब्बतने मुझे।
और दुनिया हाथ मलकर रह गई॥

'फ़ानी'ने मर्सियतसे बहुत जल्द कनाराकशी करके अपना जुदागाना-रग अख्तियार कर लिया। कही उनके यहाँ ग़ालिब-जैसी दार्शनिकता, और कही 'मीर' जैसा सोज़ोगुदाज़ पाया जाता है। इश्किया रंगमे भी उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभाका परिचय दिया है।

हूँ असीरे-फ़रेबे-आज़ादी[1]।
पर हैं और मश्के-हीलए-परवाज़[2]॥

---

[1]स्वतन्त्रताके धोकेका कैदी; [2]पर होते हुए भी न उड़नेके लिए बहाना ढूढना।

इश्क है परतवे-हुस्ने-महबूब[1]।
आप अपनी ही तमन्ना क्या ख़ूब ॥

अब लबपै वोह हंगामए-फ़रियाद नहीं है।
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है ॥

हमको मरना भी मयस्सर नहीं जीनेके बग़ैर।
मौतने उम्रे-दो-रोज़ाका बहाना चाहा ॥

बिजलियाँ शाख़े-नशेमनपै बिछी जाती है।
क्या नशेमनसे कोई शोल्ला-सामाँ[2] निकला ?

'फ़ानी'की ज़िन्दगी भी क्या ज़िन्दगी थी या रब !
मौत और ज़िन्दगीमें कुछ फ़र्क़ चाहिए था ॥

फ़ानीके चन्द मक़्ते

किसीके ग़मकी कहानी है ज़िन्दगीए-'फ़ानी'।
ज़माना एक फ़साना है, मेरे नालोंका ॥

ख़ाके-'फ़ानी'की क़सम है, तुझे ऐ दश्ते-जुनूं !
किससे सीखा तेरे ज़र्रोंने बयाबां होना ?

चमनसे रुख़सते 'फ़ानी' क़रीब है शायद।
कुछ अबकी बूए-कफ़न दामने-बहारमें है ॥

किसकी कश्ती तहे-गिरदाबे-फ़ना[3] जा पहुँची ?
यकबयक शोर जो 'फ़ानी' लबे-साहिल्ने[4] उठा ॥

---

[1]प्रेयसीके सौन्दर्यका प्रतिबिम्ब, [2]दग्धहृदय; [3]मृत्यु-दरियाके भँवरमें; [4]किनारेने।

आज रोज़े-विसाल है 'फ़ानी' !
मौतसे हो रहे हैं नाज़ो-नियाज़ ॥

चुना हुआ कलाम

'वाकेआते फ़ानी' और 'वजदानियत' शीर्षक उनके दो संकलनोंसे उनके सभी रंगके अशआर पेश किये जा रहे हैं—

तूने करम[1] किया तो ब-उनवाने-रंजेज़ीस्त[2]।
ग़म भी मुझे दिया तो ग़मे-जाविदाँ[3] न था ॥

आ गई है तेरे बीमारके मुँहपर रौनक़।
जान क्या जिस्मसे निकली, कोई अरमाँ निकला ॥

रस्मेखुद्दारीसे[4] गो वाकिफ़ न थी दुनिया-ए-इश्क़[5]।
फिर भी अपना ज़ख़्मेदिल शरमिन्द-ए-मरहम[6] न था ॥

मज़ाक़े-तल्ख़पसन्दी[7] न पूछ, उस दिलका—
बग़ैर मर्ग[8] जिसे ज़ीस्तका[9] मज़ा न मिला ॥

मेरी हयात[10] है महरूमे-मुद्दआ-ए-हयात[11]।
वोह रहगुज़र[12] हूँ जिसे कोई नक़्शेपा[13] न मिला ॥

यूँ सबको भुला दे कि तुझे कोई न भूले।
दुनिया ही में रहना है तो दुनियासे गुज़र जा ॥

---

[1]सख़ावत, मेहरबानी; [2]जीवनके दुःखोंके नाम से; [3]चिर कालीन; [4]स्वाभिमानकी रीतिसे; [5]प्रेम-संसार; [6]मरहमका एहसानमन्द; [7]कड़ुवाहटसे रुचि; [8]मरणके; [9]जीनेका; [10]ज़िन्दगी; [11]ज़िन्दगीके उद्देश्योंसे रिक्त; [12]मार्ग; [13]चरण-चिह्न, यात्री।

क्या-क्या गिले[1] न थे कि इधर देखते नहीं।
देखा तो कोई देखनेवाला नहीं रहा॥

एक आ़लमको[2] देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[3] क्या॥

फ़ुरसते-रंजेअसीरी[4] दी न इन धड़कोंने हाय।
अब छुरी सैयादने ली, अब क़फ़सका दर खुला॥

मंज़िलेइश्क़पै[5] तनहा[6] पहुँचे कोई तमन्ना[7] साथ न थी।
थक-थककर इस राहमें आखिर इक-इक साथी छूट गया॥

रफ़्तए-नज़र[8] हो जा, सबसे बेख़बर हो जा।
खुल गया है राज़[9] अपना खुल न जाये राज़ उनका॥

फ़रेबेजल्वा[10] और कितना मुकम्मिल ऐ मआज़ल्लाह !
बड़ी मुश्किलसे दिलको बज़्मे-आ़लमसे उठा पाया॥

हाय क्या दिन है कि नक़्शे-सजदा[11] है और सर नहीं।
याद है वोह दिन कि सर था और बबालेदोश[12] था॥

निगहे-क़हर[13] ख़ास है मुझपर।
यह तो एहसाँ हुआ सितम न हुआ॥
अब करम[14] है तो यह गिला[15] है मुझे।
कि मुझीपर तेरा करम न हुआ॥

---

[1]शिकायत, [2]दुनियाको, [3]पूर्ण. [4]बन्दी जीवनके दुःखोंमें यह अवकाश ही कहाँ मिला, [5]प्रेमकी अन्तिम सीमापर, [6]अकेले; [7]इच्छा; [8]उपेक्षित दृष्टि; [9]भेद; [10]जल्वेका धोखा; [11]भूमि पर माथा टेकनेसे चिह्न बनना; [12]कपोल दोनों; [13]क्रुद्ध-दृष्टि; [14]कृपा; [15]शिकायत।

गुलमें वोह अब नहीं है जो आलम था खारका[1]।
अल्लाह क्या हुआ वोह ज़माना वहारका॥

तिनकोंसे खेलते ही रहे आशियाँमें हम।
आया भी और गया भी ज़माना वहारका॥

उसको भूले हुए तो हो 'फ़ानी'!
क्या करोगे अगर वोह याद आया॥

घर ख़ैरसे तक़दीरने वीराना बनाया।
सामाने-जुनूँ[2] मुझसे फ़राहम[3] न हुआ था॥

बालींपै[4] जब तुम आये तो आई वोह मौत भी।
जिस मौतके लिए मुझे जीना ज़रूर था॥
थी उनके सामने भी वही शाने-इज़्तराव[5]।
दिलको भी अपनी वज़अपै कितना ग़ुरूर था॥

बा-ख़बर है वोह सबकी हालतसे।
लाओ हम पूछ लें न हाल अपना॥

अल्लाहरे एतमादे मुहब्बत[6] कि आजतक।
हर दर्दकी दवा है वोह, अच्छा किये वग़ैर॥

निगाहें ढूँढ़ती हैं दोस्तोंको और नहीं पातीं।
नज़र उठती है जब जिस दोस्तपर पड़ती है दुश्मनपर॥

न इब्तदाकी[7] ख़बर है न इन्तहा[8] मालूम।
रहा यह वहम कि हम हैं, सो वोह भी क्या मालूम?

---

[1]काँटेका. [2]उन्मादका सामान; [3]एकत्र; [4]सिरहाने; [5]तड़पनेकी शान; [6]प्रेम-विश्वास; [7]प्रारम्भकी; [8]अन्त।

यह ज़िन्दगीकी है रूदादे-मुख़्तसर[1] 'फ़ानी' !
वजूदे-दर्द-मुसल्लम,[2] इलाज ना मालूम ॥

किस ज़ोममें[3] है ऐ रहरवेग़म[4] ! धोकेमें न आना मंज़िलके ।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राहमें मंज़िल कोई नहीं ॥

हाँ ऐ यक़ीनेवादा ! दामन तेरा न छूटे ।
यह आसरा न टूटे वोह आयें या न आयें ॥

दिलमें आते हुए शरमाते हैं ।
अपने जलवोंमें छुपे जाते हैं ॥

ना महरबानियोंका गिला तुमसे क्या करें ?
हम भी कुछ अपने हालपै अब महरबाँ नहीं ॥

तमकीन[5] अजीब चाहता हूँ ।
दुश्मनका नसीब चाहता हूँ ॥

ग़म भी गुज़श्तनी[6] है ख़ुशी भी गुज़श्तनी ।
कर ग़मको अख़्तियार कि गुज़रे तो ग़म न हो ॥

बहार लाई है पैग़ामे-इन्क़लाबे-बहार[7] ।
समझ रहा हूँ मैं कलियोंके मुसकरानेको ॥

काफ़िर सूरत देखके मुँहसे आह निकल ही जाती है ।
कहते क्या हो ? अब कोई अल्लाहका यूँ भी नाम न ले ॥

गो नहीं जुज़-तर्क़-हसरत[8] दर्दे हस्तीका[9] इलाज ।
आह वोह बीमार जो आज़ुर्दा-ए-परहेज़[10] है ॥

---

[1]संक्षिप्त कहानी; [2]दर्द पूर्णरूपेण है; [3]घमण्डमें; [4]ग़मको राहपर चलनेवाले; [5]चैन; [6]नाशवान, [7]बहारकी क्रान्तिका सन्देश, फड़कड़फा; [8]अभिलाषाओंके त्यागके अतिरिक्त; [9]जीवन-व्यथाका; [10]परहेज़ करते-करते दुखी ।

अह्ले-ख़िरदमें[1] इश्क़की रुसवाइयाँ न पूछ ।
आने लगी है ज़िक्रे-वफ़ासे हया मुझे ॥

या रब ! नवाये-दिलसे[2] तो कान आश्ना-से[3] हैं ।
आवाज़ आ रही है, यह कबकी सुनी हुई ?

तर्के-तदबीरको[4] भी देख लिया ।
यह भी तदबीर कारगर[5] न हुई ॥
यूँ मिली हर निगाहसे वोह निगाह ।
एकको एकको ख़बर न हुई ॥
आज तस्कीने-दर्देदिल[6] 'फ़ानी' !
वह भी चाहा किये मगर न हुई ॥

उनके तो दिलसे नक़्शे-कुदूरत[7] भी मिट गया ।
हम शाद[8] हैं कि दिलमें कुदूरत नहीं रही ॥

ज़िन्दगी ख़ुद क्या है 'फ़ानी' यह तो क्या कहिए मगर ।
मौत कहते हैं जिसे वोह ज़िन्दगीका होश है ॥

न दिलके ज़र्फ़को[9] देखो न तूरको[10] देखो ।
बलाकी धुन है तुम्हें बिजलियाँ गिरानेकी ॥

कलतक जो तुमसे कह न सका हाले-इज़्तराब[11] ।
मिलती है आज उसकी ख़बर इज़्तराबसे ॥

मुद्दआ[12] है कि मुद्दआ[13] न कहूँ ।
पूछते हैं कि मुद्दआ क्या है ?

---

[1]अक़्लमन्दोमे; [2]दिलकी आवाज़से; [3]परिचित-से; [4]पुरुषार्थ त्यागकर; [5]सफल, [6]दिलके दर्दका आराम; [7]द्वेष-भाव; [8]प्रसन्न; [9]पात्रताको; [10]एक पर्वतका नाम; [11]तड़पकी ख़बर; [12]इच्छा; [13]अभिलाषा ।

दुश्मने-जाँ[1] ये तो जाने-मुद्दआ क्यों हो गये ?
तुम किसीकी ज़िन्दगीका आसरा क्यों हो गये ?

ज़िन्दगी यादे-दोस्त है यानी—
ज़िन्दगी है तो ग़ममें गुज़रेगी ॥

आपने अह्द[2] किया है मेरी ग़मख़्वारीका[3] ।
अब इजाज़त हो तो यह अह्द मुझे याद रहे ॥

मरके टूटा है कहीं सिलसिलए-क़ैदे-हयात[4] ?
मगर इतना है कि ज़ंजीर बदल जाती है ॥

शेवए-आशिक़ी[5] नहीं हिज्रमें[6] आर्ज़ूए-मर्ग[7] ।
हाँ नहीं ज़िन्दगी अज़ीज़[8], मौत ही ज़िन्दगी सही ॥

जीने भी नहीं देते मरने भी नहीं देते ।
क्या तुमने मुहब्बतकी हर रस्म उठा डाली ?

तर्के-उम्मीद[9] बसकी बात नहीं ।
वरना उम्मीद कब बर[10] आई है ॥

मौजोंकी[11] सयासतसे[12] मायूस[13] न हो 'फ़ानी' !
गिरदाबकी[14] हर तहमें साहिल[15] नज़र आता है ॥

फूलोंसे तकल्लुफ़ तो, अब भी है मगर इतना ।
जब ज़िक्रे-बहार आया, समझे कि बहार आई ॥

---

[1]जानके दुश्मन, [2]इरादा, संकल्प, [3]मेरे दुःखोंको दूर करनेका, [4]जीवन कैद [5]प्रेमियोंका कर्तव्य नहीं, [6]विरहमें; [7]मृत्युकी इच्छा करना, [8]प्यारी, [9]आकांक्षाका त्याग; [10]सफल हुई; [11]लहरोंकी, [12]हुकूमत, नाउम्मीदी, [13]निराश [14]भँवरकी; [15]किनारा ।

कर ख़ूए-जफ़ा[1] न यक-बयक[2] तर्क[3]।
क्या जानिए मुझपै क्या गुज़र जाये॥

वोह हमसे कहाँ छुपते ? हम ख़ुद हैं जवाब उनका।
महफ़िलमें जो छुपते हैं, छुपते नहीं महफ़िलसे॥

हर राहसे गुज़रकर दिलकी तरफ़ चला हूँ।
क्या हो जो उनके घरको यह राह भी न निकले॥
शिकवा न कर फ़ुग़ाँका, वोह दिन ख़ुदा न लाये।
तेरी जफ़ायें दिलसे जब आह भी न निकले॥

लो तबस्सुम भी शरीके-निगहे-नाज़ हुआ।
आज कुछ और बढ़ा दी गई क़ीमत मेरी॥
दो घड़ीके लिए मीज़ाने-अदालत ठहरे।
कुछ मुझे हश्रमें कहना है ख़ुदासे पहले॥

गुल दिये थे तो काश फ़स्ले-बहार।
तूने काँटे भी चुन लिये होते॥

चौंक पड़ते हैं ज़िक्रे 'फ़ानीसे'।
नींद उचटती है इस कहानीसे॥

बेज़ौक़ेनज़र[4] बज़्मे-तमाशा[5] न रहेगी।
मुँह फेर लिया हमने तो दुनिया न रहेगी॥

पछतायेंगे आप दिलको लेकर।
कमबख़्त ग़म आशना बहुत है॥

---

[1]अत्याचारी स्वभाव; [2]एकदम; [3]त्याग; [4]सुरुचि पूर्ण दृष्टि विना; [5]महफ़िलकी रौनक।

फानी बदायूनी

जिन्दगीको दूसरी करवट थी मौत।
जिन्दगी करवट बदलकर रह गई॥

क्या बला थी अदाए-पुरसिशे-यार।
मुझसे इज़्हारे-मुद्दआ न हुआ॥

तेरे फिराकमें हालत तबाह-सी है तबाह।
न दिलपै हाथ न अब सूए-आसमां है निगाह॥

रस्मे-वेदादे-दोस्त आम हुई।
तल्खिए-ज़ीस्त भी हराम हुई॥

करमे-बेहिसाब चाहा था।
सितमे-बे-हिसाबमें गुज़री॥

मिज़ाजे-देहरमें उनका इशारा पाये जा।
जो हो सके तो बहरहाल मुसकराये जा॥



तू कहां है कि तेरी राहमें यह काबा-ओ-दैर।
नक़्श बन जाते हैं मंज़िल नहीं होने पाते॥

१४ मई १९५२ ई०]



असग़र गोंडवी

[१८८४–१९३६ ई०]

असगरहुसैन साहब 'असगर'के पूर्वज गोरखपुर जिला निवासी थे। आपके पिता गोण्डेमें कानूनगो थे। उन्होंने वहींसे पेंशन ली और फिर स्थाई रूपसे वहीं बस गये थे।

असगर १ मार्च १८८४ ई०मे पैदा हुए। घरेलू वातावरण और आर्थिक स्थिति अनुकूल न होनेके कारण स्कूली शिक्षा व्यवस्थित रूपसे न हो सकी। यूँ फारसी-अरबीका अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी भी समझ-बोल लेते थे, लेकिन यह सब उनके निजी अध्यवसाय और परिश्रमका परिणाम था।

'असगर' शाइर न होते तो भी उनकी ख्यातिमे अन्तर न पड़ता। आप सदाचारी और पवित्र थे। आपका व्यक्तित्व उच्च और प्रभावशाली था। आपके सत्संगके परिणामस्वरूप 'जिगर' जैसे मशहूर रिन्द मैख़ानेका रास्ता छोड़कर सम्यक् मार्गपर चल निकले।

आप चश्मेका रोज़गार करते थे, आमदनी अल्प होते हुए भी न कभी आपने तंगदस्तीका किसीसे ज़िक्र किया, न कभी मेहमाँनवाज़ीमे अन्तर पडने दिया। अच्छा पहनते थे, अच्छा खाते थे। जो वज़अ़ शुरूमें इख़्तियार की, उसे जीवनभर निभाया।

कुछ अर्से आप लाहौरके 'उर्दू मरकज़'में कार्य करते रहे, और अन्तिम दिनोमें आप 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' इलाहाबादकी त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी'का सम्पादन करते थे। 'असग़र' खुद फर्माया करते थे कि "मेरी ज़िन्दगीमें कोई वाक़ेआ क़ाबिले ज़िक्र नही है।" १९३६ ई०में आपका निधन हो गया।

शाइरीमें पहले तो आप मुशी खलील अहमद 'वज्द'से मशोवरा लेते रहे। फिर चन्द ग़ज़लें मुंशी अमीर अल्लाह 'तसलीम'[1]को दिखाई। लेकिन यह क्रम अधिक नही चल सका। 'असग़र' बाक़ायदा किसीके शिष्य नहीं हुए। आपने जो मौलिक प्रतिभा और बुद्धि पाई थी, उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उन दिनो आपके योग्य कोई उस्ताद भी नहीं था। वही दक़ियानूसी पुरातन सड़े-गले विचारोकी शृखला चली आ रही थी। उस शृखलामें 'असग़र' जैसा प्रतिभाशाली जकडकर नहीं रखा जा सकता था। उसे जिस लक्ष्यपर पहुँचना था, उसके लिए कोई पगडडी नही बनी थी। उसे स्वय नई डगर बनानी थी।

लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें, शाइर, सिंह, सपूत॥

'असग़र' उर्दूके उन्ही शाइरो, नरसिहो और सपूतोमें-से एक थे, जो अपना मार्ग स्वय बनाते हैं। बक़ौल जिगर मुरादाबादी—

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले-दिल।
हम वोह नहीं कि जिसको ज़माना बना गया॥

'असग़र'ने भी 'अमीर' और 'दाग़'की शाइरीके वातावरणमें आँखें खोलीं। लेकिन आपने उस रगको सर्वथा हेय समझकर अपना नवीन

---

[1]आपका परिचय शेरोसुख़न प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

मार्ग चुना, और तारीफ़ यह कि जिस ग़ज़लसे लोग दामन बचाकर निकलने लगे थे, उसीको अपने पवित्र भाव व्यक्त करनेका साधन चुना, और उस पतनोन्मुखी गज़लमें इतनी पवित्रता भरी कि उसका कायाकल्प ही हो गया। गज़ल आज जिस ऊँचाईपर पहुँच गई है, उसके इस विकासकी कल्पना स्वप्नमें भी नही हो सकती थी।

ईश्वरीय-प्रेम

'असगर'का प्रेम ईश्वरीय प्रेम है। आपके किसी शेरमे आध्यात्मिकता-की सुवास है तो किसी शेरमें दार्शनिकताकी झलक। कही सूफ़ियाना रंग हिलोरें ले रहा है, तो कही पवित्र प्रेम छलका पड रहा है। आपके यहाँ अश्लील, निकृष्ट विचार तो दरकिनार, एक शेर भी साधारण और हलका नही मिलता। प्रत्येक शेर आत्म-विभोर कर देनेकी शक्ति रखता है। जो भी कहा गया है, बहुत गहरेमें डूबकर कहा गया है।

'असगर'का प्रेम निर्मल, स्वच्छ और निष्कलक है। उनके प्रेममें विषयासक्ति नही कि उसे छिपाये फिरें ; वे तो मुक्त-हृदयसे अपने प्रेमको प्रकट करते है और दृढतापूर्वक कहते है—प्रेम ही मेरे जीवनकी चेष्टा (सग्री) है यही मेरे जीवनकी कमाई (हासिल) है। यही मेरी यात्राका अभीष्ट स्थान है और यही वहाँ तक पहुँचनेके लिए पगडडी (जाद-ए- मजिल) है—

> इश्क ही सई मेरी, इश्क ही हासिल मेरा।
> यही मंजिल है, यही जाद-ए-मंज़िल मेरा॥

'असगर'का यह प्रेम अपने प्यारेकी खोजमें उन्हे मन्दिरो-मस्जिदोकी खाक नही छनवाता। अपितु उनके झमेलोसे उन्हे बेदाग़ निकाल ले जाता है—

> दैर[1]-ओ-हरम[2] भी कूचए-जानाँमें[3] आये थे।
> पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

---

[1]मन्दिर; [2]मस्जिद; [3]प्यारेके मार्गमे।

परिणाम इसका यह होता है कि वे इस प्रेमाग्निमें तपकर इतने महान हो उठते हैं कि अपने प्यारेकी यादमें जहाँ भी मत्था टेक देते हैं, एक तीर्थ बन जाता है। और यह तीर्थ है भी क्या? जहाँ कहीं सिद्ध पुरुषों और वीतरागात्माओंके चरण पहुँचे हैं, वहीं उनकी स्मृतिमें तीर्थ बन गये।

नियाज़े-इश्कको[1] समझा है क्या ऐ वाइज़े-नादाँ !
हज़ारों बन गये काबे, जहाँ मैंने जबीं रख दी॥

प्रेमी जब उक्त स्थितिमें पहुँच जाता है, तब उसके लिए मिलन-सुख और विरह-दुःख कुछ अर्थ नहीं रखते—

क्या दर्दे-हिज्र और यह क्या लज़्ज़ते-विसाल।
उससे भी कुछ बुलन्द मिली है नज़र मुझे॥

और अन्तमें एक ऐसी स्थिति आती है कि प्रेमी और प्यारा दोनों एकाकार हो जाते हैं—

अब न यह मेरी ज़ात है, अब न यह काएनात[2] है।
मैंने नवाए-इश्कको[3] नाज़से यूँ मिला दिया॥

असगरने कुछ इसी तरहके भाव भिन्न-भिन्न अशआरमें इस तरह व्यक्त किये हैं—

इक सूरते-उफ़्तादगीए-नक़्शे-फ़ना[4] हूँ।
अब राहसे[5] मतलब न मुझे राहनुमासे[6]॥

मेरे मज़ाके शौकका इसमें भरा है रंग।
मैं ख़ुदको देखता हूँ, कि तसवीरे-यारको॥

---

[1]प्रेम-विभोरताको; [2]सांसारिक वस्तुएँ; [3]प्रेम-वाणी, प्रेम-रागिनीको; [4]विनाशका मिटा हुआ चिह्न; [5]मार्गसे; [6]पथ-प्रदर्शकसे।

हुजूमे-शौक़में अब क्या कहूँ मैं क्या न कहूँ ?
मुझे तो ख़ुद भी नहीं, अपना मुद्दआ़ मालूम ॥

जहान है कि नहीं जिस्मोजान है कि नहीं।
वोह देखता है मुझे, उसको देखता हूँ मैं ॥

बेख़ुदीका[1] आ़लम है, महवे-जिबिहसाई[2] हूँ।
अब न सरसे मतलब है, और न आस्तानेसे[3] ॥

अब न कहीं निगाह है, अब न कोई निगाहमें।
महव[4] खड़ा हुआ हूँ मैं, हुस्नकी जलवागाहमें ॥

जुनूने-इश्क़में हस्तीए-आ़लमपै नज़र कैसी ?
रुख़े-लैलाको क्या देखेंगे महमिल देखनेवाले ॥

अब मुझे ख़ुद भी नहीं होता है कोई इम्तियाज़[5]।
मिट गया हूँ इस तरह उस नक़्शे-पा-के सामने ॥

नज़रमें वोह गुल समा गया है, तमाम हस्तीपै छा गया है।
चमनमें हूँ या कफ़समें हूँ मैं मुझे अब इसकी ख़बर नहीं है ॥

अ़क्स किस चीज़का आईन-ए-हैरतमें नहीं।
तेरी सूरतमें है क्या जो मेरी सूरतमें नहीं ॥

ख़ुदा जाने कहाँ है 'असग़रे' दीवाना बरसोंसे।
कि उसको ढूंढ़ते हैं काब-ओ-बुतख़ाना बरसोंसे ॥

'असग़रने अपने प्यारेके मोहनी रूपका वर्णन इतनी कुशलता और पवित्रतासे किया है कि कही भी वासनाकी गन्ध नही आती—

---

[1]आत्मलीनताका; [2]नतमस्तक-लीन; [3]प्यारेके दर्वाज़ेके पत्थरसे; [4]तल्लीन; [5]विवेक अन्तर नही मालूम होता।

उसका वोह कदे-रअ़ना[1], उसपर वोह रुखे-रंगीं[2]।
नाज़ुक-सा सरेशाख़[3] इक गोया गुलेतर[4] देखा॥

तुम सामने क्या आये, इकतरफा बहार आई।
आँखोंने मेरी गोया फ़िरदौसे-नज़र[5] देखा॥

उट्ठे अ़जब अन्दाज़से वोह जोशे-ग़ज़बमें।
चढ़ता हुआ इक हुस्नका दरिया नज़र आया॥

दोशपर बिजली गिरी, आँखें भी ख़ीरा[6] हो गईं।
तुम तो क्या थे, इक झलक-सी थी तुम्हारी यादकी॥

जो शजर बाग़में है, वोह शजरे-तूर[7] है आज।
पत्ते-पत्तेमें जो देखा तो वही नूर[8] है आज॥

यूँ मुसकराये जान-सी कलियोंमें पड़ गई।
यूँ लबकुशा हुए कि गुलिस्ताँ बना दिया॥

ताक़त कहाँ मुशाहिदए-बेहिजाबकी[9]।
मुझको तो फूँक देगी, तजल्ली[10] नक़ाबकी॥

नक़्शे-क़दम यह है, उसी जाने-बहारके।
इक पंखड़ी पड़ी है लहदपर गुलाबकी॥

मैं इज़्तेराब-शौक़[11] कहूँ या जमाले-दोस्त[12]।
इक बर्क़[13] है जो कौंद रही है नक़ाबमें॥

---

[1]उपयुक्त कद; [2]सुन्दर मुख; [3]टहनीपर; [4]ताज़ा फूल; [5]स्वर्गका दृश्य; [6]चकाचौंध; [7]तूर पर्वतका वृक्ष जो नूरके तेजसे चमकता हुआ दीख पड़ा था; [8]रूप प्रकाश; [9]पर्देसे बाहर देखनेकी; [10]आना; [11]उत्कण्ठाकी बेचैनी; [12]प्यारेका रूप; [13]बिजली।

वोह निकहतसे[1] सिवा पिन्हाँ[2], वोह गुलसे भी सिवा उरियाँ[3] ।
यह हम हैं जो कभी पर्दा, कभी जलवा समझते हैं ॥

और सच तो यह है कि उसके रूपका बखान हो भी नही सकता—

अगर ख़मोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है ।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद ॥

पवित्र प्रेम

'असगर'के दीवानमें एक शेर भी ऐसा नही, जिसमें कामुकताकी गन्ध आये। उनके यहाँ पवित्र प्रेम हिलोरें ले रहा है। वे तो प्यास बुझानेको भी कामुकता (बुलहविसी) समझते हैं। अपने प्यारेकी खोजमें मृग-मरीचिका (मौजे-सराव)में भटकते रहना ही जीवनका सार समझते हैं। दर्शनोकी प्यास बुझी तो फिर प्रेम-पिपासा कहाँ रही ?

मैं बुलहविस[4] नहीं कि बुझाऊँगा तिश्नगी[5] ।
मेरे लिए तो उठती है मौजें सराबकी[6] ॥

अब तो यह तमन्ना है किसीको भी न देखूँ ।
सूरत जो दिखा दी है तो ले जाओ नजर भी ॥

आये थे सभी तरहके जलवे मेरे आगे ।
मैंने मगर ऐ दीदए-हैराँ नहीं देखा ॥

हम एक बार जलवए-जानाना देखते ।
फिर काबा देखते न सनमख़ाना देखते ॥

तसलीम[7] मुझको ख़ानए-काबाकी मंजिलत[8] ।
सब कुछ सही मगर वोह तेरा आस्ताँ[9] नहीं ॥

---

[1]फूलकी सुगन्धसे; [2]छुपा हुआ; [3]नग्न, प्रकट; [4]कामुक; [5]प्यास; [6]मृगमरीचिकाकी; [7]स्वीकृत, [8]इज्जत, गौरव; [9]चौखट, निवासस्थान ।

हर ज़र्रेमें सहराके बेताब नज़र आई।
लैलीको भी मजनूँने यूँ ख़ाक बसर देखा॥

प्रेममें तो आठो पहर भीगा रहे, तभी जीवनकी सार्थकता है—

क़हर है थोड़ी-सी भी ग़फ़लत तरीक़े-इश्क़में।
आँख झपकी क़ैसकी और सामने महमिल न था॥

'असगर'की रिन्दी मुलाहिज़ा हो—

रहा जो होश तो रिन्दी-ओ-मैकशी क्या है।
ज़रा ख़बर जो हुई फिर वोह आगही[1] क्या है॥

उर्दू शाइरीकी परम्पराके अनुसार 'असगर'के यहाँ भी शेख़-ओ-ज़ाहिदका जिक्र मिलता है। मगर देखिए कितने सलीके और सौजन्यताके साथ—

न होगा काविशे-बेमुद्दआका[2] राज़दाँ[3] बरसों।
वोह ज़ाहिद जो रहा सरगुश्तए-सूदो-ज़ियाँ[4] बरसों॥

सनमकदेमें तजल्लीकी ताब मुश्किल है।
हरममें शैख़को महवे-नमाज़ रहने दे॥

मन्दिर-मस्जिद

मन्दिरो-मस्जिदोंको लेकर संसारमें इतना अधिक नर-संहार हुआ। फिर भी धर्मान्धोंकी आँखें नहीं खुलीं। ईश्वर और ख़ुदाके नामपर,

---

[1]होशियारी, वाक़िफ़ियत, [2]निःस्वार्थ लगन, स्वार्थहीन कार्यों; [3]भेदी; [4]हानि-लाभके झगड़ेमें पड़नेवाला; भाव यह है कि ज़ाहिद तो स्वर्ग-जन्नतकी अभिलाषामें नमाज़-रोज़ेका पाबन्द रहा, वह कैसे जानेगा कि निःस्वार्थ पूजा-उपासना क्या होती है ?

उनके वन्दोंका हर समय रक्त पीनेको प्रस्तुत रहते हैं। इसके विपरीत 'असगर'का पवित्र हृदय है कि—

मौजे-नसीमे-सुब्हमें[1], वूए-सनम-कदा[2] भी है।
और भी जान पड़ गई कैफ़ियते-नमाज़में[3]॥

शाइराना नसीहतें

'असगर' शाइर हैं, मौलवी या वाइज़ नहीं। वे भी भूले-भटकोंको मार्ग सुझाते हैं। मगर वाइज़की तरह नहीं कि पथिक खिन्न हो उठे—

फ़ित्ना-सामानियोंकी[4] ख़ू[5] न करे।
मुख़्तसर यह कि आर्ज़ू न करे॥
पहले हस्तीको है तलाश ज़रूर।
फिर जो गुम हो तो जुस्तजू न करे॥
मावराए-सुख़न[6] भी है कुछ वात।
वात यह है कि गुफ़्तगू न करे॥

तर्के-मुद्दआ[7] करदे ऐने-मुद्दआ[8] हो जा।
शाने-अब्द[9] पैदाकर मज़हरे-ख़ुदा[10] हो जा॥
उसकी राहमें मिटकर, वे-नियाज़ ख़िल्क़त[11] वन।
हुस्नपर फ़िदा होकर हुस्नकी अदा हो जा॥
तू है जब पयाम[12] उसका फिर पयाम क्या तेरा।
तू है जब सदा[13] उसकी, आप वेसदा हो जा॥

---

[1]प्रातःकालीन मृदु पवनमे; [2]मन्दिरोकी सुगन्ध भरी हवा होनेसे; [3]नमाज़ पढ़नेमें और भी आनन्द आने लगा; [4]फ़साद पैदा करनेकी, (सांसारिक वस्तुओंकी); [5]टेव, आदत (इच्छा); [6]वाणीके अतिरिक्त; [7]अभिलाषाओंका त्याग; [8]इच्छा रहित, निर्मल; [9]आत्म-समर्पण करके उसके सेवक वननेका गौरव प्राप्त कर; [10]ईश्वरके प्रकट होनेका स्थान; [11]संसारसे उदासीन; [12]सन्देश; [13]आवाज़।

आदमी नहीं सुनता आदमीकी बातोंको।
पैकरे-अमल बनकर ग़ैबकी सदा हो जा॥

यह मुझसे सुन ले तू राज़े-पिन्हाँ[1] सलामती सुख है दुश्मने-जाँ[2]।
कहाँसे रहरवमें[3] ज़िन्दगी हो कि राह जब पुरख़तर नहीं है[4]॥

तलब कैसी[5]? कहाँका सूदो-हासिल कैफ़े-मस्तीमें[6]।
दुआतक भूल जाते, मुद्दआ[7] इतना हसीं होता॥

चला जाता हूँ हँसता खेलता मौजे-हवादिससे[8]।
अगर आसानियाँ हों, ज़िन्दगी दुश्वार हो जाये॥

'असग़र' भी युवकोंको कुछ कर गुज़रनेकी प्रेरणा देते हैं, परन्तु कितने कोमल और मधुर ढंगसे कि नसीहतका आभासतक नहीं मिलता। वे हालीकी तरह वाइज़ बनकर यह नहीं कहते—

कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं।

बल्कि रिन्दाना एक लतीफ़ इशारा भर करके रह जाते हैं।

ख़ूब जी भरके उठा ले जोशे-वहशतके[9] मज़े।
फिर कहाँ यह दश्त[10], यह नाक़ा[11] कहाँ, महमिल[12] कहाँ?

---

[1]छिपा हुआ भेद, [2]सुख-चैन ही आत्माके शत्रु हैं; [3]मार्गमें जीवनका ओज कहाँसे आये; [4]जब मार्ग ही भयानक एवं कष्टकारी नहीं है, भाव यह है कि संघर्षमें ही जिन्दगी है; [5]अभिलाषाओंका ज़िक्र क्या, [6]आत्म-लीनतामें हानि-लाभका लेखा-जोखा क्यों, [7]पूर्ण उपासनाका ध्येय पवित्र हो तो दुआके लिए हाथ उठानेकी भी याद न रहे; [8]आपदाओंसे; [9]दीवानगीके उभारके; [10]बियाबान; [11]ऊँटनी; [12]पर्देदार घेरा जो ऊँटनी पीठपर रखा जाता है, (कजावा महमिल)।

रोना-बिसूरना

'असगर' इश्कमे रोना-बिसूरना तो खिलाफेशान समझते ही है, बल्कि आपका विश्वास है कि सुखके साथ यदि दुख न रहे तो ज़िन्दगी बेमजा हो जाय—

सहबाए-ख़ुशगवार[1] भी या रब! कभी-कभी।
इतना तो हो कि तलख़िए-गम[2] बेमज़ा न हो॥

चुना हुआ कलाम

हमारे सामने 'असगर' साहबके निम्न दो ग्रन्थ है—

१—निशाते-रूह—इसमे कुल ६३ गजले है।

२—सरोदे जिन्दगी—इसमे कुल ४८ गज़ले है।

इन्ही दोनो ग्रथोसे असगरके सरल शेर चुनकर दिये जा रहे है—

सारे आलममें किया तुझको तलाश।
तू ही बतला है रगे गर्दन[3] कहाँ?
खूब था सहरा, पर ऐ जौके-जुनूँ!
फाड़नेको नित नये दामन कहाँ?

वोह लज़्ज़ते-सितमका जो ख़ूगर[4] समझ गये।
अब ज़ुल्म मुझपै है कि सितम गाह-गाहका[5]॥
शीशेमें मौजे मैको यह क्या देखते है आप।
इसमें जवाब है उसी बर्क़े-निगाहका॥

मेरी वहशतपै बहस-आराइयाँ अच्छी नहीं नासेह!
बहुत-से बाँध रक्खे है गरेबाँ मैने दामनमें॥
इलाही कौन समझे मेरी आशुफ़्ता मिज़ाजीको[6]।
कफसमें चैन आता है, न राहत है नशेमनमें॥

---

[1]सुख-चैन-सुरा, [2]दुखकी कड़वाहट; [3]कुरानमे ऐसी आयत है कि खुदा हर रगे-गर्दनके नजदीक है, [4]अभ्यस्त, [5]कभी-कभी; [6]अस्थिर स्वभावको।

खिलते ही फूल वाग़में पज़मुर्दा[1] हो चले।
जुम्बिश रगे-बहारमें मौजे-फ़नाकी है॥

बुलबुलो-गुलमें जो गुज़री हमको उससे क्या ग़रज़।
हम तो गुलशनमें फ़क़त, रंगेचमन देखा किये॥

जानते हैं वोह अदाएँ इस दिले-बेताबकी।
उनसे बढ़कर कौन होगा, नुक्तादाने-इज़्तराब[2]॥

नासेहे मुश्फ़िक़[3]! मगर यूँ ही तड़पने दे मुझे।
मुझको भी मालूम है, सूदो-ज़ियाने-इज़्तराब[4]॥

तुम बा-ख़बर हो, चाहनेवालोंके हालसे।
सबकी नज़रका राज़ तुम्हारी नज़रमें है॥
मुझको जलाके गुलशने-हस्ती न फूँक दे।
वोह आग जो दबी हुई मुझ मुश्ते-परमें है॥

'असगर' हरीमे इश्क़में[5], हस्ती[6] ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव, यहाँ सर लिये हुए॥

मरते-मरते न कभी आक़िलो-फ़रज़ाना बने।
होश रखता हो जो इन्सान तो दीवाना बने॥
परतवे-रुख़के करिश्मे थे सरे-राह गुज़र।
ज़र्रे जो ख़ाकसे उट्ठे, वोह सनमख़ाना बने॥
कारफ़र्मा है फ़क़त हुस्नका नैरंगे-कमाल।
चाहे वोह शमअ़ बने, चाहे वोह परवाना बने॥

---

[1]कुम्हलाने लगे; [2]बेचैनीको समझनेवाला; [3]हितैषी उपदेशक महाराज; [4]बेचैनीका हानि-लाभ; [5]प्रेममन्दिरमें, [6]अहम्मन्यता, अपने व्यक्तित्वका भान।

ऐसा कि बुतकदेका जिसे राज़[1] हो सुपुर्द।
अहले-हरममें[2] कोई न आया नज़र मुझे॥

गो नहीं रहता कभी पर्देमें राज़े-आशिक़ी[3]।
तुमने छिपकर और भी उसको नुमायाँ[4] कर दिया॥

सरगर्मे-तजल्ली[5] हो, ऐ जलवए-जानाना[6]!
उड़ जाये धुआँ बनकर, काबा हो कि बुतख़ाना।

अबतक नहीं देखा है, क्या उस रुख़े खन्दाँको[7]।
इक-तारे शुआ़ईसे[8] उलझा है जो परवाना॥
माना कि बहुत कुछ है, यह गर्मिए-हुस्ने-शमअ़।
इससे भी ज़ियादा है, सोज़े-ग़मे-परवाना॥
ज़ाहिदको तअ़ज्जुब है, सूफ़ीको तहय्युर[9] है।
सद-रश्के-तरीक़त[10] है, इक लग़ज़िशे-मस्ताना[11]॥

राज़की[12] जुस्तजूमें[13] मरता हूँ।
और मैं ख़ुद हूँ एक पर्दए-राज़॥

वोह शोख़ियोंसे जलवा दिखाकर तो चल दिये।
उनकी ख़बरको जाऊँ कि अपनी ख़बरको मैं॥

होता है राज़े-इश्क़ो-मुहब्बत उन्हींसे फ़ाश[14]!
आँखें ज़बाँ नहीं है, मगर बेज़बाँ नहीं॥

पीरीमें अ़क़्ल आई तो समझे कि ख़ूब थीं।
डूबी हुई निशातमें[15], ग़फ़लत शबाबकी[16]॥

---

[1]भेद, ज्ञान ; [2]नमाज़ियोंमे ; [3]इश्क़का भेद ; [4]उजागर ; [5]रूप दिखानेको तत्पर ; [6]प्यारेका जल्वा ; [7]हँसमुख मुखड़ेको ; [8]मोमबत्तीकी एक लौसे ; [9]हैरत ; [10]जागरकता ईर्ष्यालु है ; [11]मस्ती भरी लग़ज़िशपर ; [12]गुप्त, भेद (जाननेकी) ; [13]खोजमें, (इच्छामें) ; [14]प्रकट ; [15]सुख-चैनमे ; [16]यौवनकी।

न पूछो मुझपै क्या गुज़री है मेरी मश्क़े-हसरतसे।
क़फ़सके सामने रक्खा रहा है, आशियाँ बरसों॥

यह इश्कने देखा है, यह अक़्लसे पिनहाँ है।
क़तरेमें समन्दर है, ज़र्रेमें बयाबाँ है॥
धोका है यह नज़रोंका, बाज़ीचा है लज़्ज़तका।
जो कुंजे-कफ़समें था, वोह अस्ल गुलिस्ताँ है॥

—निशातेरूह

समा गये मेरी नज़रोंमें छा गये दिलपर।
ख़याल करता हूँ, उनको कि देखता हूँ मैं॥
न कोई नाम है मेरा न कोई सूरत है।
कुछ इस तरह हमातन-दीद[1] हो गया हूँ मैं॥
न कामयाब हुआ और न रह गया महरूम[2]।
बड़ा गज़ब है कि मंज़िलपै खो गया हूँ मैं॥

खोरगोए-नज़्रके साथ, होशका भी पता नहीं।
और भी दूर हो गये, आके तेरे हुज़ूरमें॥
तेरी हज़ार बरतरी, तेरी हज़ार मस्लहत।
मेरी हरइक शिकस्तमें मेरे हरइक क़ुसूरमें॥

बस इतनेपर हुआ हंगामए-दारोरसन[3] बरपा।
कि ले आग़ोशमें[4] आईना क्यों महरे-दरख़्शाँको॥
सुना है हश्रमें शानेकरम बेताब निकलेगी।
लगा रक्खा है सीनेसे मताए़-ज़ौक़े-इस्याँको[5]॥

कहके कुछ लाला-ओ-गुल रख लिया पर्दा मैंने।
मुझसे देखा न गया, हुस्नका रुसवा[6] होना॥

---

[1]देखनेमें लीन; [2]उपेक्षित, असफल; [3]सूली चढ़नेका झगड़ा; [4]पहलूमें; [5]गुनाहकी शौकरूपी दौलतको; [6]बदनाम।

हश्र है ज़ाहिद ! यहाँ हर चीज़का है फ़ैसला ।
ला कोई हुस्ने अ़मल, मेरी ख़ताके सामने ॥

चमनमें छेड़ती है किस मज़ेसे गुंच-ओ-गुलको ।
मगर मौजे-सबाकी पाकदामानी नहीं जाती ॥

कभी हैं महवेदीद[1] ऐसे, समझ बाक़ी नहीं रहती ।
कभी दीदारसे महरूम[2] हैं इतना समझते हैं ॥
यही थोड़ी-सी मै है और यही छोटा-सा पैमाना ।
इसीसे रिन्द राज़े-गुम्बदे-मीना समझते हैं ॥
कभी तो जुस्तजू जलवेको भी पर्दा बताती है ।
कभी हम शौक़में पर्देको भी जलवा समझते हैं ॥
यह ज़ौक़े दीदकी शोख़ी, वोह अ़क्सेरंगे-महबूबी ।
न जलवा है न पर्दा, हम उसे तनहा समझते हैं ॥

सनमख़ानेमें क्या देखा कि जाकर खो गया 'असग़र' !
हरममें काश रह जाता तो ज़ालिम शैख़े-दीं होता ॥

तुम उस काफ़िरका ज़ौक़े-बन्दगी, अब पूछते क्या हो ?
जिसे ताक़े-हरम भी अबरु-ए-ख़मदार हो जाये ॥

हुस्नको वुस्‌अ़तें जो दीं, इ़श्क़को हौसला दिया ।
जो न मिले, न मिट सके, वोह मुझे मुद्दआ़ दिया ॥

महो-अंजुममें भी अन्दाज़ है पैमानोंके ।
शबको दर बन्द नहीं होते हैं मैख़ानोंके ॥

---

[1]देखनेमे लीन; [2]वंचित, रहित ।

बुझ गई कल जो सरे-बज़्म वही शमअ़ न थी।
शमअ़ तो आज भी सीनेमें हैं परवानोंके ॥

जिसपै बुतख़ाना तसद्दुक़, जिसपै काबा भी निसार।
एक सूरत ऐसी भी सुनते हैं, बुतख़ानेमें है ॥

—सरूदे-ज़िन्दगी

१८ जून १९५३]

द्वितीय संस्करणके लिए

हज़रत असगर गोण्डवीने किशोरावस्थामे उर्दू-फारसीकी शिक्षा व्यवस्थित रूपमे प्राप्त नही की। अंग्रेज़ी स्कूलमे बिठाये गये तो वहाँ भी आठवी कक्षा पास न कर सके। पास भी कैसे करते ? बकौल किसीके—

मेरा मिजाज लडकपनसे आशिकाना था

जवानी आई तो उन्हे बहाके ले गई। दरियाए-ऐशो-सरमस्तीमे उनका बाल-बाल डूब गया। मगर जिसकी किस्मतमे उबरना होता है, वह भवरो और लहरोंसे खेलता हुआ, मगरमच्छो और घडियालोसे उलझता हुआ भी किनारे लग ही जाता है।

असगर कुछ इस शानसे किनारे लगे कि उन्हे देखकर किसीको आभास भी न होता था कि उन्होने भी कभी पाँव भिगोया होगा। किनारे लगनेपर उन्होने अपना गुनाह-आलूदा दामन इस खूबीसे निचोटकर पाक साफ कर लिया था कि फरिश्ते वज़ू करने और हूरें नमाज़ पढनेकी लालसा रखें—

दामन निचोड दें तो फरिश्ते वज़ू करें

—दर्द

नमाज़ें पढती हैं हूरें, हमेशा जिसके दामनपर

—ज़ौक

असगर साहब जब बाल-बाल डूबे हुए थे और मौजोंके थपेडे खाते हुए गोतेपर गोते खा रहे थे, तब उन्हें एक ऐसे नाख़ुदा (नाविक)की जरूरत महसूस हुई जो उन्हे डूबनेसे उबार सके। संयोगकी बात कि उन्हें ऐसी स्थितिमें काजी अब्दुलग़नी साहब जैसे पीरे-मुर्शिदका सहारा मिल गया। उन्हीकी अनुकम्पासे असगर पार हो सके।

मैं समझता था मुझे उनकी तलब है 'असग़र' !
क्या ख़बर थी वही ले लेंगे सरापा मुझको॥

पीरे-मुर्शिदके बताये मार्गपर चलनेसे, उनके चरणोमे बैठनेसे असगरमें जो अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुआ, उसका इज़हार इस शेरमें किया है—

अब वह ज़माँ, न वह मकाँ, अब वह ज़मीं न आस्माँ।
तुमने जहाँ बदल दिया आके मेरी निगाहमें॥

योग्य पथ-प्रदर्शक मिलनेपर असगर स्वयं तो सदाचार-डगरपर चलकर अपने लक्ष्यतक पहुँचे ही ; मार्गमे जो भूले-भटके मिलते गये, उन्हे भी राहपर लगाते गये। आपका जीवन फिर इतना स्वच्छ, पवित्र और अनुकरणीय रहा कि न फिर आपने अपने दामनमें कोई दाग लगने दिया और न अपने शाइराना कलाममे एक शेर ही ऐसा कहा जो सभ्यता, शील, सदाचारकी दृष्टिसे हल्का हो।

जीवन-डोरी सद्गुरुद्वारा पकड लिये जानेपर असगरने उर्दू-फ़ारसी-साहित्य-सागरमे बहुत गहरी डुबकी लगाई और वहाँसे अनमोल जवाहरात निकाल लानेमे पूर्णरूपेण सफल हुए। अँग्रेजीका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

आपकी शाइराना-अजमत और साहित्यिक-प्रतिभाका उल्लेख करनेसे पूर्व कुछ नैतिकताके उदाहरण दिये जा रहे है।

आपके संस्मरण-लेखक हजरत सगीर अहमद सिद्दीक़ी साहब लिखते है—

१. "असगर रेलवे इञ्जीनीयरिंगके दफ्तरमें मुलाजिम थे। एक ठेकेदारने नज़राना दिया। इनको लेनेमें तकल्लुफ हुआ। एहवाव (इष्ट-मित्रो)ने मशवरा दिया कि 'ले लीजिए यह रिशवत नही, बल्कि नज़राना हैं।' मगर ज़रूरतमन्द होनेके बावजूद आपकी तवीअतने गवारा न किया और वह रुपया वापिस कर दिया।"

२. नज्मो-नस्र (पद्य-गद्य) पर आपकी यकसाँ कुदरत (अधिकार) देखकर वाज़ अखबारात-ओ-रिसाइल (पत्र-पत्रिकायें) आपकी खिदमत हासिल करना चाहते थे। मगर आप इस खौफसे इनकार कर दिया करते कि इख्तियाराते कुल्ली (पूर्ण अधिकार) न होनेके सबब ज़मीर-फरोशी करनी (आत्मा बेचनी) पडेगी।

३. इण्डियन-प्रेसके जिस शोअ्‍बह (विभाग)में मुलाज़िम थे। उसमें तखफीफ (कमी) की जाने लगी तो चूँकि प्रेसके मालिक आपके कामसे खुश थे। आपकी बजाय उन साहबको बरतरफ करना चाहते थे, जो आपसे पहिलेके मुलाज़िम थे। आप रज़ामन्द न हुए और कहा कि बरतरफ (अलहदा) कीजिए तो पहले मुझको, क्योंकि मैं बादमें इस शोअ्बे (विभाग)मे आया हूँ। मजबूरन प्रेसको दोनो ही साहबानको रखना पडा।

४. असग़र साहब रिसाला हिन्दुस्तानीकी इदारत (हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी' पत्रके उर्दू-विभागके सम्पादक)के उम्मीदवार थे। मामला सिर्फ इसपर ठहरा था कि आप अंगरेज़ी भी जानते हैं या नही। अंगरेज़ीकी बाकायदा तालीम तो हासिल नहीं की थी। कैसे हाँ कह देते? इनकार करके चले आये। बादमें एहबाबने इसरार (इष्टमित्रोने आग्रह) करके सर तेजबहादुर सप्रू सदर इन्तखाबिया कमेटी (अध्यक्ष निर्वाचित समिति)के पास सर शाह मुहम्मद सुलेमान मरहूमका खत भेजा, जिसमें उन्होने अपनी एक अँगरेज़ी किताब-का उर्दूमें तर्जुमा (अनुवाद) करनेपर असग़रको यूँ दाद दी थी—'अगर मैं भी तर्जुमा करता तो इससे बेहतर न हो सकता'—मुलाज़मत मिल गई।

मगर उमको हासिल करनेके लिए मौलाना (असगर) कोई ऐसा इद्दआ (दावा) कैसे कर बैठते, जिसकी इजाजत उनका जमीर (अन्तर-आत्मा) न देता हो।

५. असगर कमगो (बहुत कम बोलते) थे। गजलगो शोअरामे शायद उनकी वाहिद (अकेली) मिसाल है कि जो सोचते थे और महसूस करते थे ; वही और उतना ही कहते थे। महज़ काफिये-रदीफके मुतालबो-से मजबूर होकर या मश्कोमजावेलत (निरतर अभ्यास और मश्क)के ज़ोरसे आकर कभी कुछ न कहते थे। यही वजह है कि उनके कलामसे उनका फल्सफये-ज़िन्दगी बा-आसानी अख्ज़ किया जा सकता है।. ... उनके कलामके मखसूस मौजू (निश्चित विषय) और मजामीनकी बुनियादी हमरगी (लेखोकी प्राय अपरिवर्तनीय शैली) पर एक साहबने कहा कि—'मौलाना आपके यहाँ तनोवोअ नही, बल्कि एक ही किस्मकी चीजे मिलती हे।' जवाब मिला—'तो इसमे बुरा ही क्या है ? जबतक वह चीज़ मेयायार (स्टेण्डर्ड, आदर्श) के मुताबिक मिलती है, मेरी दूकान एक ही नौअका सामान बहम पहुँचाती है, और जबतक वह सामान मअयारी (स्टेण्डर्डके अनकूल) है। दूकानकी साख (प्रतिष्ठा) बढनी चाहिए। हाँ, अलबत्ता मै मज़ामीन (निबन्धो)का कबाड़िया नहीं हूँ, जिसकी दूकानपर भाँति-भाँतिकी अच्छी-बुरी ब-कसरत किस्म (अनेक तरह)की अशिया (चीज़े) मिलती है।

६ शाइरी पेशेके तौरपर न करते थे और न शाइरकी हैसियतसे अपनेको पेश करना पसन्द करते थे। मुशाअरोमे शिर्कत करनेसे गुरेज़ (शरीक होनेसे परहेज) करते थे। और अगर कभी शिर्कत करते भी थे तो मुआवज़ा (पारिश्रमिक) लेना अपनी शाइराना वकअतो-शान (प्रतिष्ठा और गौरव)के मनाफी (विरुद्ध) समझते थे।·· ··१९३३ ई० का मुस्लिम होस्टलका सालाना मुशाअरा था। मौलानाको मैने तरह बहम पहुँचाई और उन्होने गजल भी कही। एहबाब (इष्टमित्रों) को यकीन

था कि मेरी वसातत (ज़रिये)से असगर साहबकी मुशाअरेमे शिरकत (उपस्थिति) ज़रूर हो जायगी। मगर जब वक्त आया और मैंने कहा कि चलिए, तो असगर साहबने साफ इन्कार कर दिया और ऐसे सजीदा अन्दाज (गम्भीर भाव)से कि जिसमे शाइराना तकल्लुफका शाएबा (अश, सन्देह) न था। मैं इस इन्कार पर बहुत मुतहैयर (हक्का-बक्का, हैरान) हुआ। फिर मैंने कहा कि—गज़ल आपने क्यो कही तो बोले 'भई यह कुसूर गजलका है मेरा नही। गज़ल लेते जाओ, इसे किसीसे पढवा देना।' मैंने वापिस आकर एहबाबको जो खबर दी कि असगर साहब नही आ रहे हैं तो लोगोको बड़ी मायूसी हुई और मुझे ताने दिये गये कि बस रह गई सुबहो-शामकी हाजिरी, अपना-सा मुंह लेकर चले आये।' मैं वापिस हुआ और मौलाना-की नशिस्तगाह (बैठक) में पहुँचकर शेरवानी खूटीपर टाँगी और कुछ इस अन्दाजसे बैठा कि मौलानाको पूछना पडा कि क्या इरादा है? मैंने निहायत सजीदगीसे जवाब दिया कि "दो-तीन दिन बाद जब इस मुशाइरेकी याद और वह सुबकी (ज़िल्लत, छीछालेदारी) जो इस सिल्सिलेमें मेरी हो रही है, लोगोको फरामोश (विस्मरण) हो जायगी, तब मैं होस्टलमें वापिस जाऊँगा तब तक खिदमते आलीमें हाज़िर रहूँगा।" असगरसाहब बा-दिले नाख्वास्ता (अनिच्छापूर्वक) चलनेको तैयार हो गये। महफिलमे आकर डाएनके पीछे एक बेंचपर बेपरवाहीसे बैठ गये। जब उनकी बारी आई, गजल जनाब हफीज़ जालन्धरीको पकडा दी। उन्होने डाएस पर खडे होकर मतला पढा—

> वह नग़मा बुल्बुले-रंगीं नवा इकबार हो जाए।
> कलीकी आँख खुल जाए, चमन बेदार हो जाए॥

इक शोरे-तहसीन-ओ-आफरी (साधुवाद और वाह-वाका) महफिलसे जो बुलन्द हुआ तो हफीज़ साहबने उस दादको जो उन्हे मुख़ातिब करके दी जा रही थी, दोनो हाथोंने समेटकर असगर साहबकी तरफ फेंकना

शुरू किया। फिर क्या था लोगोका इसरार बढ़ा और सदर मुशाइरा सर तेजबहादुर सप्रू ने भी दरख़्वास्त की कि असगर साहब डाएसपर तशरीफ़ लाये। कशाँ-कशाँ लाये गये। बहुत खामोशी और वकारसे चेहरेपर एक खफीफ़-सा हलका-सा तबस्सुम लिये बैठे रहे। वे शाइराना अदायें कि 'यह शेर मुलाहिज़ा कीजिएगा, ज़रा गौर कीजिएगा, यह शेर शायद किसी काबिल हो' उनमें कहाँ ? मुरस्सा ग़ज़ल थी। हर शेर पर महफ़िल झूम जाती थी। यह, कभी-कभी तस्लीम कर लेते-मगर दाद-तलब अन्दाज़से नही।

असग़र साहबकी सुहबतमें हिन्दू भी शरीक होते थे और मुसलमान भी। सबको उनकी हमनवाईपर नाज़ था। अपने एहबाबसे बहुत ख़ुलूसो-मुहब्बतसे पेश आते थे। सुहबतें बहुत दिलचस्प और मुफीद होती थीं। मौज़ूआते-गुफ्तगू सजीदा होते। मज़हब, फलसफा शेरो-अदब सभीपर खयाल आराई होती। असग़र मरहूम खुश मज़ाकीको कभी हाथसे न जाने देते। तबीअ़त बज़ला सज (लतीफोंसे भरी हुई) व हाज़िर जवाब पाई थी और गुफ़्तगूका अन्दाज़ बहुत दिलनशी था। खुद हँसते और दूसरोको भी हँसाते। उनकी सुहबतोकी फिज़ा बहुत शगुफ्ता और पुरसकून होती और कोई बेकैफ न होने पाता।

उनके एहबाबने उनको कभी मायूस (निराश) परेशान, मलूल या अफसुर्दा (रंजीदा या कुम्हलाया हुआ) नही पाया। हरहालमें आसूदा, मुत्मईन और शगुफ्ता (आर्थिक चिन्तासे मुक्त, सन्तोषी और मुसकराते हुए) रहते थे। यही नही उनकी तमानियत, आसूदगी और सकून (निरा-कुलता, खुशहाली और चैन) उनके हमनशीनों (पास उठने बैठनेवालों)में भी मुन्तकिल (परिवर्त्तित) हो जाता। आप किसी उलझन या परेशानीमें हुए, असग़र साहबके पास थोड़ी देर बैठकर चले आये तो दिलो-दिमाग़की फिज़ा बदल गई। हैरत तो इस परहै कि बावजूद इसके कि वह खुशहाल न थे, किसीने उनको तगदस्त न पाया।

आखिर जमानेमें पं० श्री नारायण मिश्रा जो उस वक्त यूनीवर्सिटीमे अगरेज़ीके लैक्चरर थे, उनके वहुत करीव आ गये थे। मैने महसूस किया कि दोनो एक जान दो कालिव (एक आत्मा और दो शरीर) है। पण्डितजी अदव और फलसफेके आलिम मुतवहहर (विशेषज्ञ) हैं और शेरो-सुखनका वहुत सजीदा और वुलन्द मजाक रखते हैं। मेरा खयाल है कि असग़र साहवके नजरियए-शेरो-अदव (शाइरी और साहित्य)पर पण्डितजीके खयालातका भी असर पडा है।

असगर मरहूम जव फालिज (लकवे)के मर्जमे मुब्तिला (ग्रसित) हुए तो उनकी देख-भाल और तीमारदारीकी गरजसे पण्डितजी उनको शहरके मकानसे मुन्तकिल कराके अपने करीव यूनिवर्सिटीके पडोसमें ले आये। ....२९ नवम्वर १९३६ ई०की शव (रात)में जव फालिजका आखिरी दौरा पडा तो पण्डितजी वुलाये गये। उन्होने असग़र साहवको वेहोश पाया। पुकारा तो आँख खोली, मुसकराये और फिर हमेशाके लिए आँख वन्द करली। सुवहको मुझे जव इन्तकालकी खवर मिली तो मैने जाकर देखा। उस आखिरी तवस्सुमकी झलक चेहरेपर वाकी थी। मअन् उनका यह शेर याद आ गया—

काएनाते, दहर क्या, रूह-उल-अमीं वेहोश थे।
जिन्दगी जव मुसकराई है कजाके सामने[1]॥



[मृत्युके आगमनपर जिन्दगीने उसका हँसकर स्वागत किया तो साधारण ससारी जीवोका तो खैर जिक्र ही क्या, जिवरील-जैसा फरिश्ता भी वेहोश हो गया]

असगरकी शाइरी

"उन्हें मैने हर हालमे देखा और हमेशा असग़र साहव ही पाया।

---

[1]नकूश शख्सियात नम्बर अक्तूवर १९५६ पृ० १४८४-८७।

यह महज़ इत्तफाक था कि वे शाइर भी थे। शाइर न होते तब भी उनके शर्फ या शोहरतमे फर्क न आता।"

रशीद अहमद साहब सिद्दीक़ी-द्वारा लिखित उक्त उद्धरण देते हुए ख़्वाजा अहमद साहब फारूक़ी लिखते हैं—"असग़रकी ज़िन्दगी बडी साफ़ सुथरी, पाक बाजाना और वज़अदाराना थी। वे ज़िन्दगीके हर नशेब-ओ-फराज़से गुज़रे थे, और हर किस्मकी सुहबतें देखी थी।"

लेकिन तहज़ीब, खुलूस और खुद्दारी (सभ्यता सद्व्यवहार और स्वाभिमान)का दामन कभी हाथसे नही जाने दिया।·····असगर साहबकी आमदनी बहुत कम थी। लेकिन उनको कभी तगदस्तीका शाकी (आर्थिक चिन्ताका रोना रोते) नही पाया। बडा खर्च था। बहुत अच्छा पहनते थे। उससे अच्छा खाते थे। अपनी हैसियतसे ज्यादा मुदारात (खातिर तवाज़ा, आव-भगत) करते थे। उनसे दसगुनी आमदनीवालोको भी उन जैसा रख-रखाव रखनेवाला मैने नही पाया।

यही रख रखाव असगरकी शाइरीमें भी है। जिस तरह उनकी गुफ्तगू, वज़अ, लिबास, मुआशरत (रहन-सहन)में ज़ौक और सलीका (सुरुचि और कलापूर्ण ढग) कारफर्मा (निहित) है। ऐसे ही उनका आर्ट भी बहुत रचा हुआ और बडी रियाज़त (निरन्तरके अभ्यास)का नतीजा है। बकौल 'सुरूर'—"ढाकेकी मलमल और लखनऊकी जामदानी-की तरह बडा शरीफ आर्ट है, जो अपने दामनपर ज़रा-सी गर्दका धब्बा गवारा नही कर सकता। असगरकी शाइरी उनकी ज़िन्दगीका आईना है, और जिस तरह उनकी ज़िन्दगी आलामअयार (उच्च आदर्श)की थी। ऐसे ही उनके कलाममे एक शेर भी ऐसा नही मिलता जो मअयारे-तहज़ीब (सभ्यता)से गिरा हुआ हो।"[1]

असगर साहब दुनियाए-शाइरीमे अपनी प्रौढ़ावस्थामें तब आये, जब

---

[1]क्लासीकी अदब पृ० २३७-३८।

उनका शाइराना अभ्यास परिपक्व हो चुका था। ३५-४० वर्षकी अवस्था तक लिखा हुआ कलाम आपने प्रकाशित नहीं कराया। अत यौवनावस्थामें आपकी रुचि कैसी थी और प्रारम्भिक कलाम किस दर्जेका था ? किसीको मालूम नहीं। हालाँकि ऐतिहासिक दृष्टिसे यौवनावस्थामे कहे गये कलामका बहुत अधिक महत्व होता। आपके युवकोचित इश्को-मुहब्बतका वह दर्पण होता।

प्रौढावस्थामें हृदय-सागरमे डुबकी मारकर जो मुक्ता निकालकर आप लाये, उनमेंसे भी कुछ मुक्ता हज़रत सुहेल आज़मगढीने निकाल दिये। केवल वही रहने दिये जो अपनी आबो-तावसे लोगोंके मनको लुभा सकें।[1] यही कारण हैं कि आपके कलामके दोनो सकलन—निशातेरूह और सरोदे-ज़िन्दगी—प्रारम्भसे अन्ततक स्वच्छ और अनमोल मोतियोंके पिटारे मालूम होते है।

परन्तु केवल मोतियोंकी चमक-दमकसे लोगोकी तृप्ति नहीं होती। उनकी भूख कुछ और भी चाहती है। मिठाईके साथ नमकीन न हो तो जी ऊब जाता है। उसी तरह असगर साहबका बुलन्द और पाकीज़ा कलाम पढते-पढते मन थक-सा जाता है। बकौल ख्वाजा अहमद फारूकी—

"असग़रकी शाइरी एक ऐसा जामे-शराब (मदिरापात्र) है, जिसको साकीने हमारी नज़रोंसे पोशीदा, मालूम नही अन्दाज़े-तबस्सुम (मुसकान)

---

[1]अभीतक किसी आलोचकको यह मालूम न था कि असगरके कलाममे भी किसीने काट-छाँट करनेका साहस किया होगा। मगर कबीर अहमद साहब जायसीने सितम्बर १९५७ ई०के 'निगार'मे 'निशातेरूह' और 'सुहेल' शीर्षकसे जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमे हज़रत असगरकी हस्तलिखित प्रति 'निशातेरूह'के आधारपर यह प्रमाणित किया है कि असगर साहबकी गज़लोंसे उन्होंने इतने शेर काट दिये, जो मुद्रित प्रतिमें नहीं मिलते हैं।

के साथ, या आबरू-कशीदा लरज़ा-बरअन्दाम कैफ़ियत (भृकुटी चढाकर, क्रोधावेग)मे, या निगाहे-बेतअल्लुक (उपेक्षाभाव)से भरकर महफिलमे रख दिया हो।"[1]

असगर साहबके कलामसे परिपक्वावस्थाके वही महानुभाव आनन्द-रस ले सकते है, जिनकी रुचि परिष्कृत एव सम्पन्न हो चुकी है और जो निम्नस्तरकी शाइरीसे ऊब चुके है।

असग़रके चन्द शेर

यहाँ हम असगर साहबके कुछ महत्वपूर्ण शेर और दे रहे है—

अल्लाहरे दीवानगिए-शौकका आलम।
इक रक़्समें हर ज़र्रं-ए-सहरा नज़र आया॥

[आशिकका अपने महबूबकी चाहत (दीवानगीए शौक)मे यह आलम है कि उसे अणु-अणु (ज़र्रे-ज़र्रे)मे विश्व (सेहरा) यानी अपने महबूबकी झलक मालूम होती है]

गुस्सेकी हालतमे माशूकका तमतमाया चेहरा कभी-कभी बहुत खूबसूरत मालूम देता है। इसी दृश्यसे प्रभावित होकर सम्भवतः अमीर मीनाईने यह शेर कहा होगा—

Top उनको आता है प्यार पर गुस्सा।
हमको गुस्से पै प्यार आता है॥

गुस्सेपर प्यार क्यो आता है, शाइरने प्रकट नही किया। केवल स्वानुभव व्यक्त कर दिया। प्यार आनेकी वजह असगरसे मालूम कीजिए—

उट्ठे अजब अन्दाजसे वह जोशे-ग़ज़बमें।
चढ़ता हुआ इक हुस्नका दरिया नज़र आया॥

---

[1]क्लासीकी अदब पृ० २३९।

[हबीबके गुस्सेकी हालतमें साँस फूलने और गज़बनाक होकर उठनेके दृश्यको जिन भाग्यवानोंने देखा है, वही इस चढ़ते हुए हुस्नके दरियाका आनन्द उठा सकते हैं। मुझे तो जब भी समुद्रका गज़बनाक उफान देखनेका अवसर मिला है। उक्त शेर तुरन्त याद आया है]

रूदादे-चमन सुनता हूँ इस तरह क़फ़समें।
जैसे कभी आँखोंसे गुलिस्ताँ नहीं देखा॥

हज़रत असर लखनवी लिखते हैं—"इस शेरकी तारीफ़ बस इस क़द्र काफ़ी है कि ग़ालिबके इस शेरका जवाब, बल्कि उससे भी बेहतर है—

क़फ़समें मुझसे रूदादे-चमन कहते न डर हमदम!
गिरी है जिसपै कल बिजली, वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

क्योंकि इसमें क़ायल (बात करनेवाले) ने चमन और नशेमनकी मुहब्बत और उनसे तअल्लुक़का इज़हार कर दिया। हमदम (मित्र)को यूँही पसोपेश है। यह सुनके—

गिरी है जिसपै कल बिजली वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

या तो मज़ीद (अधिक, विस्तारपूर्वक) बयान करनेसे वह बाज़ (चुप) रहेगा या उन आफ़ात (आफ़तों) को नरम करके दोहरायेगा। लिहाज़ा लुत्फ़े-दास्तान (बात सुननेका आनन्द) कम हो जायेगा या बिलकुल ज़ाइल (नष्ट) हो जायेगा। हज़रत असगरने ज़ाहिरी बेतअल्लुक़ी दिखाई है। गोया उन्हें चमनसे कोई वास्ता, कोई दिलचस्पी नहीं रही। अब कहनेवाला बेधड़क और बिला कमोकास्त (घटाये-बढ़ाये बिना, ज्यूँ-की-त्यूँ) बयान करेगा। ग़ालिबने जिस असरको पूरे दूसरे मिसरेमें तरतीब दिया, हज़रत असग़रने वही काम सिर्फ़ एक लफ़्ज़ 'जैसे' से निकाला। यह लफ़्ज़ एक बा-सबूत तारीख़ (सबूत सहित ऐतिहासिक उल्लेख) है। मैं चमनमें था और चमन आरास्ता (सजा हुआ) और बारौनक था। एक लचकती हुई शाख़े-गुलपर

मेरा आशियाना था। मैं वहाँ बहुत खुश और हर फ़िक्रसे आज़ाद था। पत्ते-पत्ते, बूटे-बूटेसे उल्फत थी। यकायक मुसीबतका पहाड़ टूट पडा और अब खानए-सैयाद है और क़फ़स। सैयाद भी वह जो बेरहम और माइले-बेदाद (अत्याचारी) है। लाख मिन्नत-खुशामद की कि आज़ाद करदे, मगर उसका दिल न पसीजा। आहो-फुगाँ, नाला-ओ-फरियाद सब बेसूद (व्यर्थ) साबित हुए। कुछ दिनके बाद शौको-इज्तिराब (चमन देखनेकी बेचैनी और लालसा) हुज़्नो-यास (शोक और निराशा) से बदल चले थे। अफसुर्दगी फितरते-सानिया (कुम्हलाये-कुम्हलाये रहना, आदत) हो चली थी। इतनेमे खबर आई कि 'गुलशन' उजड गया। आशियाँ ताराज (बरबाद) हो गया। जहाँ हुजूमे-गुंचा-ओ-गुल (फूल और कलियोका समूह) था, सरसब्ज़ी-ओ-शादाबी (हरियाली और प्रफुल्लता) थी, चहल-पहल थी। वहाँ अब ख़ाक उड रही है और बादे-समूम (आन्धियो) के झोके चल रहे है।'

मैं यह (उक्त) रुदाद (घटना) इस तरह सुन रहा हूँ, गोया चमनसे कोई वास्ता ही न था, देखा ही न था। अगर इस तरह न सुनूँ तो कहनेवाला तफसील (विस्तार) से बयान न करेगा। बल्कि अज़राहे-तरहहुम (रहम खाकर) बहुत-से वाकेआत छिपा डालेगा और मेरा इश्तियाके-तिश्ना (जिज्ञासा-पिपासु) रह जायगा। कलेजेपर छुरियाँ चल रही है; मगर इस तरह सुन रहा हूँ—

गोया कभी आँखोंसे गुलिस्ताँ नहीं देखा।[1]

१४ सितम्बर १९५७ ई०]

---

[1]छानबीन पृ० ७६-८१।

'जिगर' मुरादाबादी

[१८९० ई०]



अलीसिकन्दर 'जिगर' १८९० ई०में मुरादाबादमे उत्पन्न हुए । आपके पूर्वज मौलवी मुहम्मद समीअ दिल्ली-निवासी थे और शाहजहाँ बादशाहके शिक्षक थे। किसी कारणसे बादशाहके कोप-भाजन बन गये। अतः आप दिल्ली छोडकर मुरादाबाद जा बसे थे। 'जिगर'के दादा हाफिज़ मुहम्मदनूर 'नूर' और पिता मौलवी अलीनज़र 'नज़र' भी शाइर थे।

'जिगर' पहले मिर्ज़ा 'दाग़'के शिष्य थे। बादमे 'तसलीम'के शिष्य हुए। इस युगकी शाइरीके नमूने 'दागेजिगर'में पाये जाते हैं। आपकी वर्त्तमान-ढगकी शाइरीका दौर 'असगर' गोण्डवीके प्रभावमे आनेसे हुआ। 'असगर'की सगतके कारण आपके जीवनमे बहुत बडा परिवर्तन हुआ। पहले आपके यहाँ हलके और आम कलामकी भरमार थी। अब आपके कलाममें गम्भीरता, उच्चता और स्थायित्व आगया है। आप गज़लगो शाइरोंमे बहुत बडा मर्त्तबा रखते हैं। आप गज़लमे नित नये अनुभवोका समावेश कर रहे हैं, जिससे गज़लमें एक ताज़गी, स्फूर्ति और नवीनता बढती जा रही है। मजाज़ी इश्कके साथ-साथ हकीकी इश्कका पुट देकर तग़ज़्ज़ुल और तसव्वुफका समन्वय करनेमें कमाल रखते हैं। आपके पढनेका ढग

इतना दिलकश और मोहक है कि सैकड़ों शाइर उसकी कॉपी करनेका प्रयत्न करते हैं, मगर वह बात कहाँ? जिगर, जिगर है।

पहले आप मशहूर रिन्द थे। मुशाअ़रोंमें भी पीकर और बेख़ुद होकर बैठते थे। यहाँतक कि १९२८ ई०में बिजनौर नुमाइशके मुशाअ़रेमें हमने उन्हें मुशाअ़रेमें ही पीते हुए देखा है। मगर अब अ़र्सेसे तौबा किये हुए हैं। बहुत-से मुशाअ़रोंमें आपका कलाम हमें सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पाक इश्क़

इश्क़को दिलफेंक छोकरे मनबहलावका एक साधन समझते हैं। जब जी चाहा किया, जब जी न चाहा, छोड़ दिया। यह इश्क़ नहीं, लुचपन है, अय्याशी है। इश्क़की परिभाषा 'जिगर'से सुनिए—

यह इश्क़ नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है॥

'जिगर'की प्रेयसी हरजाई या बाज़ारी नारी नहीं। वह हयापरवर, सुशीला कुलीन सुकुमारी है। न जाने उसके हृदयमें प्रेमकी चिनगारी कैसे जा लगी है? वह अन्दर-ही-अन्दर सुलगती जा रही है, परन्तु उसका धुआँ बाहर नहीं निकलने देना चाहती। एक भी आह ओठोंसे बाहर निकली तो जग-हँसाई होगी। कुटुम्बी क्या कहेंगे? इसी भयसे वह मन-ही-मनमें सुलगती जा रही है। सामाजिक और पारिवारिक बन्धन इतने हैं कि वह एक पाती भी अपने प्यारेको नहीं भेज सकती, न, किसीके हाथ सन्देशा। जिगर अपनी प्रेयसीकी विवशतासे परिचित हैं। वे अन्य शाइरोंकी तरह शिकवा-ओ-शिकायत, आह-ओ-फ़ुग़ाँ नहीं करते; यही कहकर दिलको बहलानेका यत्न करते हैं—

इधरसे भी है सिवा, कुछ उधरकी मजबूरी।
कि हमने आह तो की, उनसे आह भी न हुई॥

ऐसे हयापरवर माशूकका तसव्वुर उर्दूगजलमे 'जिगर'की जिगर-सोज़ीसे पहले-पहल आया है।

कुछ शाइरोंका सिद्धान्त है कि—

जो ग़म हुआ उसे ग़मे-जानाँ बना लिया।

यानी सांसारिक आपदायें किसी भी कारणसे आयें, वे सब इश्कके कारण आईं, यही समझकर उसका उल्लेख गजलमें करते हैं। लेकिन आजका शाइर गमे-दौरांको गमे-जानाँ न बनाकर, गमे-जानांको गमे-दौराँ बनानेके पक्षमें है।

हमपर अकेले ही यह मुसीबतोका पहाड़ नही टूट रहा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पडा हुआ कराह रहा है। उन सबका दुख दूर होनेमें ही अपना कल्याण है। यही भावना 'गमे-दौराँ' है।

राष्ट्रपिता बापूपर जो अमानुषिक अत्याचार दक्षिण अफ्रीकामें गोरो-द्वारा हुए, बापूने उन्हें व्यक्तिगत न समझकर समस्त अश्वेत जातिका अपमान समझा। इसी समझको 'ग़मे-दौराँ' कहते हैं।

एक अबला भरी जवानीमें विधवा हो जाती है। वह बिलख-बिलख कर रोनके बजाय, यह समझकर कि यह आपदा केवल उसीपर नही आई है, न जाने कितनी नारियाँ इस दुखसे बिलख रही है, उनके उद्धारके लिए आश्रमो और शिक्षालयोका प्रबन्ध करनेमें जुट जाती है। घर-घर जाकर विधवाओंको सान्त्वना देती है। इसी कार्यको 'ग़मे-दौराँ' कहते है।

यदि किसी पुत्रवती मांका इकलौता लाल देशहितमें शहीद हो जाता है, और उसकी माँ अपनेको निपूती न समझकर, समूचे देशकी माँ समझ लेती है। उसी समझको 'गमे-दौराँ' कहते हैं। जिगर इसी 'गमे-दौराँ' के कायल है—

मैं वोह साफ ही न कह दूँ, जो है फर्क मुझमें, तुझमें।
तेरा दर्द, दर्दे-तनहा, मेरा गम गमे-ज़माना॥

'जिगर'का मानवीय-प्रेम धीरे-धीरे ईश्वरीय-प्रेममे परिवर्तित हो जाता है, और वे सर्वत्र उसका जलवा देखते है—

जिस रंगमें देखा उसे, वह पर्दानशीं है।
और उसपै यह पर्दा है कि पर्दा ही नहीं है॥
हर-एक मकांमें कोई इस तरह मकीं है।
पूछो तो कहीं भी नहीं, देखो तो यहीं है॥

वाहरकी आँखे वन्दकर जब उसे हियेकी आँखोसे देखा तो—

मुझीमें रहे मुझसे मस्तूर होकर।
वहुत पास निकले बहुत दूर होकर॥

अपना प्यारा सर्वत्र अपने साथ है, परन्तु अपनी अन्धी आँखे उसे न देख सके, तो उसका क्या दोष? जिसने जब भी उसे टेरा, अपने समीप पाया—

इस तरह न होगा कोई आशिक भी तो पाबन्द।
आवाज जहाँ दो उसे वोह शोख वहीं है॥

साथ ही नही है, वह रोम-रोममे व्याप्त है—

आँखोंमें नूर, जिस्ममें बनकर वोह जाँ रहे।
यानी हमींमें रहके, वोह हमसे निहाँ रहे॥

और जो मुसीबते हमपर आईं, वे हमारे साथ हमारे प्यारेने भी बर्दाश्त की। आये हुए दु:खको जब अपने साथी बाँट लेते है, समवेदना प्रकट करते है, तो दु:खका बोझ बहुत हल्का लगने लगता है—

हरचन्द वक्फ़े-कश-म-कशे-दोजहाँ रहे।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहाँ रहे॥

हमारा प्यारा हर-रूपमें जलवागर है, हियेकी आँखोंसे देखो तो भूखोंकी भूख-प्यासमें, सतियोंके आँसुओंमें, पीडितोंकी आहोंमें, पक्षियोंके चहकनेमें, वही दिखाई देगा—

बहारे-लाला-ओ-गुल, शोख़िये-बर्क़ो-शरर होकर।
वोह आये सामने लेकिन, हिजाबाते-नज़र होकर॥

अपने प्यारेका जलवा कैसे व्यक्त किया जाय? जिन आँखोंने उसे देखा है, वे बोलना नहीं जानतीं, और जीभ कहे तो क्या कहे? उसने कुछ देखा नहीं—

क्या हुस्नका अफ़साना महदूद हो लफ़्ज़ोंमें।
आँखें ही कहें उसको, आँखोंने जो देखा है॥*

वाहरे मेरे प्यारेका मेरे प्रति अनुराग! न वह काबेमे रहा, न मन्दिरोंमें, न धनियोंके महलोंमें। वह तो मेरे इस उजडे दिलमे ही बना रहा—

जो न काबेमें है महदूद न बुतख़ानेमें।
हाय वोह और एक उजड़े हुए काशानेमें?

मै तो उसीके हुस्नका आशिक हूँ। मुझे तो सर्वत्र उसीका हुस्न-ही-हुस्न नज़र आ रहा है, और कुछ भी नहीं—

हुस्न है मेरे सामने, हुस्नके मासिवा नहीं।
इश्क़में मुब्तिला हूँ मै, कुफ़्रमें मुब्तिला नहीं॥

परमात्माकी एक झलक देखनेकी साध लिये हुए न जाने कितने साधकोंने साधनाएँ कीं। कुछ और आगे बढे तो परमात्माके चरणोंकी समीपता प्राप्त करनेकी अभिलाषामे दुर्धर तप करते रहे। अधिक-से-अधिक ईश्वरमें एकाकार होनेके प्रयत्न किये, परन्तु परमात्मा कोई पृथक

---

*गिरा अनयन, नयन बिन बानी—तुलसीदास

शक्ति नही। वीतराग होनेपर यह आत्मा ही परमात्मा हो सकता है। कुछ इसी सिद्धान्तसे मिलता-जुलता अभिप्राय जिगर इसतरह व्यक्त करते है—

यहाँतक जज़्ब कर लूँ फ़ाश तेरे हुस्ने-कामिलको।
तुझीको सब पुकार उट्ठें निकल जाऊँ जिधर होकर॥

प्रेमी और प्यारा जब एकाकार हो जायें, तब विरह-मिलनके दुःखोका समूल नाश हो जाता है। गुण, गुणी, ज्ञाता, ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू, मै, परका तब भेद-भाव नही रहता। मिस्रीसे मिठास जुदा नही, इसी तरह यह आत्मा वीतराग होकर परमात्म-पद प्राप्त कर लेता है, तब उपासक और उपास्यका भेद नही रहता—

वहदते-ख़ास इश्क़में ग़ैरियतका ज़िक्र क्या?
अपने ही जलवे देखिए अपनी ही बज़्मे-नाज़में॥

ईश्वर नामकी कोई वस्तु ससारमे है और उसीने यदि यह सृष्टि की है तो न जाने वह अपने भक्तोको मिटानेपर क्यों तुला हुआ है? इस बेरहमीसे तो बच्चा भी अपने खिलौने नही तोड़ता। जब भक्त ही न होगे तो भक्त-वत्सलको कौन पूछेगा? सृष्टि ही न रहेगी तो उसे सृष्टि-कर्ता कौन कहेगा?

मुझे ख़ाक्में तो न यूँ मिला, हूँ अगर्चे मैं तेरा नक़्शे-पा।
तेरे जलवे-जलवेकी है बक़ा, मेरे शौक़े-नाम-व-नामसे[1]॥

---

[1]इसी भावको इकबालने यूँ व्यक्त किया है—

इसी कौकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा?

(इन्ही मानव-रूपी चमकते नक्षत्रोसे तेरा ससार जगमग-जगमग हो रहा है। यदि इनको तू नष्ट कर देगा तो नुकसान तेरा होगा या अन्य किसीका?)

ग़मे-इश्क़

'जिगर' ग़मे-इश्कमे रोने-बिसूरनेको शायाने-शान नही समझते—

इश्क़की अज़मत न हरगिज़ जीते जी कम कीजिए।
जान दे दीजे मगर, आँखें न पुरनम कीजिए॥

तौहीने-इश्क़ देख न हो, ऐ 'जिगर'! न हो।
हो जाए दिलका ख़ून, मगर आँख तर न हो॥

और कभी आहो-नाला मुँहसे निकले भी तो—

नाला यूँ कीजे, यह अन्दाज़े-शिकेबाई[1] हो।
जैसे बेसाख़्ता[2] होंटोंपै हँसी आई हो॥

ग़मे-इश्कमें ओठोंपर मुसकान न आये, तो 'जिगर' ऐसे इश्क़को इश्क़ और ज़िन्दगीको ज़िन्दगी नही समझते—

तेरी ख़ुशीसे अगर ग़ममें भी ख़ुशी न हुई।
वोह ज़िन्दगी तो मुहब्बतकी ज़िन्दगी न हुई॥

'जिगर' अपने प्यारे द्वारा दिये गये कष्टोंको कष्ट नहीं समझते। बल्कि उसका एहसान समझकर आभारी होते हैं—

तेरी अमानते-ग़मका तो, हक़ अदा कर लूँ।
ख़ुदा करे शबे-फ़ुर्क़त अभी दराज़ रहे॥
तेरे निसार मुताकरवा एक लतीफ़ ख़लिश।
तमाम उम्र मुहब्बतको जिसपै नाज़ रहे॥

सब ज़बाँ भी दे अदाए-शुक्रके काबिल मुझे।
दर्द बख़्शा है अगर तूने बजाए-दिल मुझे॥

---

[1]सन्तोष और सब्रका अन्दाज़ मालूम दे; [2]अनायास, यकायक।

मनुष्यकी वह स्थिति कितनी शोचनीय है, जब कि कोई उसे दयनीय समझकर जुल्मो-सितमसे हाथ खींच ले। युद्धमें रत एक योद्धा यह समझकर हथियार फेंक दे कि विपक्षी योद्धा अशक्त हो चला है, प्रतिद्वन्द्वी योद्धाके लिए घोर लज्जाकी बात होगी।

फूंक दे ऐ ग़ैरते-सोज़े-मुहब्बत फूंक दे।
अब समझती है वोह नज़रें, रहमके काबिल मुझे॥

रक़ाबत

'जिगर'के यहां भी रकीबका ज़िक्र आता है, मगर कितनी महानताके साथ ?

वोह हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है।
जिसे ख़ाके-पा तेरी छू गई वोह बुरा भी हो तो, बुरा नहीं[1]॥

जिगरकी रिन्दी

'जिगर' एक ज़मानेमे बहुत बडे रिन्द रहे है। ऐसे कि इमामे-मैख़ाना कहलानेके पूर्ण अधिकारी। अपनी रिन्दीके बारेमे फर्माते है—

रिन्द जो मुझको समझते है उन्हें होश नहीं।
मैकदा-साज़ हूँ मैं मैकदाबरदोश नहीं॥
पांव रुकते ही नहीं मंज़िले-जानांके खिलाफ़।
और अगर होशकी पूछो तो मुझे होश नहीं॥

'जिगर'को दर्से-हकीकत बहुत न दे वाइज़ !
वोह बेख़बर है बज़ाहिर तो बाख़बर पिन्हां॥

---

[1]रकीबके सम्बन्धमे किसी अज्ञात कविका यह शेर 'जिगर'को हमने झूम-झूमकर पढ़ते सुना है और उनकी रायमे उर्दू-शाइरीमें इससे अच्छा शेर रकीब पर नही लिखा गया।

सामने उसके न कहते मगर अब कहते हैं।
लज़्ज़ते-इश्क गई ग़ैरके मर जानेसे॥

जबतक शबावे-इश्क, मुकम्मल शबाब है।
पानी भी है शराब, हवा भी शराब है॥

तूने जिस अश्कपर नजर डाली।
जोश खाकर वही शराब हुआ॥

क़ौमी-दर्द

'जिगर' पतनोन्मुखी कौमको देखिए किस अन्दाजमें गैरत दिलाते हैं—

जो साज कि खुद नग़मए-हिरमाँ था उसीको।
अन्देशए-मिजराब है मालूम नहीं क्यों?
उसी किश्तीको नहीं तावे-तलातुम सदहैफ़।
जिसने मुँह फेर दिये थे कभी तूफ़ानोंके॥

सुख-दुखका जोड़ा है। जब सुख भोगते रहे तो दुखमे घबराहट क्यों?

काँटोंका भी कुछ हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाए अपना दामन॥

चुना हुआ कलाम

अब हम आपके 'शोलए-तूर' दीवानमे और पत्र-पत्रिकाओंसे सभी तरहका ताज़ा कलाम चुनकर दे रहे हैं—

बैठे हैं बज़्मेदोस्तमें[1] गुमशुद्‌गाने-हुस्ने-दोस्त[2]।
इश्क है और तलब[3] नहीं, नग़मा[4] है और सदा[5] नहीं॥

अरबाबे-चमनसे[6] नहीं, पूछो यह चमनसे।
कहते हैं किसे निक्हते-बरबादका[7] आलम॥

---

[1]प्यारेकी महफ़िलमें; [2]प्यारेके रूपमें लीन गुम-सुम; [3]इच्छा; [4]गीत लहरी, [5]आवाज़; [6]चमनवालोंसे; [7]बरबादीकी गन्धका।

हरइक सूरत, हरइक तसवीर मुबहम[1] होती जाती है।
इलाही! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है?

तेरे बग़ैर तो जीना रवा नहीं लेकिन।
मैं क्या करूँ जो तेरा ग़म ही जाँनवाज़[2] रहे॥

इश्क़ ही के हाथोंमें कुछ सकत[3] नहीं रहती।
वरना चीज़ ही क्या है गोशए-नकाब उनका॥

आँखोंका था क़ुसूर न दिलका क़ुसूर था।
आया जो मेरे सामने मेरा ग़ुरूर था॥

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी[4] नहीं जाती।
बुझा जाता है दिल, चेहरेकी ताबानी[5] नहीं जाती॥

मुहब्बतमें इक ऐसा वक़्त भी दिलपर गुज़रता है।
कि आँसू ख़ुश्क हो जाते हैं, तुग़्यानी[6] नहीं जाती॥

जिसे रौनक़ तेरे क़दमोंने देकर छीन ली रौनक़।
वोह लाख आबाद हो उस घरकी वीरानी नहीं जाती॥
वोह यूँ दिलसे गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वोह यूँ आवाज़ देते हैं, कि पहचानी नहीं जाती॥

वोह लाख सामने हों मगर इसका क्या इलाज?
दिल मानता नहीं कि नज़र कामयाब है॥

---

[1]धुँधली; [2]जानके साथ; [3]शक्ति; [4]अन्तरंग व्यथाका अस्तित्व; [5]चमक; [6]उफान।

उन्हींके दिल्से कोई इसकी अ़ज़मतें पूछे।
वोह एक दिल जिसे सब कुछ लुटाके लूट लिया ॥

और तो कुछ कमी नहीं आपके इक़्तदारमें[1]।
आप मुझे भुला सकें यह नहीं इख़्तियारमें ॥

फ़ित्नए-रोज़गारमें[2] अम्न[3] है क्या, क़रार[4] क्या ?
हासिले-ज़ीस्त[5] ग़म सही, ग़मका भी एतबार क्या ?

क्यों आतिशे-गुल मेरे नशेमनको जलाये ?
तिनकोंमें है ख़ुद बर्क़े-चमनज़ादका आ़लम ॥

उन लबोंकी जाँनवाज़ी देखना।
मुँहसे बोल उठनेको है जामे-शराब ॥

दिलको बरबाद करके बैठा हूँ।
कुछ ख़ुशी भी है कुछ मलाल भी है ॥

आ कि तुझ बिन इस तरह ऐ दोस्त ! घबराता हूँ मैं।
जैसे हर शैमें किसी शैकी कमी पाता हूँ मैं ॥
कूए-जानांकी हवा-तकसे भी थर्राता हूँ मैं।
क्या करूँ बेइख़्तियाराना चला जाता हूँ मैं ॥
मेरी हस्ती शौक़े-पैहम, मेरी फ़ितरत इज़्तिराब।
कोई मंज़िल हो मगर गुज़रा चला जाता हूँ मैं ॥

उनके बहलाये भी न बहला दिल।
रायगाँ[6] सईए-इल्तिफ़ात[7] गई ॥

---

[1]अधिकारमें; [2]संसारके झमेलोंमें; [3]सुख-शान्ति; [4]चैन; [5]ज़िन्दगीका हासिल; [6]व्यर्थ; [7]कृपा पानेकी युक्ति।

तर्के-उल्फ़त बहुत बजा नासेह !
लेकिन उसतक अगर यह बात गई ?

सीनए-नैंप[1] जो गुजरती है।
वोह लबे-नै-नवाज़[2] क्या जाने ?

इ्बरते-बन्दगी-ओ-नाचारी[3] ।
कोई बन्दानवाज़[4] क्या जाने ?

इस इ्श्कको तलाफिए-माफ़ात[5] देखना।
रोनेकी हसरतें है, जब आँसू नहीं रहे॥

हम न मरते तेरे तगाफुलसे[6] ।
पुरसिशे-बे-हिसाबने[7]-मारा ॥

हाय यह मजबूरियाँ, महरूमियाँ, नाकामियाँ।
इ्श्क आखिर इ्श्क है, तुम क्या करो, हम क्या करें ?

किस तरफ जाऊँ, किधर देखूँ, किसे आवाज़ दूँ ?
ऐ हुजूमे-नामुरादी जी बहुत घबराय है॥

हमसे पूछो तो इ्श्कको भी निगाह।
सख्त काफिर निगाह होती है॥
वोह भी है इक मुकामे-इ्श्क जहाँ।
हर तमन्ना गुनाह होती है॥

---

[1]बाँसुरीके मनपर; [2]स्वर पैदा करनेवालेके ओठ; [3]उपासनाकी नसीहत और उसे न कर सकनेकी मजबूरियाँ; [4]खुदा, माशूक; [5]नष्टप्राय हो जानेके बाद प्रायश्चित; [6]उपेक्षासे; [7]अधिक पूछ-ताछने।

इलाही ! तर्के-मुहब्बत भी क्या मुहब्बत है ।
भुलाते हैं उन्हें वोह याद आये जाते हैं ॥

मैं तेरा अक्स हूँ कि तू मेरा ।
इस सवालो-जवावने मारा ॥

देखा गया न यह भी सैयादो-बागवाँसे ।
इक शाखे-गुल थी लिपटी एक शाखे-आशियाँसे ॥

जमानेके हमदोशो[1]-हमराज[2] कबतक ?
जमानेको पीछे हटाता चला जा ॥

सावनकी रैन अँधेरी, तनहाइयोंका आलम ।
भूले हुए फसाने सब याद आ रहे हैं ॥

शौकने बेखुदीमें जब दस्ते-तलब[3] बढ़ा दिया ।
इबरते-इश्कने वहीं पहलू-ए-दिल दबा दिया ॥

इश्क फ़नाका नाम है इश्कमें जिन्दगी न देख ।
जलवए-आफताब बन, जर्रेमें रोशनी न देख ॥
होके रहेगा हमनवा वोह भी तेरे ही साथ-साथ ।
नग्मए-शौक गाये जा इश्ककी बरहमी न देख ॥

सोजे-तमाम चाहिए, रंगे-दवाम चाहिए ।
शमअ तहे-मजार हो शमअ सरे-मजार क्या ?

भूल जाऊँ कि मेरा जौके-मुहब्बत क्या है ?
इस तरह तो न मेरी हौसला अफजाई हो ॥

---

[1]कन्धे-से-कन्धे; [2]साथ-साथ; [3]इच्छाका हाथ ।

उनके जाते ही यह हैरत छा गई।
जिस तरफ़ देखा किया, देखा किया॥

वोह उनकी बेरुख़ी, वोह बेनियाज़ाना हँसी अपनी।
फिरी महफ़िल थी लेकिन बात बिगड़ी बन गई अपनी॥

फूल वही, चमन वही, फ़र्क नज़र-नज़रका है।
अ़हदे-बहारमें था क्या? दौरे-ख़िज़ाँमें क्या नहीं॥

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त इक शोख़से।
सामना जिस वक़्त हो जाता है, भर आता है दिल॥

जब मिली आँख होश खो बैठे।
कितने हाज़िर जवाब हैं हम लोग॥

अल्लाह तुझे रक्खे महफ़ूज़[1] हवादिससे[2]।
ऐ कुफ़्र! तेरे दमतक आराइशे-ईमाँ[3] है॥

पीता बग़ैर इज़्न[4] यह कब थी मेरी मजाल।
दर-पर्दा चश्मे-यारकी शह पाके पी गया॥

किधरसे बर्क़ चमकती है देखें ऐ वाइज़!
मैं अपना साग़र उठाता हूँ, तू किताब उठा॥

बहार तौबा-शिकन, चश्मे-मस्ते-यार मुसिर।
मैं आज पी जो न लेता वह बदगुमाँ होता॥

हमसे नज़र फेर ली उस शोख़ने।
हम भी हैं इन्सान ख़फ़ा हो गये॥

---

[1]सुरक्षित; [2]आपदाओंसे; [3]ईमानकी शोभा; [4]हुक्म, निमंत्रण।

इश्क़ ही तनहा नहीं आशुफ़्तासर[1] मेरे लिए।
हुस्न भी बेताब है और किस क़दर मेरे लिए॥

अब नज़रको कहीं क़रार[2] नहीं।
काविशे-इन्तिख़ाबने[3] मारा॥

ज़र्रोंसे[4] बातें करते हैं दीवारो-दरसे हम।
मायूस[5] किस क़दर हैं, तेरी रहगुज़रसे[6] हम॥

कोई हसीं, हसीं ही ठहरता नहीं 'जिगर'!
बाज़ आये इस बुलन्दिए-ज़ौक़े-नज़रसे हम॥

इतनी-सी बातपर है बस इक जंगे-ज़रगरी[7]।
पहले उधरसे बढ़ते हैं वोह या इधरसे हम॥

मुमकिन नहीं कि जज़्बए-दिल[8] कारगर न हो।
यह और बात है तुम्हें अबतक ख़बर न हो॥

जिसे मैं भी ख़ुद न बता सकूँ, मेरा राज़े-दिल है वोह राज़े-दिल।
जिसे ग़ैर दोस्त समझ सके, मेरे साज़में वोह सदा[9] नहीं॥

अ़र्ज़े-शौक़पर मेरी, पहले कुछ अताब[10] उनका।
ख़ास इक अदाके साथ, उफ़ वोह फिर हिजाब[11] उनका॥

यह आ़लम है अब ख़ुश्क आँखोंमें अपनी।
कि तूफ़ाँ है बरपा, रवानी[12] नहीं है॥

हुदूदे-कूचए-महबूब[13] है वहींसे शुरूअ़।
जहाँसे पड़ने लगें पाँव डगमगाये हुए॥

---

[1] सरदर्द, परेशानीका कारण, [2] चैन, [3] प्रेयसीके चुनावके प्रयासने; [4] धूल-कणोंने, [5] निराश, [6] मार्गमें, [7] दिखावटी लड़ाई, [8] दिलकी भावना; [9] आवाज़; [10] क्रोध; [11] शर्माना, [12] बहाव; [13] प्रेयसीकी गलीकी सीमा।

लेके ख़त उनका किया जब्त वहुत कुछ लेकिन।
थरथराते हुए हाथोंने भरम खोल दिया॥

मिलाके आँख, न महरूमे-नाज़[1] रहने दे।
तुझे क़सम जो मुझे पाकबाज़[2] रहने दे॥

ख़ता मुआफ किसी औरका तो जिक्र ही क्या?
नियाज़मन्द[3] तेरे तुझसे वेनियाज़[4] रहे॥

मानूसे-एतबारे-करम[5] क्यों किया मुझे?
अब हर ख़ताए-शौक़[6] उसीका जवाब है॥

जो मसर्रतोंसे[7] ख़लिश[8] नहीं, जो अज़ीयतोंमें[9] मज़ा नहीं।
तेरे हुस्नका भी कुसूर है, मेरे इश्क ही की ख़ता नहीं॥

मेरा ज़ौक़ भी, मेरा शौक़ भी, है वलन्द[10] सतहे-अवामसे[11]।
तेरा हिज्र भी, तेरा वस्ल भी, मेरे दर्दे-दिलको दवा नहीं॥

चुप हैं वोह यूँ सुनके मेरा अर्ज़े-शौक़।
जैसे कि सचमुच ही ख़फा हो गये॥

ख़बर नहीं मुझे, मैं क्या हूँ, आर्ज़ू क्या है?
किसीने जबसे यह समझा दिया कि तू क्या है॥

कूचए-इश्कमें निकल आया।
जिसको ख़ाना-ख़राब होना था॥

लाखोंमें इन्तख़ाबके क़ाबिल बना दिया।
जिस दिलको तुमने देख लिया दिल बना दिया॥

---

[1] अदाओंसे उपेक्षित; [2] संयमी, पवित्र; [3] विनयी; [4] वेपर्वा; [5] कृपाओंपर विश्वास रखनेका अभ्यस्त; [6] शौक करनेका अपराध; [7] खुशियोंमें; [8] चुभन; [9] दुखोंमें; [10] उच्च; [11] सर्वसाधारण स्तरसे।

माना ग़ुरूरे-इश्क़ भी इक चीज़ है मगर।
इतने भी दूर-दूर तेरे आस्तांसे[1] क्या?

उनकी वोह आमद-आमद अपना यहाँ यह आलम।
इक रंग आ रहा है, इक रंग जा रहा है॥

वोह कबके आये भी और गये भी, नज़रमें अबतक समा रहे हैं।
यह चल रहे हैं, वह फिर रहे हैं, यह आ रहे हैं, वह जा रहे हैं॥
वही क़यामत है क़द्देबाला, वही है सूरत, वही सरापा।
लबोंको जुम्बिश, निगहको लरज़िश, खड़े हैं और मुसकरा रहे हैं॥

हुस्न आया था ख़ुद मनानेको।
सो तवज्जह ही इश्क़ने कम की॥

मुझे क्या पड़ी है तेरे दरसे उट्ठूं।
ठहरने जो दे इज़्तिराबे-मुहब्बत[2]॥

यह क्या है कि पहलूमें वोह भी है लेकिन—
शबे-माह[3] फिर भी सुहानी नहीं है॥

अ़जब इन्क़िलाबे-ज़माना है, मेरा मुख़्तसर-सा फ़साना है।
यही अब जो बार[4] है दोशपर[5] यही सर था ज़ानू-ए-यारपर[6]॥

हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमां[7] होना॥

दिलको क्या-क्या सुकून[8] होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता॥

---

[1]चौखटसे, स्थानसे; [2]प्रेमकी बेचैनी, [3]चान्दनी रात; [4]बोझ; [5]कन्धे पर; [6]प्रियतमाके घुटनेपर; [7]शर्मिन्दा; [8]चैन।

उमीदे-अफ़्को[1] भी मैंने अब दिलसे मिटा डाला।
यह था इक बदनुमा धब्बा मेरे दामाने-इस्याँका[2]॥

चाँदनी है, हवा है, क्या कहिए।
मुफ़लिसी क्या बला है, क्या कहिए॥

फिर वह हमसे ख़फ़ा है क्या कहिए?
ज़िन्दगी बेहया है, क्या कहिए॥

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले-दिल।
हम वोह नहीं कि जिसको ज़माना बना गया॥

मुझ नातवाने-इश्क़को[3] समझा है तुमने क्या?
दामन पकड़ लिया तो छुड़ाया न जायगा॥

हरमो-दैरमें[4] रिन्दोंका[5] ठिकाना ही न था।
वोह तो यह कहिए अमाँ[6] मिल गई मैख़ानेमें॥

वोह भी निकली इक शुआए-बर्क़े-हुस्न[7]।
मैं जिसे अपनी नज़र समझा किया॥

नवेदे-बख़्शिशे-इस्याँसे[8] शर्मसार न कर।
गुनाहगारको या रब! गुनाहगार न कर॥

नाज़ करती है ख़ाना-वीरानी।
ऐसे ख़ाना-ख़राब हैं हम लोग॥

उससे भी शोख़तर हैं उस शोख़की अदाएँ।
कर जाएँ काम अपना लेकिन नज़र न आएँ॥

---

[1]अपराध क्षमा किये जानेकी आशाको; [2]पाप-रूपी चादरका; [3]निर्बल प्रेमीको; [4]मस्जिद-मन्दिरमें; [5]मद्यपोका; [6]शरण; [7]हुस्नरूपी बिजलीकी किरण; [8]अपराधोंको क्षमा किये जानेकी सूचनासे।

जुनूने-मुहब्बत यहाँतक तो पहुँचा।
कि तर्के-मुहब्बत किया चाहता हूँ॥

हुस्नकी सेहरकारियाँ[1] इश्कके दिलसे पूछिए।
वस्ल कभी है हिज्र-सा, हिज्र कभी विसाल-सा॥

हुस्नकी शानें थीं जितनी, सब नुमायाँ[2] हो गईं।
जो तेरे रुख़से बचीं रंगे-गुलिस्ताँ हो गईं॥
—निगार जनवरी १९४१ ई०

मेरी हैरतकी क़सम आप उठाएँ तो नक़ाब।
मेरा ज़िम्मा है कि जलवे न परीशाँ होंगे॥

मेरा जो हाल हो-सो-हो बर्क़नज़र[3] गिराये जा।
मैं यूँ ही नालाकशा[4] रहूँ तू यूँ ही मुसकराए जा॥

लहज़ा-ब-लहज़ा दम-ब-दम जलवा-ब-जलवा आये जा।
तिश्नए-हुस्ने-ज़ात[5] हूँ, तिश्ना-लबी[6] बढ़ाये जा॥

लुत्फ़से हो कि मेहरसे[7], होगा कभी, तो रूबरू[8]।
उसका जहाँ पता चले, शोर वहीं मचाए जा॥

ख़ुशा वोह दर्दे-मुहब्बत, ज़हे वोह दिल कि जिसे।
ज़रा सुकून[9] हुआ, गुद-गुदा दिया तूने॥

ख़ुशा वोह जान जिसे दी गई अमानते-इश्क़।
ज़हे वोह दिल जिसे अपना बनाके लूट लिया॥
सलाम उसपै कि जिसने उठाके पर्दए-दिल।
मुझीमें रहके मुझीमें समाके लूट लिया॥

---

[1]जादूगरी, [2]प्रकट; [3]बिजली जैसे कटाक्ष; [4]दीर्घ निश्वासी; [5]सौन्दर्यामृत पिपासू; [6]प्यास; [7]कृपाओंसे; [8]समक्ष; [9]चैन।

मुझे चाहिए वही साक़िया जो छलक चले, जो बरस चले।
तेरे हुस्ने-शीशा-ओ-दस्तसे, तेरी चश्मे-बादा-ओ-जामसे॥

तुम्हें भी खबर है जो तुम कह गये हो?
खुद अपनी अदाओंसे मसहूर[1] होकर॥

सुनता हूँ कि हर हालमें वोह दिलके क़रीं है।
जिस हालमें मैं हूँ मुझे अफ़सोस नहीं है॥
वाहरे शौक़े-शहादत[2], कूए-क़ातिलको[3] तरफ़।
गुनगुनाता, रक़्स[4] करता, झूमता जाता हूँ मैं॥

—अपनी डायरीसे

तेरी खुशीसे अगर ग़ममें भी खुशी न मिली।
वोह जिन्दगी तो मुहब्बतकी जिन्दगी न हुई॥
सबा[5]! यह उनसे हमारा पयाम[6] कह देना।
गये हो जबसे यहाँ सुबहो-शाम ही न हुई॥

दिल गया रौनक़े-हयात[7] गई।
ग़म गया सारी काएनात[8] गई॥

जबसे तू महरबान है प्यारे।
और दिल बदगुमान है प्यारे॥

तू जहाँ नाज़से क़दम रख दे।
वोह ज़मीन आसमान है प्यारे॥

शामसे आ गये जो पीनेपर।
सुब्हतक आफ़ताब हैं हम लोग॥

---

[1]जादूका मारा हुआ; [2]शहीद होनेका चाव; [3]वधिककी गलीकी; [4]नृत्य; [5]वायु; [6]सन्देश, [7]जीवन-शोभा; [8]दुनिया, पूंजी।

तू हमारा जवाब है तनहा।
और तेरा जवाब है हम लोग॥

'आजकल' सितम्बर १९४९ ई०

तेरे जलवोंको देखें और मेरे दिलकी तरफ़ देखें।
कहाँ है इत्तिसाले-मौजो-साहिल[1] देखनेवाले?

कहीं ऐसा तो नहीं वोह भी कोई हो आज़ार[2]।
तुमको जिस चीज़पै राहतका[3] गुमाँ[4] होता है॥

हाय! वोह सिलसिलए-अश्क कि जो तेरे हुज़ूर।
दिलमें रहता है न आँखोंमें रवाँ[5] रहता है॥

वोह अदाए-दिलबरी[6] हो कि नवाए-आशिक़ाना[7]।
जो दिलोंको फ़तह कर ले, वही फ़ातहे-ज़माना॥
कभी हुस्नकी तबीअ़त न बदल सका ज़माना।
वही नाज़े-बेनियाज़ी[8] वही शाने-ख़ुसरुवाना[9]॥
मैं हूँ उस मुक़ामपर अब कि फ़िराक़ो-वस्ल[10] कैसे?
मेरा इश्क़ भी कहानी, तेरा हुस्न भी फ़साना॥
तेरे इश्क़की करामत[11] यह अगर नहीं तो क्या है?
कभी बेअदब न गुज़रा, मेरे पाससे ज़माना॥
मेरे हम-सफ़ीर[12] बुलबुल! मेरा-तेरा साथ ही क्या?
मैं ज़मीरे-दश्तो-दरिया तू असीरे-आशियाना॥

---

[1]लहरें और किनारेको मिला हुआ; [2]दुख, रोग, [3]निराकुलता, आरामका, [4]सन्देह, वहम, भ्रम; [5]जारी, [6]दिल लुभानेवाली अदा, मनमोहक हाव-भाव; [7]प्रेम-राग; [8]उपेक्षाभावका अभिमान; [9]बादशाही शान; [10]विरह और मिलन, [11]प्रताप, ओज; [12]एक ही तरहकी बोली बोलनेवाले, सम-स्वर, मित्र सहयोगी।

तुझे ऐ 'जिगर' ! हुआ क्या कि बहुत दिनोंसे प्यारे ।
न बयाने-इश्क़ो-मस्ती न हदीसे-दिलबराना ॥
—आजकल १५ अगस्त १९४९ ई०

क़दम हटे जो कभी जादए-वफ़ासे[1] कहीं ।
हरेक ज़र्रा पुकारा कि देखता हूँ मैं ॥

इल्म ही ठहरा इल्मका बाग़ी ।
अ़क्ल ही निकली अ़क्लकी दुश्मन ॥
माहे-नौ कराँची फ़रवरी १९५१ ई०

अ़ज़मते-काबा[2] मुसल्लम[3], लेकिन इसका क्या इ़लाज ?
दिल ही जब कहता हो कि बुतख़ाना फिर बुतख़ाना है ॥

रिन्दोंने जो छेड़ा ज़ाहिदको साक़ीने कहा किस तंज़से आज—
"औरोंकी वोह अ़ज़मत[4] क्या जानें, कमज़र्फ़[5] जो इन्सां होते हैं ॥"
यह ख़ून जो है मज़लूमोंका,[6] ज़ाया[7] तो न जायेगा लेकिन—
कितने वोह मुबारक क़तरे हैं जो सर्फ़े-बहारां[8] होते हैं ?

वोह सब्ज़ा[9] नंगे-चमन[10] है, जो लहलहा न सके ।
वोह गुल है ज़ख़्मे-बहारां जो मुसकरा न सके ॥
घटे अगर तो बस इक मुश्ते-ख़ाक है इन्सां ।
बढ़े तो वुसअ़ते-कौनैनमें[11] समा न सके ॥
२ जून १९५३ ई०]

---

[1]नेकीके, निभानेके मार्गमें; [2]कावेकी प्रतिष्ठा; [3]पूर्णरूपेण माननीय; [4]प्रतिष्ठा, बुज़ुर्गी, इज़्ज़त; [5]क्षुद्र प्रकृति, नीच; [6]अत्याचार पीड़ितोंका; [7]व्यर्थ; [8]बहारोंके लिए ख़र्च; [9]घास, हरियाली; [10]उद्यानका कलंक; [11]दोनो लोकोंकी सीमामें ।

द्वितीय संस्करणके लिए

हज़रत 'जिगर' साहबको मैंने पहली मर्तबा बिजनौरमें देखा। वहाँ आप दिसम्बर या जनवरी १९२८ ई०में डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी तरफसे आयोजित नुमाइशके अवसरपर होनेवाले मुशाअ़रेमें तशरीफ लाये थे। इसी नुमाइशमें पहली बार 'साग़र' निज़ामी साहब और 'बूम' मेरठी को भी देखा-सुना था। डिप्टी सोहनलालके सयोजनमें मुशाअरा एक पण्डालमें हो रहा था। मैं भी एक दर्शककी हैसियतसे गया हुआ था। सम्भवत. सागर साहब अपना कलाम सुना रहे थे। वे अपने मधुर स्वर, आनन्ददायक संगीत और नये ढगकी हिन्दी-उर्दू मिश्रित नज़्मो और गीतोंके कारण मुशाअरेपर छाये हुए थे। लोग झूम-झूमकर दादो-तहसीन दे रहे थे कि मुझे यकायक बहुत तेज़ गन्ध आई। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह शराबकी बू है, किसीने पी रक्खी है। किसने पी हुई है, यह जाननेका प्रयास कर रहा था कि मीर मुशाअराने हज़रते जिगरको कलाम सुनानेके लिए आमन्त्रित किया। मेरे बिल्कुल बराबर बैठे हुए हज़रत उठे तो उनकी बगलसे बोतल गिर गई और पहिले जैसी गन्ध पण्डालमें बहुत अधिक फैल गई। मैं हैरतमें था कि यह हज़रत कौन है जो मुशाअ़रेमे भी शौक फर्मा रहे है। वही हज़रत मचपर ग़ज़ल पढनेको दो ज़ानू बैठे तो मालूम हुआ, यह जिगर मुरादाबादी है, जो रिन्दी-ओ-सरमस्तीके लिए बहुत मशहूर है। मनमें खयाल आया, बेचारे क्या खाकर सागर साहबके बाद कलाम सुनायेंगे। सागर साहबने महफिलको मत्र-मुग्ध-सा करके रख दिया था। उन्हीको सुननेके लिए चारो ओरसे आवाजें आ रही थी। मुझे मीर मुशाअराकी समझपर तरस आया कि उसने यह कितनी बड़ी ग़लती सरज़द हुई है। किस गरीबको कलाम पढनेके लिए दावत दी है? मगर मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही कि मतलेका पहला मिसरा सुनते ही लोग दम-ब-खुद होकर बैठ गये। नशेके आलममे भी जिगर कलेजोको मसले दे रहे थे। सभी उपस्थित शाइर

बेखुद हुए जा रहे थे। कई ग़ज़लें आपसे पढ़वाई गई, मगर लोगोकी तबिअत सेर नही हो रही थी। जनताके बार-बार आग्रह करनेपर सागर साहब और जिगर साहब कई-कई गज़लें सुनानेको मजबूर हुए।

फिर सन् ३३ से ४० तक दिल्लीके कितने ही मुशाअ़रोमे जिगरको सुननेका सयोग मिला। ठिगना कद, काला रंग, मुँहपर चेचकके दाग, जुल्फे अस्त-व्यस्त, सुरापान किये हुए जिगर मुशाअ़रोमे नीची नज़र किये, चुपचाप, एक आसन इस तरह बैठे रहते है कि अपरिचितोको यह ख़्वाबो-ख़याल भी नही हो सकता कि यह भी जिगर हो सकते है, जो कि दुनियाए-शाइरीके बेताजके बादशाह है। मुशाअ़रेमें बैठे हुए न किसीपर फब्ती कसते है, न किसीपर हाशियाआराई करते है। न किसीका मख़ौल उड़ाते है और न नुक्ताचीनी करते है। न किसीकी तरफ देखते है। बस नीची नज़रे किये खोये-खोये-से चुपचाप एक-आसन बैठे रहते है। अच्छे शेरपर दिल खोलकर दाद देते है। नये शाइरोका हौसला बढाते है। अपनी बारी पर गज़ल पढते है और फिर चुपचाप अपनी जगह पर जा बैठते है।

जनता आपके नामपर मुशाअ़रोमे किस तरह टूटती है और आपका कितना खयाल रखा जाता है। चन्द चश्मदीद वाकए इस समय याद आ रहे है।

जामेआ मिल्लिया करौलबाग दिल्लीके सालाना मुशाअ़रेके अवसरपर हालमे तिल रखनेको जगह न थी। जरूरतसे ज्यादा उपस्थिति, उसपर सिग्रेटोके धुएँसे बडी घुटन-सी महसूस हुई तो डाक्टर ज़ाकिर हुसैन[1] साहबने सिग्रेट पीनेवालोको आडे हाथो लिया और लमहेभरमे जलाई हुई सिग्रेटे लोगोने मसलकर फेक दी। हालमे एक स्वच्छ और शान्त वातावरण छा

---

[1]आप उन दिनो जामेआ मिल्लियाके प्रिन्सिपल थे। सन् ४७के बाद अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटीके वाइस चान्सलर और वर्तमान (अगस्त १९५७)मे बिहारके राज्यपाल हैं।

गया। तभी जिगर साहब माइक्रोफोनपर गज़ल पढने आये। नशेमें धुत्त, बग़ैर सिग्रेटके किसी तरह एक गज़ल तो सुना दी। मगर दूसरीकी फ़र्माइश हुई तो जी चुराने लगे। लोगोंमें कानाफूसी हुई और ज़ाकिर हुसेन साहब जो गज़ल सुनकर आत्म-विभोर हुए बैठे थे, चौंके और पास बैठे हुओंमें-से सिग्रेट माँगकर जिगर साहबके ओठोंसे लगाकर स्वयं ही सुलगाने लगे।

सिग्रेटका कश लगाते ही जिगर साहब फिर लोगोंको वज्दमें लाने लगे। ज़ाकिर हुसेन साहब दस मिनट पहले सिग्रेट पीनेवालोंपर बरस चुके थे, उन्हींको जिगर साहबने इतना आत्म-विस्मृत कर दिया कि लोगोंसे माँगकर खुद ही सुलगा भी दी। हॉल कहकहोंसे गूँज उठा।

इसी मुशाअरेमें मैंने पहली बार हज़रत सफ़ी लखनवी और ज़रीफ़ लखनवीको देखा था। उनका कलाम और पढनेका ढंग भी खूब था। अबतक भुलाये नहीं भूलता।

दूसरे वर्ष जामेआ-मिल्लिया या तिब्बिया कालेज दिल्लीके सालाना जल्सेपर मुशाअरा था। मुशाअरा रेडिओसे रिले भी किया जा रहा था। जिगर साहबकी बारी आई तो आपने माइकपर तवज्जह न देते हुए पढना शुरू कर दिया। मुशाअरा रेडिओपर रिले हो और जिगर साहबकी गज़ल ब्राडकास्ट न हो सके यह कैसे हो सकता है? ब्राडकास्टिंग-व्यवस्थापकने कभी इस रुख़ और कभी उस रुख़ माइक लगानेका भरसक प्रयास किया, परन्तु जिगर मुँह इधर-उधर करते हुए गज़ल पढते रहे। प्रबन्धकने आजिज़ीसे कहा—"हुज़ूर ......"। आप बात काटकर बोले—"हम आपके ताबेअ नहीं, जैसे हमारा मिज़ाज चाहेगा, वैसे पढेंगे।" बेचारा प्रबन्धक मन मसोसकर रह गया।

कम्पनी बाग़के एक क्लबमें आलीशान मुशाअरा था। रविश सिद्दीक़ी, ताजवर नजीबाबादी, एहसान बिनदानिश, बहज़ाद लखनवी, साग़र निज़ामी अपना कलाम सुना चुके थे। इसी मुशाअरेमें एहसान बिन दानिशने 'ना-

ख़्वान्दा ख़ातून' और 'मजदूरकी मौत' जैसी प्रसिद्ध नज्मे सुननेका अवसर मिला। बहज़ाद लखनवीने 'जमुनाका किनारा' नज्म और 'जवानी लुटा दी' गज़ल पढी। सागर साहबने भी अपनी मशहूर ग़ज़ल 'जवानी लुटा दी' बहुत शानसे पढी। तभी यकायक जिगर साहबकी झलक दिखाई दी। जबकि सवारीसे उतरकर वे क्लबके एक कमरेमें दाखिल हो रहे थे।

शाइर और श्रोता सभी बेचैनीसे उनका इन्तिज़ार कर रहे थे, मगर जिगर साहब कमरेसे बाहर निकल नही रहे थे। सभीकी उत्सुक नज़रे कमरेकी तरफ लगी हुई थी। अब तक तो काफी पी ली होगी, फिर भी नही आ रहे हैं, आखिर माजरा क्या है? तभी मेरे मित्र सुमत साहबने कानमे कहा—"हसन निज़ामीकी मौजूदगीमे जिगर हरगिज़ नही आयेंगे।"

मुशाअ़रेके सदर तो एक रईस थे। मगर सदरके फ़राएज़ हसन निज़ामी साहब अदा कर रहे थे। हर शाइरका परिचय अपने मख़सूस अन्दाज़मे कराते जाते थे और कलाम पढनेपर इतनी नपी-तुली व्याख्या करते जाते थे कि सुनते ही बनती थी।

यकायक हसन निज़ामी साहब उठे और फर्माया—"मुझे एक ज़रूरी मीटिंगमे शिरकत करनेको जाना पड रहा है। बीचमे इस तरह उठकर चले जानेपर उम्मीद है आप माफ फर्मायेंगे।"

हसन निज़ामी साहब अभी पण्डालसे बाहर हुए ही थे कि जिगर साहबको मदहोशीकी हालतमे पण्डालमें देखा। लोगोंके इसरारपर गज़ल पढने माइकके सन्मुख आये। मगर नशा इतना गहरा था कि किसी तरह एक गज़ल कह पाये। बावजूद कोशिशके दूसरी गज़ल न सुना सके।

गज़ल सुनाते हुए आपेमें न थे। बेख़ुदी तारी थी। लेकिन लोगोंके एहतरामका यह आलम कि कोई इस तरफके हाथमें और कोई उस तरफके हाथमें सुलगी हुई सिग्रेट थमा रहा है और आप उसी आलममें किसी तरह एक गज़ल पढ पाये हैं।

लोगोंको जिगरकी इतनी अधिक मै-परस्तीपर बहुत ज्यादा मलाल हुआ। कफ़े-अफ़सोस मलते हुए मुशाअ़रेसे उठे।

हसन निज़ामी साहबके सामने पिये हुए आना जिगर साहबने अदबन मुनासिब न समझा या उनसे कोई चश्मक थी, यह मालूम न हो सका।

हर्ष है कि जिगर साहबने अपने उस्ताद 'असगर' साहबके प्रयत्नोंसे सुराका त्याग कर दिया है और अब वे उस तरफ देखते भी नही।

जिगर अपने उस्ताद हज़रते असग़र गोण्डवीका कितना अधिक अदब करते थे? यह रशीद अहमद साहब सिद्दीकीसे सुनिए—"बिल्कुल याद नही आता कि जिगर साहबसे पहले-पहल कब, कहाँ और कैसे मुलाकात हुई। मुमकिन है इलाहाबादमे हुई हो, जहाँ असगर साहब मरहूम, हिन्दुस्तानी एकेडेमी (यू-पी)मे सीगए-उर्दूके मुशीरे-अदबी (उर्दू-ग्रन्थमालाके सलाहकार) थे। किसी कामसे इलाहाबाद जाना होता तो मेरा कयाम असगर साहबके यहाँ होता। यह ज़माना और उसके बादका काफी ज़माना ऐसा था, जब जिगर साहबपर शराबका बड़ा तसल्लुत (गलबा, अधिकार) था।.....इलाहाबादमें असगर साहबके सामने जिगर साहब इस तरह खामोश मोअद्दब (शिष्ट तथा नम्र) और आँखें नीची किये हुए बैठते कि उनसे गुफ़्तगू भी की जाती तो सिर्फ हाँ, नही, में मुश्किलसे जवाब देते और फिर सर झुका लेते।.....उनको देखकर ऐसा महसूस होता, जैसे वे खुद न आये हों, बल्कि किसीने पहुँचा दिया हो और इसके मुन्तज़िर हो कि मौका मिले तो फिर अपनी मुहिम पर चले जाये।"

जिगर अपने उस्तादका जितना अधिक अदब करते थे। असगर भी उतना ही इन्हें पुत्रतुल्य प्यार करते थे। इनको इमामे-मैखाना देखकर कुढ़ते थे, क्रुद्ध होते थे, और इनके भोजन वग़ैरहकी पूरी सार-सँवार रखते थे। रशीद अहमद सिद्दीकी साहब लिखते हैं—"एक दफा इलाहाबाद पहुँचा तो असगर साहबके यहाँ जिगर साहब फिर उसी हालमें मिले। खानेका वक़्त आया तो मैं और असग़र साहब खानेके कमरेकी तरफ चले। जिगर

साहवने शिरकतसे माजूरी (भोजन करनेकी क्षमा)का इजहार किया। असगर साहव उस दिन कुछ खफ़ा मालूम होते थे। चलते-चलते खड़े हो गये और जिगर साहवको मुखातिव करके वोले—"ये सव तुम्हारे शेर नही सुनते, तुम्हारा गोश्त खाते है।"

खाना खाते हुए रशीद साहवने माजरा पूछा तो असगर साहवने खानेसे हाथ रोक लिया और हज़ी लहजे (व्यथा भरे स्वर)मे वोले—'रशीद साहव! आपको क्या मालूम यहाँ ऐसे वेरहम लोग भी है, जो इनको जहाँ चाहते है पकड लेते है और पिला-पिलाकर इनसे शेर सुनते है और जव ये अधमुए हो जाते है, इक्केपर लाद-फाँदकर यहाँ पहुँचा देते है।' रशीद साहवने देखा असगर साहव वोलते हुए वेकैफ हो गये और खानेसे भी हाथ खीच लिया।

"खाना खाते वक्त मुलाज़िमसे पूछते जाते थे कि यह खाना या वह खाना जिगर साहवके लिए रख दिया है या नही। इससे इत्मीनान नही होता था तो डोंगे और प्लेटसे निकालकर अलहदा प्लेटोमें रखते जाते और कहते—"यह सव जिगर साहवके लिए है, वगैर खाना खिलाये उनको वाहर न जाने देना।"

शरावसे आलूदा दामन निचोडे हुए और तौवा किये हुए जिगर साहवको वर्षों हो गये। मगर जव रात-दिन उसीमे लथ-पथ रहते थे, तव भी उनसे कोई हल्के किस्मका व्यवहार न होता था। वाणी और शरीरको सयत रखते थे। रशीद अहमद सिद्दीकी साहव लिखते है—

"मैंने जिगर साहवको तकरीवन हर हाल और हर सुहवतमे देखा है। खूवसूरत नौजवान आजाद औरतोमे, माँ-वहन-वेटियोमें, उमाएद और अकाविर (कौमी नेताओ, रईसो और वड़े आदमियों) की मौजूदगीमे, तुलवा, व असातजा (विद्यार्थियों और शिक्षकों) मे और दूसरे सजीदा हल्को (गम्भीर और प्रतिष्ठित समूह)मे। गुफ्तारो-किरदारके एतवार (वार्तालाप और व्यवहारकी दृष्टि)से मैंने उनको कही क़ाविले

गिरफ़्त न पाया। औरतोकी मौजूदगीमें जिगर साहब अफीफ-ओ-शफीक (नेक चलन और कृपा करनेवाले) नज़र आयेंगे। उनकी ज़बानसे कोई हल्की बात न निकलेगी और निगाह कभी बेवाक और बेमहाबा (स्वच्छन्द और बेहया) न होगी। औरतोकी मौजूदगीसे कितअ़नज़र, बेतकल्लुफ दोस्तोमे मैंने कभी यह न देखा कि जिगर साहबने बेख़यालीमे या तफरीहन कोई ऐसा जुमला कहा हो जिसमे औरतोंसे तफरीह या औरतोकी तज़हीक (स्त्रियोंसे दिल-बहलाव या उनसे बुरे मज़ाक)का पहलू निकलता हो। कम-से-कम मेरी जानपहचानका कोई उर्दू शाइर ऐसा नही है, सिवा 'फानी' मरहूमके जो इस बारेमें जिगर साहबका मुकाबिला कर सके।"

जिगर साहबके स्वाभिमानके सम्बन्धमे आप लिखते हैं—"मामूली आदमियोकी बदतमीज़ी वे बिलउमूम (अक्सर) नज़रन्दाज़ कर देते हैं। लेकिन किसी बडे आदमीसे ज़रा भी कोई नावाजिब हरकत सरज़द हो जाये तो जिगर साहब बगैर कुछ कहे या किये न रहेंगे। चाहे उसका अंजाम कुछ ही हो। भोपालके नवावज़ादा रशीदुलज़फर साहब ज़मानए-तालिबे-इल्मी (विद्यार्थी अवस्था)से ही जिगर साहबकी बडी इज़्ज़त करते हैं। एक ज़मानेमें उन्होने जिगर साहबका वज़ीफा मुकर्रर करा दिया था और किसी तरहकी कोई पाबन्दी नही आइद की थी कि वे क्या करें या कहाँ रहें। इस ज़मानेमें वालियाने-रियासतमें-से अक्सर यह चाहते कि जिगर साहब उनसे वाबस्ता (सम्बन्धित) हो जायें। उनमे-से एक जो बहुत बड़ी रियासतके चश्मो-चिराग़ थे। इसके दरपै हुए (तुल गये) कि जिगर साहब जिस मुआवज़े और शर्तपर चाहें, उनके मुतवस्सिलीन (वृत्ति लेनेवालो)में शामिल हो जाये। तरह-तरहके डोरे डाले गये। जिगर साहबकी माली हालत ख़राब थी, भूपालके वज़ीफेमे बस बसर-औकात हो जाती थी। जिगर साहब इस आफ़रको खुश असलूबी (सुरुचिपूर्ण ढग)से टालते रहे। एक दिन ऐसा इत्तफाक हुआ कि रईसने जिगर साहबसे बरमला अपनी ख्वाहिशका इज़हार कर दिया। जिगर साहबने बात टालनी चाही, लेकिन

कामयाबी न हुई। इसरार (आग्रह) बढ़ा और इसरारमें कुछ रगे-अमारत (रईसाना-ठसक) भी झलका। जिगर साहब बे-काबू हो गये। बोले—'जनाब आप मुझे दामोंसे खरीदना चाहते हैं। मैं तो रशीदुलजफर खाँ साहबके हाथों बिक चुका हूँ।' हाज़िरीन सन्नाटेमें आ गये और जिगर साहब घर चले गये"

जिगर साहब दिलके कितने नेक हैं एक घटना सुनिए—"जिगर साहब जब कभी मेरे यहाँ आये, मैंने यही सवाल किया—'सफरमें क्या खो आये?' और तकरीबन हमेशा यही मालूम हुआ कि कुछ-न-कुछ कहीं-न-कहीं छोड़ आये। एक दफा मुशाअरेमें जो कुछ मिला, उसे जेबमें रख लिया था। जिनके यहाँ ठहरे थे, उन्होंने जिगर साहबकी देख-भालके लिए अपने किसी अज़ीज़को मुकर्रर कर दिया था। उन्होंने जिगर साहबकी बड़ी खिदमत की। हरवक्त मौजूद रहते और इज़हारे-अकीदत (श्रद्धा-भक्ति प्रकट) करते। जिगर साबको गाफिल समझकर उन्होंने सारे रुपये निकाल लिये। जिगर साहब कहते थे कि वे यह सब देख रहे थे, लेकिन चुप रहे। मैंने पूछा—'यह क्यों ?' बोले—"यह वाकेआ ऐसे वक़्त हुआ, जब मैं जाए-कयामसे रुखसत होकर स्टेशन आ रहा था। बहुत-से लोग भी मौजूद थे। कुछ अच्छा न मालूम हुआ कि वहाँ इस चोरीका ऐलान करूँ और किसी शरीफ आदमीको रुसवा करूँ।'"

जिगर साहबकी सजीदगी और बड़प्पनके बारेमें फ़र्माते हैं—"खिलवत हो या जलवत (एकान्त हो या समूह) जिगर साहबको मैंने साथी शुअराके कलामपर कभी हाशियाआराई (नुक्ताचीनी) करते नहीं पाया। शाइरोंमें उनकी तरह संजीदा और खामोश बैठनेवाला शाइर शायद ही कोई और हो। उनकी ज़बानसे कोई फिकरा निकलेगा भी तो तहसीन और हिम्मत अफ़ज़ाईका।.....ये मुशाअरेमें शुरूसे आखिर तक दोज़ानू नीची नज़र किये हुए बैठे रहते हैं। ख्वाह मुशाअरा कितनी ही देरमें क्यों न खत्म हो।"[1]

---

[1]नकूश शख्सियात नम्बर जनवरी १९५६ पृ० ३१६-३२२।

अब हम 'नकूश'के ग़ज़ल नं० १९५६ से कुछ गज़लें और दे रहे हैं—

बातें हैं दो, मक़सूद है एक।
तेरी तलब या अपनी तलब॥

तर्के-तलब और इत्मीनान।
देख तो मेरा हुस्ने-तलब॥

———

दुनियाके सितम याद, न अपनी ही वफ़ा याद।
अब मुझको नहीं कुछ भी मुहब्बतके सिवा याद॥

क्या लुत्फ़ कि मैं अपना पता आप बताऊँ।
कीजे कोई भूली हुई ख़ास अपनी अदा याद॥

मैं तर्के-रहो-रस्मे-जुनूँ कर ही चुका था।
क्यों आ गई ऐसेमें तेरी लग़ज़िशे-पा याद॥

क्या जानिए क्या हो गया, अरबाबे-जुनूँको।
जीनेकी अदा याद, न मरनेकी अदा याद॥

मुद्दत हुई इक हादिस-ए-इश्कको लेकिन।
अबतक है तेरे दिलके धड़कनेकी सदा याद॥

———

यह दिन बहारके अबके भी रास आ न सके।
कि गुंचे खिल तो गये, खिलके मुसकरा न सके॥

मेरी तबाहिए-दिलपर तो रहम खा न सके।
मगर कभी वे नज़र-से-नज़र मिला न सके॥

यह आदमी है वह परवाना, शमए-दानिशका।
जो रोशनीमें रहे, रोशनीको पा न सके॥

उन्हें सआदते-मंज़िल-रसी नसीब हो क्या।
वह पांव राहे-तलबमें जो डगमगा न सके॥

न जाने आह! कि उन आँसुओंपै क्या गुज़री।
जो दिलसे आँख तक आये मिज़ह तक आ न सके॥

करेंगे मरके वक़ाए-दवाम क्या हासिल।
जो ज़िन्दा रहके मक़ामे-हयात पा न सके॥

ज़हे-ख़ुलूसे-मुहब्बत! कि हादिसाते-जहाँ।
मुझे तो क्या, मेरे नक़्शे-क़दम मिटा न सके॥

मेरी नज़रसे गुरेज़ाँ बहुत रहे लेकिन।
मेरे ख़ुलूसे-मुहब्बतसे बचके जा न सके॥

यह महरो-माह मेरे हम सफ़र रहे बरसों।
फिर इसके बाद मेरी गर्दको भी पा न सके॥

मेरी नज़रने शबे-ग़म उन्हें भी देख लिया।
वोह बेशुमार सितारे कि जगमगा न सके॥

नया ज़माना बनाने चले थे दीवाने।
नई ज़मीन नया आस्माँ बना न सके॥

जेहले-ख़िरदने दिन यह दिखाये।
घट गये इन्साँ, बढ गये साये॥

हाय वह क्योंकर जी बहलाये।
ग़म भी जिसको रास न आये॥

दिलपै कुछ ऐसा वक़्त पड़ा है।
भागे लेकिन राह न पाये॥

झूटी है हर-एक मसर्रत।
रूह अगर तसकीन न पाये॥

हुस्न वही है हुस्न, जो ज़ालिम।
हाथ लगाये हाथ न आये॥

अज़्मे-मुहब्बत, शर्ते-मुहब्बत।
जी है कि ज़ालिम उमड़ा आये॥

नग़्मा वही है नग़्मा, कि जिसको।
रूह सुने और रूह सुनाये॥

राहे-तलब आसान हुई है।
ज़ुल्फ़ो-मिज़ह्के साये-साये॥

कोई यह कह दे गुलशन-गुलशन।
लाख बलायें एक नशेमन॥

क़ामिल रहज़न, क़ातिल रहज़न।
दिल-सा दोस्त न दिल-सा दुश्मन॥

फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन।
लेकिन अपना-अपना दामन॥

उमरें बीतीं सदियां गुज़रीं।
है वही अबतक अक़्लका बचपन॥

इ़श्क़ है प्यारे खेल नहीं है।
इ़श्क़ है कारे-शीशा-ओ-आहन॥

बर्क़-हवादिस अल्लाह-अल्लाह।
झूम रही है शाख़े-नशेमन॥

बैठे हम हर बज़्ममें लेकिन ।
झाड़के उट्ठे अपना दामन ॥

दिल कि मुजस्सिम आईना-सामाँ ।
और वह ज़ालिम आईना-दुश्मन ॥

ख़ैर मिज़ाजे-हुस्नकी या रब !
तेज़ बहुत है दिलकी धड़कन ॥

तुझ-सा हसीं और ख़ूने-मुहब्बत ।
वहम है शायद सुर्ख़िए-दामन ॥

आज न जाने राज़ यह क्या है ?
हिज्रकी रात और इतनी रौशन ॥

आ कि न जाने तुझ बिन कबसे ।
रूह है लाशा, जिस्म है मदफ़न ॥

क़ितअ़

काम अधूरा और आज़ादी ।
नाम बड़े और थोड़े दर्शन ॥

शमअ़ है लेकिन धुन्दली-धुन्दली ।
साया है लेकिन रौशन-रौशन ॥

इ़ल्म ही ठहरा इ़ल्मका बाग़ी ।
अ़क्ल ही निकली अ़क्लकी दुश्मन ॥

हस्तिए-शाइ़र अल्लाह-अल्लाह ।
हुस्नकी मंज़िल इ़श्कका मसकन ॥

रंगीं फ़ितरत, सादा तबीअत।
फ़र्शनशीं और अ़र्श नशेमन॥

काँटोंका भी हक़ है कुछ आख़िर।
कौन छुड़ाए अपना दामन॥

ग़ज़लें

सरापा हक़ीक़त मुजस्सिम फ़साना।
मुहब्बतका आ़लम, जुनूँका ज़माना॥

वह पहले-पहल दोनों जानिब यह आ़लम।
अदा बे तअ़ल्लुक़, नज़र महरमाना॥

नज़र उठते-उठते, नज़र मिलते-मिलते।
धड़कते दिलोंका वह नाज़ुक फ़साना॥

तबीअ़त शगुफ़्ता मगर खोई-खोई।
हर अन्दाज़ दिलकश, मगर बालेहाना॥

वह शेरो-तरन्नुमका पुरकैफ़ मौसम।
वह अश्को-तवस्सुमका रंगीं ज़माना॥

ग़ुरूरे-तजम्मुल मगर ज़ख्म-ख़ुर्दा।
शिकस्ते-मुहब्बत, मगर फ़ातेहाना॥

यह तेरा जमाले कामिल, यह शबाबका ज़माना।
दिले-दुश्मनाँ सलामत, दिले-दोस्ताँ निशाना॥

मुझे इश्ककी सदाकतपै भी शक-सा हो चला है।
मेरे दिलसे कह गई क्या, वह निगाहे नाक़िदाना॥

मेरी ज़िन्दगी तो गुज़री तेरे हिज्रके सहारे।
मेरी मौतको भी प्यारे कोई चाहिए बहाना॥

मैं वह साफ़ ही न कहदूँ जो है फ़र्क़ तुझमें मुझमें।
तेरा, दर्द दर्दे-तनहा, मेरा ग़म, ग़मे-ज़माना॥

मेरे दिलके टूटनेपर है किसीको नाज़ क्या-क्या?
तुझे ऐ 'जिगर' मुबारक यह शिकस्ते-फ़ातेहाना॥

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी नहीं जाती।
बुझा जाता है दिल, चेहरेकी तावानी नहीं जाती॥

सदाकत हो तो दिल सीनोंसे खिचने लगते हैं वाइज़!
हक़ीक़त ख़ुदको मनवा लेती है मानी नहीं जाती॥

जले जाते हैं बढ़-बढ़कर, मिटे जाते हैं गिर-गिरकर।
हुज़ूरे-शमअ़ परवानोंकी नादानी नहीं जाती॥

वोह यूँ दिलसे गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वोह यूँ आवाज़ देते हैं कि पहचानी नहीं जाती॥

मुहब्बतमें इक ऐसा वक़्त भी दिलपर गुज़रता है।
कि आँसू ख़ुश्क हो जाते हैं तुग़यानी नहीं जाती॥

'जिगर' वोह भी ज़े-सर-ता-पा मुहब्बत ही मुहब्बत हैं।
मगर उनकी मुहब्बत साफ़ पहिचानी नहीं जाती॥

अ़जब आ़लम-सा दिलपर छा रहा है।
हसीं जैसे कोई शर्मा रहा है॥

वह ज़ुल्फ़ें दोशपर बिखरी हुई हैं।
जहाने-आर्ज़ू थर्रा रहा है॥

गले मिलकर वह रुख़सत हो रहे हैं।
मुहब्बतका ज़माना आ रहा है॥

वह ख़ुद तस्कीने-ख़ातिर कर रहे हैं।
मगर दिल है कि डूबा जा रहा है॥

तबीअ़त है कि ठहरी जा रही है॥
ज़माना है कि गुज़रा जा रहा है॥

मेरी रूदादे-ग़म वह सुन रहे हैं।
तबस्सुम-सा लबोंपर आ रहा है॥

'जिगर' ही का न हो अफ़साना कोई।
दरो-दीवारको हाल आ रहा है॥



मुहब्बत सुल्ह भी पैकार भी है।
यह शाख़े-गुल भी है तलवार भी है॥

तबीअ़त इश्ककी ख़ुद्दार भी है।
इधर नाज़ुक मिज़ाजे-यार भी है॥

महफ़िलें जिनसे इक दुनिया है नालाँ।
इन्हींसे गरमिए-बाज़ार भी है॥

ग़नीमत है कि इस दौरे-हविसमें।
तेरा मिलना बहुत दुश्वार भी है॥

३० अगस्त १९५७ ई०



'यगाना' चंगेज़ी

[१८८४–१९५६ ई०]

मिर्ज़ा वाजिदहुसैन 'यगाना' चंगेज़खाँके वंशजोंमें-से हैं। आपके पूर्वज ईरानसे भारत आये थे और तत्कालीन सल्तनतकी तरफ़से पटने (अज़ीमाबाद)में कुछ जागीर प्रदान किये जानेपर वहीं बस गये थे। वहीं १८८४ ई०के लगभग आपका जन्म हुआ। उर्दू-फ़ारसीकी शिक्षाके अतिरिक्त १९०३ ई०में आपने मैट्रिक परीक्षा भी पास की। स्कूलमें सदैव प्रथम रहे और वज़ीफ़े, तमग़े, इनाम आदि हमेशा पाते रहे।

शाइरीमें आपको 'शाद' अज़ीमाबादी-जैसे बड़े उस्तादका शिष्य होनेका गौरव प्राप्त हुआ। १९०५ ई०में आप स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे लखनऊ गये थे। वहाँका वातावरण आपको इतना पसन्द आया कि वहीं सकूनत इख़्तियार कर ली और १९१३ ई०में वहींके एक प्रतिष्ठित परिवारकी कन्यासे शादी भी हो गई। उन दिनों आप 'यास' उपनामसे शाइरी करते थे और 'यास' अज़ीमाबादी नामसे प्रसिद्ध थे।

जिन दिनों आप लखनऊ पहुँचे, उन दिनों लखनऊसे 'नासिख़' और 'अमीर मीनाई'का रंग तो उड़ चुका था, मगर 'मीर'-ओ-'ग़ालिब'की ग़मो-दर्दवाली शाइरीका असफल अनुकरण हो रहा था। मर्सियेकी शाइरीका बोल-बाला था। जिसे देखो वही रोने-बिसूरनेकी शाइरीमें

लीन मालूम होता था। यह ग़लत अनुसरण 'यास'को न भाया, 'यास'ने मुशाअ़रोंमें शिरकत फर्माकर और अखबारोंमे निरन्तर लिखकर अपने रगकी धूम मचा दी। आपके कलाममें 'मीर'-ओ-'आतिश'के रगकी पुट होती थी। कहनेका और बयान करनेका अपना निजी अन्दाज़ था। चन्द ही दिनोमें 'यास'का तूती बोलने लगा। लखनवी उस्तादोको यह कब सहन हो सकता था, उन्होने बहुत ज़ोरोंसे मुखालिफत शुरू कर दी। 'यास' इन विरोधोंसे कब दबनेवाले थे। 'यास'ने हार मानना कभी सीखा ही नही। आप स्वभावतः ज़िद्दी, स्वाभिमानी और अहमन्य हैं। अत. आपने डटकर मुकाबिला ही नहीं किया, अपितु वोह दन्दां-शिकन जवाबी हमले किये कि रहे नाम साईंका।

उन्ही दिनो आपका 'नश्तरे-यास' प्रकाशित हुआ तो लखनवी उस्ताद और भी चिराग़-पा हो गये। परिणामस्वरूप कागज़ी जग छिड़ गई। १९१५ ई०मे आपने शाइरी सम्बन्धी एक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया तो दबी आग फिर भडक उठी। लेकिन मिर्ज़ाने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी टेकपर बराबर अडिग रहे।

"नतीजा यह हुआ कि तमाम लखनऊ और सारा अवध एक तरफ हो गया और मिर्ज़ा यगाना एक तरफ। अच्छा खासा महाज़ कायम हो गया। जिसका ज़ोर-शोर तकरीबन बीस सालतक रहा। लखनऊके शुअ़राने मिर्ज़ा यगानाका इस हद्दतक बाईकाट किया कि जिस मुशाअ़रेमे वे जाते थे, उसमे तमाम दूसरे शुअ़रा शिरकत नही करते थे। नतीजा यह हुआ कि लोग मिर्ज़ा यगानाको मुशाअ़रोंमे मदऊ करनेसे एहतराज़ करने लगे। मिर्ज़ा यगानाने तकरीबन १९१५ ई०से मिर्ज़ा गालिबके कलामकी तनकीद (आलोचना) करना शुरू की। इससे उनका मकसद गालिब-परस्तोकी रविशकी इस्लाह थी। मगर नतीजा यह बरामद हुआ कि सारे हिन्दुस्तानके शाइर और अदीब बल्कि यूँ कहिए कुल अहले-ज़ौक मिर्ज़ा यगानासे बेज़ार हो गये। मिर्ज़ा यगानाकी ग़ालिबसे दुश्मनी भी बढ़ती ही गई। ताआँ कि

उन्होने १९३५ ई०मे'गालिव-शिकन'के नामसे एक रिसाला शाया किया[1]"

आपकी जिद और उन दिनोके सघर्षकी एक घटनाका उल्लेख हज़रत शवनम रूमानी अक्तूबर १९५६के 'नक़ूश' पृ० १४५३मे इस प्रकार करते हैं—"मिर्ज़ा यगाना और अज़ीज लखनवीमें हमेशा इख़्तलाफ (मतभेद) रहा। जिस मुशाअ़रेमे दोनो हज़रात होते। यगाना साहव मुसिर(वज़िद) होते कि मै अज़ीजके वाद पढूंगा, और मुख़ालिफ जमाअत(विरोधीदल) 'मअयारे-अदव' (एक साहित्य-सस्था) मुतमन्नी (आर्ज़ूमन्द) होती कि अजीज साहव यगानाके वाद पढे। यह कश-म-कश यहाँतक वढती कि दोनो वगैर गजल पढे उठ जाते और अहले मुशाअरा सर पीटते रह जाते। एक वार सीतापुरके एक वडे मुशाअ़रेमे यही इख़्तिलाफ शुरू हो गया। 'दिल' शाहजहाँपुरीको वानिये-मुशाअ़राने वीचमें पडनेको कहा। लखनऊके एक उम्मी शाइर (अनपढ) शफीक लखनवी भी शरीके-महफ़िल थे। वे विल्कुल गैर जानिवदार (किसी भी दलसे सम्वन्धित न) थे। 'दिल' पहले अराकीने-मअयारे-अदव (उक्त सस्थाके कार्यकर्त्ताओ)के पास गये। उनको समझा-वुझाकर इस वात पर राजी कर लिया कि उनकी जमाअतके सव शुअ़रा पहले पढले। उनके वाद मिर्ज़ा यगाना और फिर 'शफीक' लखनवी। चूंकि शफीक साहव लखनऊके हैं और यगानाके वाद पढेंगे। इसलिए जीत अहले लखनऊकी होगी। फिर आप यगानाके पास गये और उनको समझाया कि आप गज़ल उन लोगोके वाद ही पढेंगे। मगर आपके वाद शफीक लखनवीको पढवा दिया जायगा जो एक अनपढ शाइ़र हैं। उनके आखिरमें पढ़नेमे आपकी कोई तौहीन न होगी। यगानाने भी यह तजवीज़ मान ली।"

इस निरन्तरके विरोव, उपेक्षा, घृणा आदिके कारण मिर्जामें एक विचित्र प्रकारकी प्रतिक्रिया अकुरित हो उठी। आप प्रारम्भमें मिर्ज़ा

---

[1]नक़ूश, अक्तूबर १९५६ पृ० ८९८।

'गालिब'के प्रशंसक थे, किन्तु लखनवी उस्तादोंकी अन्धी श्रद्धा-भक्ति और असफल अनुकरणकी प्रतिक्रिया-स्वरूप आप मिर्ज़ा गालिबके घोर विरोधी बन बैठे। यहाँतक कि मिर्ज़ा ग़ालिब आपके जन्मसे पूर्व ही परलोक सिधार चुके हैं, और उम्रके लिहाज़से भी आपके दादाकी उम्रोंके रहे होंगे। फिर भी आप अपनेको 'गालिब'का चचा अथवा गालिब-शिकन कहने लगे और यह प्रतिक्रिया यहाँतक बढी कि आपने सैंकडो गजलोमे इन शब्दोका प्रयोग किया है, और करते रहते हैं। यथा—

भोण्डापन है मज़ाके-ग़ालिबमें रचा।
मिर्ज़ाका कलाम अपनी नज़रोंमें न जँचा॥

महफिलमें है अब रंगे-'यगाना' ग़ालिब।
वोह कौन 'यगाना'? वही 'ग़ालिब'के चचा॥

'यास'के बजाय अब 'यगाना' उपनामसे शेर कहने लगे। निरन्तरके विरोधोंके कारण लखनऊका वातावरण इतना विषाक्त हो गया कि आप लाहौर चले गये और वहाँ उर्दू-साहित्यके प्रसिद्ध सम्पादकाचार्य तथा आलोचक मौलाना 'ताजवर' नजीबाबादीके साथ साहित्यिक अनुष्ठानमें लग गये। वहाँ भी पजाबियोकी प्रान्तीय भावनाओंके कारण आप स्थिर न रह सके और लखनऊ लौट आना पडा। लखनऊ पहुँचनेपर अहले-लखनऊके पुराने ज़ख्म फिर हरे हो गये, और वे आपको हर तरहसे मिटानेको कटिबद्ध हो गये। आखिर महाराजा किशनप्रसाद 'शाद' प्रधान मन्त्रीके निमन्त्रणपर आप हैदराबाद चले गये और वहाँ किसी ज़िलेमें सब-रजिस्ट्रार बना दिये गये।

मिर्ज़ा 'यगाना' सर्वधर्म समभावी है। साम्प्रदायिकतासे कोसो दूर हैं। फर्माया है—

कृशनका[1] हूँ मैं पुजारी अलीका बन्दा हूँ।
'यगाना' शाने-खुदा देखकर रहा न गया॥

---

[1]शुद्ध नाम कृष्ण।

मिर्ज़ा किसी बाहरी खुदाके क़ायल नही, वह तो अपने मन-मन्दिरके पुजारी हैं। जो ईश्वर अपने घटमें विराजमान है, उसे बाहर खोजना सरासर भूल है—

आपसे बाहर चले हो ढूँढ़ने।
आह! पहला ही क़दम झूठा पड़ा॥

दिखावटी पूजा-उपासनासे आपको बेहद चिढ है—

कलमा पढूँ तो क्यों पढूँ, सबकी नज़रपै क्यों चढूँ?
यादे-ख़ुदा तो दिलसे है, दिलसे ज़बांतक आये क्यों॥

मिर्ज़ा मज़हबी दीवानगीको इन्सानियतके लिए बोझ समझते है—

दुनियाके साथ दीनकी बेगार! अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ जानवर हुआ॥

और पुरुषार्थ छोड़कर जो हाथपर हाथ धरे ईश्वरके भरोसे बैठनेके आदी है, उनके समक्ष ईश्वरकी सर्वशक्तिमानताकी नि सारता बताते हुए फर्माया है—

आईको टाल दे जभी जानें।
दम-ब-ख़ुद है तो फिर ख़ुदा क्या है॥

छैल-छबीले विलासी युवकोपर कितना मीठा व्यग्य किया है—

वक़्त जिसका कटे हसीनोंमें।
कोई मर्दाना काम क्या करता?

यह नौजवानी, यह नामुरादी।
छाई है मुंह पर यह मुर्दनी क्या॥

मिर्ज़ा सबके हितमें अपना हित समझते हैं। वे आपा-धापीके क़ाइल नहीं। यहाँतक कि एक ही नावमें बैठे मुसाफिरोंको डूबते देखकर वे स्वय भी डूब जाना श्रेष्ठ समझते हैं—

मुझे ऐ नाख़ुदा ! आख़िर किसीको मुँह दिखाना है।
बहाना करके तनहा पार उतर जाना नहीं आता॥

महात्मा गांधी जीवनभर हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यका प्रयत्न करते रहे, परन्तु साम्प्रदायिक लोग सदैव अडगा लगाते रहे, इसी भावको मिर्ज़ा यूँ व्यक्त करते हैं—

सुल्ह ठहरी तो है बरहमनसे।
कहीं मज़हब अड़ा न दे कोई टाँग॥

इन्सान, इन्सानके आगे हाथ फैलाये, इस दयनीय स्थितिमें खीजकर मिर्ज़ाको कहना पड़ा—

ख़्वाह प्याला हो या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग॥

ईश्वर और ख़ुदाके नामपर ससारमें जैसे बीभत्स कृत्य हुए हैं, वैसे कार्य नारकीयो, दोज़ख़ियो और दरिन्दोंसे होने सम्भव ही नहीं। धर्म, मज़हबकी रक्षाके लिए जितने मानवोंकी हत्याये होती रही हैं, यदि उन सबकी हड्डियाँ एकत्र की जा सकती तो सुमेरु पर्वतको अपनी इस ऊँचाईका इस कदर गर्व न रहता। ईसाइयोंके रोमन कैथोलिक और प्रोटेसटैण्टोंका पारस्परिक वध, आस्तिकों-द्वारा नास्तिकोंका विध्वन्स, और अहले-इस्लाम-का गैर इस्लामियोंके ख़िलाफ जेहाद, पुराने पोथोंमें पड़े कराह रहे थे कि भारत-विभाजनके वक्त ईश्वर-ख़ुदाके लाडले बेटोंने उनके नामपर जो लाखों मनुष्योंकी बलि दी है और लाखों नारियोंकी जो इस्मतदरी की है,

उसके समक्ष दरिन्दोंकी क्रूरता भी पानी-पानी हो गई। स्वयं खुदा भी यह महसूस करने लगा होगा कि मैंने दुनिया बनाकर घोर अपराध ही किया है—

तखलीके-काएनातके दिलचस्प जुर्मपर।
हँसता तो होगा आप भी यज़दाँ कभी-कभी॥

—अदम

ऐसे ही मज़हबी उन्मादसे तंग आकर मिर्ज़ा 'यगाना'ने अपने किसी मुसलमान दोस्तको[1] कुछ ऐसे शब्द लिख दिये, जो इस्लामके लिए अपमान-जनक समझे गये। बस फिर क्या था? खुदाके बन्दो और रसूलके इन लाडलोंने ७० वर्षके बूढे यगानाको घेर लिया। तारकोलसे मुँह काला करके, जूतोंका हार गलेमे डालकर उनको गधेपर बिठाना चाहा; मगर गधे-को मनुष्योंकी यह हरकत पसन्द न आई, और वह स्वयं शर्माकर भाग खडा हुआ। इस वाकअ़ेसे मज़हबी दीवाने क्या सबक लेते, उनका इन्तिक़ाम और भड़क उठा, और उन्होंने एक और गधेको पकड़कर रिक्शामें जोता और मिर्ज़ा 'यगाना'को उसपर बिठाकर लखनऊभरमें घुमाया गया। थोडी-थोडी दूरपर उन्हे रिक्शापर खडे होनेको मजबूर किया जाता था, ताकि जनता उनपर थूक सके, लानत-मलामत कर सके और यह सब दिनदहाडे उत्तरप्रदेशकी राजधानी लखनऊमे इसी अप्रेल १९५३को पुलिसकी चौकियों के सामने हुआ। मानवताका शव निकलता रहा, सभ्यता बैठी सर पीटती रही, मगर खुदाके बन्दे खुदाको खुश करनेमें मसरूफ रहे।

सत्य बोलनेपर भी अनेक बाधाओ-मुसीबतोंका सामना करना पडता है, यह मिर्ज़ा यगाना खूब जानते थे, जैसा कि उन्होंने वर्षो पहले फर्माया भी था—

---

[1]यह हज़रत मौलवी अब्दुल माजिद साहब दरियाबादी थे। इन्होंने इस प्राइवेट पत्रको अपने अखबारमे प्रकाशित करके इस तरह उछाल दिया कि जनता काबूसे बाहर हो गई।

शामत आ गई आखिर कह गया खुदा लगती।
रास्तीका फल पाता बन्दए-मुकर्रब क्या?

[बारगाहे खुदावन्दीका सबसे बड़ा फरिश्ता खरी बात कहनेपर जन्नतसे निकाल दिया गया। उसने यही कहा था कि 'जिस सरको मैंने तेरे हुजूरमें झुकाया है, उसे आदमे-खाकीके सामने क्योंकर झुका दूं'? कितना उच्च और श्रेष्ठ उपासनाका भाव था, परन्तु खुदा साहब इस उच्च भावनाकी कद्र न कर सके, और तानाशाहीपर उतर आये कि तूने आज्ञा-भंग करके अनुशासन-हीनताका परिचय दिया है और उसे जन्नतसे निकाल दिया। जब फरिश्ते भी सत्य बोलनेपर दण्ड पा सकते हैं तो सर्व-साधारणकी तो बात ही क्या?]

फिर भी न जाने क्यों चूक गये और ईर्ष्यालुओंको व्यर्थमें ही आक्रमण करनेका अवसर दे दिया।

मिर्ज़ा 'यगाना' वृद्धावस्थाके कारण हैदराबादसे आकर अब लखनऊ रहने लगे हैं।

चुना हुआ कलाम

खुदीका[1] नशा चढ़ा आपमें रहा न गया।
खुदा बने थे 'यगाना' मगर बना न गया॥
गुनाहे-जिन्दा-दिली कहिए या दिल-आजारी[2]।
किसीपै हँस लिये इतना कि फिर हँसा न गया॥
समझते क्या थे, मगर सुनते थे तरानए-दर्द।
समझमें आने लगा जब तो फिर सुना न गया॥
पुकारता रहा किस-किसको डूबनेवाला।
खुदा थे इतने, मगर कोई आड़े आ न गया॥

---

[1]अहम्मन्यताका; [2]सताना।

पहले अपनी तो ज़ात पहचाने।
राज़े-कुदरत बख़ाननेवाला ॥
जानकर और होगया अनजान।
हो तो ऐसा हो जाननेवाला ॥
पेटके हल्के लाख बड़मारें।
कोई खुलता है जाननेवाला ?
ख़ाकमें मिलके पाक हो जाता।
छानता क्या है छाननेवाला ॥
दिनको दिन समझे और न रातको रात।
वक़्तकी क़द्र जाननेवाला ॥

क्या ख़बर थी दिल-सा शाहंशाह आख़िर एक दिन।
इश्क़के हाथों गदाओ-का-गदा[1] हो जायगा ॥

किस दिले-बेक़रारको तूने यह वलवला दिया।
देना न देना एक है, ज़र्फ़से[2] जब सिवा दिया ॥
हुस्न चमक गया तो क्या, बूए-वफ़ा तो उड़ गई।
इस नई रोशनीने आह दिलका कँवल बुझा दिया ॥

ज़िन्दा रक्खा है सिसकनेके लिए।
वाह अच्छे दोस्तसे पाला पड़ा ॥

किधर चला है ? इधर एक रात बसता जा।
गरजनेवाले गरजता है क्या, बरसता जा ॥
रुला-रुलाके ग़रीबोंको हँस चुका कलतक।
मेरी तरफ़से अब अपनी दसाएँ हँसता जा ॥

---

[1]निकृष्ट; [2]आवश्यकतासे अधिक, पात्रताके सिवा।

शरबतका घूँट जानके पीता हूँ ख़ूनेदिल।
ग़म खाते-खाते मुँहका मज़ातक बिगड़ गया॥

इसी फ़रेबने मारा कि कल है कितनी दूर।
इस आज-कलमें अबस[1] दिन गँवाये हैं क्या-क्या?
ख़ुशीमें अपने कदम चूम लूँ वो ज़ेबा[2] है।
वोह लग्ज़िशोंपै[3] मेरी मुसकराए है क्या-क्या॥

बस एक नुक्तए-फ़र्ज़ीका[4] नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीकका[5] पता न चला॥
उमीदो-बीमने[6] मारा मुझे दुराहेपर।
कहाँके दैरो-हरम[7]? घरका रास्ता न मिला॥

मुझे दिलकी ख़तापर 'यास'! शरमाना नहीं आता।
पराया जुर्म अपने नाम लिखवाना नहीं आता॥
बुरा हो पाए-सरकशका[8] कि थक जाना नहीं आता॥
कभी गुमराह होकर राहपर आना नहीं आता॥
मुसीबतका पहाड़ आख़िर किसी दिन कट ही जायेगा।
मुझे सर मारकर तेशेसे मर जाना नहीं आता॥
दिले-बेहौसला है इक ज़रा-सी ठेसका मेहमाँ।
वह आँसू क्या पियेगा जिसको ग़म खाना नहीं आता॥
सरापा राज़[9] हूँ मैं क्या बताऊँ कौन हूँ, क्या हूँ?
समझता हूँ मगर दुनियाको समझाना नहीं आता॥

गिला[10] किसे है कि कातिलने नीमजाँ[11] छोड़ा।
तड़प-तड़पके निकालूँगा हौसला दिलका॥

---

[1]व्यर्थ, [2]मुनासिब; [3]लड़खड़ानेपर, [4]कल्पना-बिन्दुका, [5]खोजके लक्ष्यका, [6]आशा-निराशाने, [7]काशी-काबा; [8]उद्दण्ड, उच्छृंखल पाँवोंका; [9]भेदोंका भण्डार; [10]शिकायत, [11]अर्द्धमृतक।

ख़ुदा बचाये कि नाज़ुक हैं उनमें एक-से-एक।
तुनक-मिज़ाजोंसे ठहरा मुआमला दिलका॥
किसीके हो रहो अच्छी नहीं यह आज़ादी।
किसीकी ज़ुल्फ़से लाज़िम है सिल्सिला दिलका॥
पियाला ख़ाली उठाकर लगा लिया मुँहसे।
कि 'यास' कुछ तो निकल जाय हौसला दिलका॥

परवाने कर चुके थे सर-अंजामे-ख़ुदकुशी[1]।
फ़ानूस आड़े आ गया, तक़दीर देखना॥

चिराग़े-ज़ीस्त[2] बुझा दिलसे इक धुआँ निकला।
लगाके आग मेरे घरसे मेहमाँ निकला॥

तड़पके आब्ला-पा[3] उठ खड़े हुए आख़िर।
तलाशे-यारमें जब कोई कारवाँ निकला॥
लहू लगाके शहीदोंमें हो गये दाख़िल।
हविस तो निकली मगर हौसला कहाँ निकला?
लगा है दिलको अब अंजामे-कारका खटका।
बहारे-गुलसे भी इक पहलूए-ख़िज़ाँ निकला॥
ज़माना फिर गया चलने लगी हवा उल्टी।
चमनको आग लगाके जो बाग़बाँ निकला॥
कलामे-'यास'से दुनिया में फिर इक आग लगी।
यह कौन हज़रते 'आतिश'का हमज़बाँ निकला?

हवाए-तुन्दमें[4] ठहरा न आशियाँ अपना।
चिराग़ जल न सका ज़ेरे-आस्माँ अपना॥

---

[1]आत्महत्याकी व्यवस्था; [2]जीवन-दीप; [3]पाँवके छाले; [4]तेज हवामें।

जरसने[1] मुज़दए-मंज़िल[2] सुनाके चौंकाया।
निकल चला था दबे पाँव कारवाँ अपना॥
ख़ुदा किसीको भी यह ख़्वाबे-बद न दिखलाये।
क़फ़सके सामने जलता है आशियाँ अपना॥

मुहब्बते-वाइज़में भी अँगड़ाइयाँ आने लगीं।
राज़ अपनी मैकशीका क्या कहें क्योंकर खुला॥

रोशन तमाम काबा-ओ-बुतख़ाना हो गया।
घर-घर जमाले-यारका अफ़साना हो गया॥

दयारे-बेख़ुदी है अपने हक़में गोशए-राहत।
ग़नीमत है घड़ीभर ख़्वाबे-ग़फ़लतमें बसर होना॥
दिले-आगाहने[3] बेकार मेरी राह खोटी की।
बहुत अच्छा था अंजामे-सफ़रसे[4] बेख़बर होना॥

लाश कम्बख़्तकी काबेमें कोई फिकवा दे।
कूचए-यारमें क्यों ढेर हो बेगानेका[5]॥

ज़ीस्तके[6] है यही मज़े वल्लाह।
चार दिन शाद[7], चार दिन नाशाद[8]॥
सब्र इतना न कर कि दुश्मनपर।
तल्ख़[9] हो जाय लज़्ज़ते-बेदाद[10]॥

आप क्या जानें मुझपै क्या गुज़री।
सुबहदम देखकर गुलोंका निखार॥

---

[1]यात्रीदलके ऊँटोंकी घण्टीकी आवाज़ने; [2]यात्राका अन्त होनेकी ख़ुशख़बरी, [3]जानकार दिलने; [4]यात्राके परिणामसे; [5]ग़ैरका, शत्रुका; [6]ज़िन्दगीके; [7]ख़ुश; [8]नाख़ुश; [9]कड़ुवाहट आ जाये; [10]अत्याचारके आनन्दमें।

इतने देख लो हसीनोंको।
न बनाना कभी गलेका हार ॥
जलते हो गालोंसे भटकते हो।
ऐसी पहलूमें क्यों न आए प्यार ॥
तू भी जी और मुझे भी जीने दे।
जैसे आबाद गुलसे पहलू-ए-ख़ार ॥
बेनियाज़ी भली कि बेअदबी।
[illegible] ज़बाँसे शिकवए-यार ॥
बन्दगीका सबूत दूँ क्योंकर।
इससे बेहतर है कीजिए इनकार ॥
ऐसे दो दिल भी कम मिले होंगे।
न [illegible] हुई न जीत न हार ॥

[illegible] दिल हो गम टूटे हुए, दिलमें पनाह।
दर्दने [illegible] दिले-[illegible]-ओ-मुल्क्लां देखकर ॥

गर [illegible] मुश्किल है तड़पना महल है।
[illegible] थमकर थाम कर लेना है जानाँ देखकर ॥

ऐसी [illegible] आलिया! फिर न हो निज़ामती।
[illegible] न [illegible] देखकर ॥
[illegible] लिए गये काँटोंको गोदने हुए।
[illegible] आँखें न कुछ [illegible] देखकर ॥

[illegible] बिना [illegible], आख़िर इसका मतलब क्या?
[illegible] है [illegible] ऐसा [illegible] क्या?

[illegible]

ज़मीं करवट बदलती है बलाए-नागहाँ होकर।
अजब क्या सरपै आए पाँवकी ख़ाक आस्माँ होकर॥
उठो ऐ सोनेवालो! सरपै धूप आई क़यामतकी।
कहीं यह दिन न ढल जाये नसीबे-दुश्मनाँ होकर॥
अरे ओ जलनेवाले! काश जलना ही तुझे आता।
यह जलना कोई जलना है कि रह जाए धुआँ होकर॥

पसीना तक नहीं आता, तो ऐसी ख़ुश्क तौबा[1] क्या?
नदामत[2] वोह कि दुश्मनको तरस आ जाए दुश्मनपर॥

उस तरफ़ सात आसमाँ और इस तरफ़ इक नातवाँ[3]।
तुमने करवट तक न ली दुनियाको बरहम[4] देखकर॥

ख़ुदा जाने अजलको[5] पहले किसपर रहम आयेगा?
गिरफ़्तारे-क़फ़सपर[6] या गिरफ़्तारे-नशेमनपर[7]॥

मजाल थी कोई देखे तुम्हें नज़र भरकर।
यह क्या है आज पड़े हो भले-दले क्योंकर॥

कोई क्या जाने बाँकपनके यह ढंग।
सुलह दुश्मनसे और दोस्तसे जंग॥
क्या ज़माना था कैसे दुश्मन थे?
रातभर सुलह और दिनभर जंग॥
संगे-दिलको[8] बना दूँ देवता मैं।
आप क्या जानें बन्दगीके ढंग?

फिरते हैं भेसमें हसीनोंके।
कैसे-कैसे ठकैत थाँग-को-थाँग॥

---

[1] गुनाह न करनेकी प्रतिज्ञा; [2] प्रायश्चित्तकी शर्म; [3] कमज़ोर; [4] रुष्ट; [5] मौतको; [6] पिंजरेमें बन्द पक्षीपर; [7] घोंसलेमें गिरफ़्तार पक्षीपर; [8] पत्थर-हृदयको।

आह ! यह बन्दए-ग़रीब आपसे लौ लगाये क्यों ?
आ न सके जो वक़्तपर, वक़्तपै याद आये क्यों ?*

दीदकी[1] इल्तिजा[2] करूँ ? तिश्ना[3] ही क्यों न जान दूँ।
परदए-नाज़[4] ख़ुद उठे, दस्ते-दुआ उठायें क्यों ?

बदल न जाये ज़मानेके साथ नीयत भी।
सुना तो होगा जवानीका एतबार नहीं॥
जो ग़म भी खायें तो पहले खिलायें दुश्मनको।
अकेले खायेंगे ऐसे तो हम गँवार नहीं॥

नतीजा कुछ भी हो लेकिन हम अपना काम करते हैं।
सवेरे ही से दूरन्देश फ़िक्रे-शाम करते हैं॥

दावरे-हश्र[1] होशियार, दोनोंमें इम्तियाज़[2] रख।
बन्दए-नाउम्मीद[3] और बन्दए-बेनियाज़में[4]॥
यादे-ख़ुदाका वक़्त भी आयेगा कोई या नहीं ?
यादे-गुनाह कब तलक शामो-सहर नमाज़में ?

नाख़ुदा[5] ! कुछ ज़ोरे-तूफ़ाँ-आज़माई भी दिखा।
फ़िक्रे-साहिल छोड़ लंगर डाल दे मँझधारमें॥

---

*इसी मज़मूनपर असर लखनवीका यह अमर शेर भी सुनें—

हम उसीको ख़ुदा समझते हैं।
जो मुसीबतमें याद आ जाये॥

[1]दर्शनोंकी; [2]प्रार्थना; [3]प्यासा, निराश; [4]प्रेयसीके नखरेका परदा; [1]प्रलयके दिन न्याय करनेवाले, ईश्वर; [2]भेद-अन्तर, परख; [3]असफल भक्तमें, [4]अभिलाषा न रखनेवाले भक्तमें; [5]नाविक।

'यास' ! गुमराहीसे[1] अच्छी ज़हमते-वामान्दगी[2] ।
डाल लो ज़ंजीर कोई पाए-कज-रफ़्तारमें[3] ॥

पैवन्दे-ख़ाक[4] होनेका अल्लाहरे इश्तियाक[5] ।
उतरे हम अपने पाँवसे अपने मज़ारमें ॥
शर्मिन्दए-कफ़न न हुए आसमाँसे हम ।
मारे पड़े हैं सायए-दीवारे-यारमें ॥
कहते हो अपने फ़ेल्का मुख़्तार है बशर[6] ।
अपनी तो मौत तक न हुई इख़्तियारमें ॥
दुनियासे 'यास' जानेको जी चाहता नहीं ।
वल्लाह क्या कशिश है इस उजड़े दयारमें[7] ॥

मौत माँगी थी ख़ुदाई तो नहीं माँगी थी ।
लो दुआ कर चुके अब तर्के-दुआ करते हैं ॥

गलेमें बाहें डाले चैनसे सोना जवानीमें ।
कहाँ मुम्किन फिर ऐसा ख़्वाब देखूँ ज़िन्दगानीमें ॥
ग़नीमत जान उस कूचेमें थककर बैठ जानेको ।
किसे दमभर मिला आराम दौरे-आसमानीमें ॥

यकसाँ कभी किसीकी न गुज़री ज़मानेमें ।
यादश बख़ैर बैठे थे कल आशियानेमें ॥
सदमा दिया तो सब्रकी दौलत भी देगा वोह ।
किस चीज़की कमी है सख़ीके ख़ज़ानेमें ॥

---

[1] भटकनेसे; [2] थकावटकी तकलीफ़; [3] टेढ़ी रफ़्तारवाले पाँवोंमें, [4] ज़मीनमें मिलनेका ; [5] चाव, शौक, ; [6] इन्सान ; [7] बस्ती, देश, संसारमें ।

अफसुर्दा[1] खातिरोंको खिजाँ क्या, बहार क्या ?
कुंजे-कफसमें मर रहे या आशियानेमें ॥
हम ऐसे बदनसीब कि अबतक न मर गये ।
आँखोंके आगे आग लगी आशियानेमें ॥
दीवाने बनके उनके गलेसे लिपट भी जाओ ।
काम अपना कर लो 'यास' बहाने-बहानेमें ॥

हिजाबे-नाज़[2] बेजा 'यास' जिस दिन बीचमें आया ।
उसी दिनसे लड़ाई ठन गई शेखो-बरहमनमें ॥

तौबा भी भूल गये इ़श्क़में वोह मार पड़ी ।
ऐसे औसान गये हैं कि खुदा याद नहीं ॥
क्या अ़जब है कि दिले-दोस्त हो मदफन[3] अपना ।
कुश्तए-नाज़[4] हूँ मैं कुश्तए-बेदाद[5] नहीं ॥

खूनके घूँट बलानोश[6] पिये जाते हैं ।
खैर साक़ीकी मनाते हैं जिये जाते हैं ॥
एक तो दर्द मिला उसपै यह शाहाना मिज़ाज ।
हम गरीबोंको भी क्या तोहफे दिये जाते हैं ॥
दिल है पहलूमें कि उम्मीदकी चिन्गारी है ।
अबतक इतनी है हरारत कि जिये जाते हैं ॥

तो क्या हमीं हैं गुनहगार, हुस्ने-यार नहीं ?
लगावटोंका गुनाहोंमें क्या शुमार नहीं ?

---

[1]बुझे दिलोंकी; [2]प्रेयसीका शर्मीलापन; [3]कब्र; [4]प्यारेके द्वारा मारा हुआ; [5]अत्याचारोंसे मारा हुआ नहीं; [6]अत्यधिक पीनेवाले (शराबी) ।

खटका लगा न हो तो मज़ा क्या गुनाहका।
लज़्ज़त ही और होती है चोरीके मालमें॥
अल्लाह कफ़समें आते ही क्या मत पलट गई।
आख़िर हमीं तो हैं कि फड़कते थे जालमें॥

मेहराबोंमें सिज्दा वाजिब, हुस्नके आगे सिज्दा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै ख़ुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥
दिलसे ख़ुदाका नाम लिये जा, काम किये जा दुनियाका।
काफ़िर हो, दीदार हो, दुनियादार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

सिज्दा वह क्या कि सरको झुकाकर उठा लिया।
बन्दा वोह है जो बन्दा हो, बन्दानुमा न हो॥
उम्मीदे-सुलह क्या हो, किसी हकपरस्तसे।
पीछे वोह क्या हटेगा, जो हदसे बढ़ा न हो॥

मज़ा जब है कि रफ़्ता-रफ़्ता उम्मीदें फलें-फूलें।
मगर नाज़िल कोई फ़ज़्ले-इलाही नागहाँ क्यों हो॥
समझमें कुछ नहीं आता पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल?
नमाज़ोंका है कुछ मतलब तो परदेसी ज़बाँ क्यों हो?

दिल अपना जलाता हूँ, काबा तो नहीं ढाता।
और आग लगाते हो, क्यों तुहमते-बेजाते॥

बाज़ आ साहिलपै गोते खानेवाले बाज़ आ।
डूब मरनेका मज़ा दरियाए-बेसाहिलमें है॥

मुफ़लिसीमें मिज़ाज शाहाना।
किस मरज़की दवा करे कोई॥

हँस भी लेता हूँ ऊपरी दिलसे।
जो न बहले तो क्या करे कोई॥

न जाने क्या हो यह दीवाना जिस जगह बैठे।
ख़ुदीके[1] नशेमें कुछ अनकही न कह बैठे॥

कोई ज़िद थी या समझका फेर था।
मन गये वोह मैंने जब उल्टी कही॥
शक है काफ़िरको मेरे ईमानमें।
जैसे मैंने कोई मुँह देखी कही॥
क्या ख़बर थी यह ख़ुदाई और है।
हाय! क्यों मैंने ख़ुदा लगती कही॥

ताअ़त[2] हो या गुनाह[3] पसे-पर्दा ख़ूब है।
दोनोंका मज़ा जब है कि तनहा[4] करे कोई॥

बन्दे न होंगे, जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सिज्दा करे कोई?

इतना तो जिन्दगीका कोई हक़ अदा करे।
दीवानावार हालपै अपने हँसा करे॥

ज़माना ख़ुदाको ख़ुदा जानता है।
यही जानता है तो क्या जानता है॥
वोह क्यों सर खपाये तेरी जुस्तजूमें[5]?
जो अंजामे-फ़िक्रे-रसा[6] जानता है॥
ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥
वोह क्यों फूल तोड़े; वोह क्यों फूल सूँघे?
जो दिलका दुखाना बुरा जानता है॥

---

[1]अहमन्यताके; [2]उपासना; [3]पाप, जुर्म; [4]अकेले; [5]तलाशमें, चाहतमें; [6]मिलापके प्रयत्नका परिणाम।

क्यों होशमें फिर आया, क्यों हाथ मल रहा है ?
हवसे गुज़रनेवाले तेरी यही सज़ा है ॥
मंज़िलकी फ़िक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ ।
पीछे न फिरके देखूँ काबा भी हो तो क्या है ॥

हासिले-फ़िक्रे-नारसा[1] क्या है ।
तू ख़ुदा बन गया बुरा क्या है ॥
कैसे-कैसे ख़ुदा बना डाले ।
खेल बन्देका है ख़ुदा क्या है ॥
दर्दे-दिलकी कोई दवा न हुआ ।
या इलाही ! यह माजरा क्या है ॥
नूर ही नूर है कहाँका ज़ुहूर ।
उठ गया पर्दा अब रहा क्या है ॥
रहने दे हुस्नका ढका पर्दा ।
वक़्त-बेवक़्त झाँकता क्या है ॥

यहींसे सैर कर लो 'यास' इतनी दूर क्यों जाओ ।
अ़दम-आबादका[2] डांडा मिला है कूए-क़ातिलसे ॥

गला न काट सके अपना बाये[3] नाकामी ।
पहाड़ काटते हैं रोज़ो-शब मुसीबतके ॥

मौत आई आने दीजिए परवा न कीजिए ।
मंज़िल है ख़त्म सिज्दए-शुकराना कीजिए ॥
दीवानावार दौड़के कोई लिपट न जाए ।
आँखोंमें आँख डालके देखा न कीजिए ॥

---

[1]न पहुँचपानेके सोचका परिणाम; [2]असार संसारका, [3]अफ़सोस ।

क्या कोई पूछनेवाला भी अब अपना न रहा।
दर्दे-दिल रोने लगे 'यास' जो बेगानोंसे॥

पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोजमें इन्साँ हो जाय॥
आगमें हो जिसे जलना तो वोह हिन्दू बन जाय।
ख़ाक़में हो जिसे मिलना वोह मुसलमाँ हो जाय॥
नशए-हुस्नको इस तरह उतरते देखा।
ऐबपर अपने कोई जैसे पशेमाँ हो जाय॥

मज़ा गुनाहका जब था कि बा-वज़ू करते।
बुतोंको सिज्दा भी करते तो क़िब्ला-रू करते॥

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म दामनसे पहले आस्तीं होती॥

जैसे दोज़ख़की हवा खाके अभी आया है।
किस क़दर वाइज़े-मक्कार डराता है मुझे॥
जलवए-दारो-रसन अपने नसीबोंमें कहाँ?
कौन दुनियाकी निगाहोंपै चढ़ाता है मुझे॥

सुलहजूईने गुनहगार मुझे ठहराया।
जुर्म साबित जो किया चाहो तो मुश्किल हो जाय॥

नाख़ुदाको नहीं अबतक तहे-दरियाकी ख़बर।
डूबकर देखे तो बेगानए-साहिल हो जाय॥

एक ही सिज्दा किया दूसरेका होश कुजा[1]।
ऐसे सिज्देका यह अंजाम कि बातिल[2] हो जाय॥

---

[1]कहाँ; [2]गलत, नहींके बराबर।

न इन्तक़ामकी आदत न दिल दुखानेकी।
बदी भी कर नहीं आती मुझे कुजा नेकी ?

अल्लाहरे बेताबिए-दिल वस्लकी शबको।
कुछ नींद भी आँखोंमें है कुछ मैका असर भी॥

वोह कश-म-कशे-ग़म है कि मैं कह नहीं सकता।
आग़ाज़का[1] अफसोस और अंजामका[2] डर भी॥

कोई बन्दा इश्कका है कोई बन्दा अक़्लका।
पाँव अपने ही न थे क़ाबिल किसी ज़ंजीरके॥

शैतान-का-शैतान, फरिश्ते-का-फरिश्ता।
इन्सानकी यह बुलअजबी याद रहेगी॥

दर्देसर था सिज्दए-शामोसहर मेरे लिए।
दर्देदिल ठहरा दवाए-दर्देसर मेरे लिए॥
दर्दे दिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
जिन्दगी फिर क्यों हुई है, दर्देसर मेरे लिए॥
फितरते-मजबूरको अपने गुनाहोंपै है शक।
वा[3] रहेगा कबतलक तौबाका दर मेरे लिए ?

हँसीमें लग़ज़िशे-मस्ताना उड़ गई वल्लाह।
तो बेगुनाहोंसे अच्छे गुनाहगार रहे॥
ज़माना इसके सिवा और क्या वफा करता।
चमन उजड़ गया काँटे गलेका हार रहे॥

ऐसी आज़ाद रूह इस तनमें।
क्यों पराये मकानमें आई॥

---

[1]शुरुआतका; [2]परिणामका; [3]खुला हुआ।

बात अधूरी मगर असर दूना।
अच्छी लुकनत[1] जबानमें आई॥
आँख नीची हुई अरे यह क्या।
क्यों गरज़ दरमियानमें आई॥
मैं पयम्बर नहीं 'यगाना' सही।
इससे क्या कस्र[2] शानमें आई?

कीमया-ए-दिल क्या है, खाक है, मगर कैसी?
लीजिए तो मँहगी है, बेचिए तो सस्ती है॥
खिज़्रे-मंज़िल अपना हूँ, अपनी राह चलता हूँ।
मेरे हालपर दुनिया क्या समझकर हँसती है॥

बन्दा वोह बन्दा जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥
शबे-उम्मीद कट गई लेकिन—
ज़िन्दगी अपनी मुख्तसर न हुई॥

सलामत रहें दिलमें घर करनेवाले।
इस उजड़े मकाँमें बसर करनेवाले॥
गलेपै छुरी क्यों नहीं फेर देते।
असीरोंको बेबालो-पर करनेवाले॥
खड़े है दुराहेपै दैरो-हरमके।
तेरी जुस्तजूमें सफर करनेवाले॥
कुजा सेहने-आलम, कुजा कुंजे-मरकद।
बसर कर रहे हैं बसर करनेवाले॥

जून १९५३ ई०]

---

[1]तुतलाहट; [2]कमी, छोटापन।

द्वितीय संस्करणके लिए

मिर्ज़ा यगाना स्वाभिमानी और अपनी आन-बानके धनी थे। टूट जाना तो उन्हें मंजूर हुआ, मगर लचकना उन्हें कभी न आया। हैदराबाद-जैसी रियासतमें जहाँ न जाने कितने शाइर और अदीब मालामाल होते रहे, मिर्ज़ा यगाना वहाँ सब रजिस्ट्रारीकी कुर्सीसे ऊपर न उठे। बक़ौल किसीके—

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए।
मैं जा ही देखता तेरी महफ़िलमें रह गया॥

और कुर्सीसे ऊपर उठते भी कैसे? वे अपने अफ़सरोंसे कभी दबकर नहीं रहे। उनको तुर्की-ब तुर्की जवाब देते रहे। सैयद आज़महुसेन साहब लिखते हैं—

"सन् १९४२ ई०में जबकि मिर्ज़ा यगानाकी मुलाज़िमत ५५ सालकी बिनापर ख़त्म होनेवाली थी। प्रिन्स मुअज़्ज़मजाह बहादुर (युवराज)ने मिर्ज़ासे ख़ुद फ़र्माया कि आप वज़ीफ़े (पेन्शन)से पहले छ. महीनेकी ब-तनख़्वाह रुख़सत लेकर मेरे पास क्यों नहीं आ जाते? प्रिन्सकी यह तजवीज़ सुनकर मिर्ज़ा साहब बहुत घबराये कि यह तो वही बात कह रहे हैं जो मुझसे कभी मुम्किन नहीं। यानी दरबारदारी। मिर्ज़ाने कोई जवाब न दिया और ख़ामोश रहे। आख़िर मुलाज़िमतसे सुबक दोश हो गये, मगर प्रिन्सकी दरबारदारी क़बूल नहीं की।"[1]

यगाना साहबके परिचयमें पिछले पृष्ठोंमें मज़हबी दीवानों-द्वारा किये गये उनके अपमानका उल्लेख पढ़ा होगा। मगर यगानाने उसे अपना अपमान नहीं समझकर, किस रूपमें समझा; यह नक़ूशके सम्पादक हज़रत मुहम्मद तुफ़ैलकी ज़बाने-मुबारकसे सुनिए, जो भारत-विभाजनके बाद नक़ूशके संस्मरण अंक निकालनेकी तैयारीके सम्बन्धमें भारत

---

[1] नक़ूश अक्तूबर १९५६ पृ० ८५९।

आये थे। उसी सिल्सिलेमे यगाना साहबसे मिले तो उस मुलाकातका उल्लेख मार्च १९५६के नकूशमे इस प्रकार किया है—

"यगाना उखड़ती हुई सासोमे हड्डियोका ढाँचा एक कमरेमे बन्द, चन्द टूटी-फूटी और बेतरतीब-सी चीजोकी मौजूदगीमे मिर्जा साहब एक चारपाईपर बैठे बाते करते रहे। अपने बा-कमाल शाइरको यूँ खस्ताहाल देखकर बडा सद्मा हुआ।"

उनको इस हालततक पहुँचानेमें ज्यादातर उनकी अपनी ही कोशिशोको दख़्ल है। वे इस वक्त भी 'ग़ालिब'के बुरी तरह रकीब बने बैठे थे और ग़ालिबकी शाइरीको ज़ेहनी आवारगी (मानसिक उन्माद)का दर्जा देते थे। 'इकबाल'को सिरेसे शाइर ही नही मानते थे।

मेरा तो ख़्याल यह है कि मुद्दतसे अपने हालातके कतई नामुआफिक़ होनेकी वजहसे अपना जेहनी तवाज़ुन (मानसिक सन्तुलन) खो ही चुके थे। जभी वे कभी तो खुदापर बरसते थे, कभी ग़ालिबको आवारा शाइर कहते थे और कभी इकबालकी अजमतके मुन्किर बनते थे। इन कमज़ोरियोके बावजूद उर्दू-गजलमे अपने स्टाइलके तनहा मालिक।

बैठे-बैठे हँसने लगे और फिर मुझसे पूछा—"आपने मेरा जुलूस देखा था ?"

"कैसा जुलूस ?"

"अजी वही, जिसमे मुझे जूतोके हार पहिनाये गये थे। मेरा मुँह भी काला किया गया था और गधेपर सवार करके मुझे शहरभरमे घुमाया गया था।"

"अल्लाहका शुक्र है कि मैंने वह जुलूस नही देखा ?"

"वाह साहब, वाह ! आपने तो ऐसे अल्लाहका शुक्र अदा किया है, जैसे कोई घटिया बात हो गई हो। सोचो तो सही कि आख़िर करोड़ो आदमियोमे-से सिर्फ मुझीको अपनी शाइरीकी वजहसे इस एज़ाज

(सत्कार)का मुस्तहक (अधिकारी) क्यों समझा गया ? जबकि यह ग़ालिबतकको नसीब न हुआ, मीरतकको नसीब न हुआ।"

मैं चाहता था कि मिर्ज़ा साहब इस तकलीफदेह क़िस्सेको यहीं खत्म कर दें। मगर वे मज़े ले-लेकर बयान कर रहे थे, जैसे उन्होंने कोई बहुत बड़ा कारनामा सरअंजाम दिया हो और उसके बदले यह गिरांकद्र इनाम (बेशकीमती प्रतिष्ठित पारितोषिक) पाया हो।

यह वाक़ेआ बयान करनेके बाद फौरन दो-ग़ज़लाके मूडमें आ गये। "जी हाँ जनाब आपके लाहौरमें भी गिरफ्तार हुए थे।"

"वह किस्सा क्या था ?"

"जनाब किस्सा यह था कि मिर्ज़ा यगाना चगेजी यह ने करांचीका पासपोर्ट लेकर और लाहौर पहुँचकर अपने एक दोस्तके साथ पंजाबसे निकलकर सरहद पहुँच गये थे। वापिसीपर गिरफ्तार कर लिया गया।" [एकदम जमासे (बहुवचनसे) वाहिदके सीगे (एक वचनके सम्बोधन) पर आ गये], इक्कीस रोज़ जेलमें बन्द रहा। हथकड़ी लगाकर अदालतमें लाया गया। पहिली पेशीपर मजिस्ट्रेट साहबने नाम पूछा। मैंने बढ़ी हुई दाढ़ीपर हाथ फेरकर बड़ी शानसे बताया—"यगाना" साथ खड़े हुए एक वकील साहबने बड़ी हैरतसे मुझसे सवाल किया—"यगाना चगेजी ?'

"जी हाँ जनाब"।

यह सुनते ही मजिस्ट्रेट साहबने मेरी रिहाईका हुक्म सादिर फर्मा दिया। जब रिहा हो गया तो जाता किधर ? और परेशान हो गया। मजिस्ट्रेट साहबने मेरी परेशानीको भाँप लिया। मैंने उनसे अर्ज़ किया—"जनाब मेरे तमाम रुपये तो थानेवालोंने जमा कर लिये थे। अब मुझे वे दिलवा दीजिए, ताकि यहाँसे करांची जा सकूँ।" उन्होंने कहा—"दरख्वास्त लिख दीजिए'। मेरे पास फूटी कौड़ी न थी। कागज़ कहाँसे लाता और कैसे दरख्वास्त लिखता ? इसपर वन्दमाल अफ्सर साहबने एक आना दिया। और मैंने कागज़ खरीदकर दरख्वास्त लिखी, जिसपर मुझे फौरन रुपये

मिल गये।" ·····और हाँ आप भी लाहोर जाकर अब यह कहेंगे कि यगानासे मिले थे। आप यगानासे कहाँ मिले हैं? यगानाको गोश्त-पोस्तके ढाँचेमे देखना गलत है। यगानाको उसके शेरोमे देखना होगा। यगानाको इस टूटी चारपाईपर देखनेके बजाय उस मसनदपर देखना होगा, जिसपर वह आजसे पचास बरस बाद बिठाया जायेगा।"

इस सस्मरणके अन्तमे तुफ़ैल साहब लिखते है—"मुझे यह इल्म (ज्ञान) था कि मै एक ऐसे साहबे-फनकी खिदमतमे हाज़िर हूँ, जिसपर मुझे फख्र होना चाहिए। काश ज़माना उनका साथ देता और वे अपने ज़ेहनकी गलत रविशसे बच निकलते।

इकेहरा बदन, चपटी नाक, काला रग, क्लीन शेव, भोण्डी शक्लो-सूरतवालेका एक खूबसूरत शेर यह भी है—

उम्मीदो-बीमने मारा मुझे दोराहे पर।
कहाँके दैरो-हरम, घरका रास्ता न मिला॥

हमारे भारतमे सरकार-विरोधी कार्योंके सम्बन्धमें लाखो मनुष्योको कारावास मिला है और भविष्यमें भी मिलता रहेगा। चन्द दिनोके कारावासके उपलक्षमे अनगिनतोने जेल जाते और आते हुए जुलूस निकलवाये है। कीमती गजरोसे गले सजाये है। पत्र-पत्रिकाओमें फोटो छपवाये है। दूध-मक्खन खाते और अनेक सुविधा पाते हुए भी जेल अधिकारियोंसे सघर्ष किये है और अखबारो-द्वारा रोष प्रकट किया है। उपलक्षमें बड़े-बड़े ओहदे प्राप्त किये है, परन्तु कोई सीनेपर हाथ रखकर कह सकता है कि सत्यकी खातिर यगाना-जैसा घोर अपमान सहनेपर भी, वह यगाना-जैसी खन्दाँ पेगानीसे ज़िक्र कर सकता था?

समुद्र मथनसे प्राप्त हुए रत्नोकी चाहमे तो सभी रहते है, परन्तु हलाहल पीनेवाला विरला ही होता है। अफसोस कि यगाना साहबका

७२ वर्षकी आयुमें ९ फरवरी १९५६ ई० को इन्तकाल हो गया, और हमेशाके लिए वे इस संघर्षशील दुनियासे निजात पा गये।

२ सितम्बर १९५७ ई०]

यगाना साहबके कलामका चयन उनके निम्न ग्रन्थोंसे किया गया है—

१—गंजीना—प्रकाशक, क़ौमी दारुल इशाअत लाहौर,

प्रकाशन-सन और आवृत्तिका उल्लेख नहीं।

१८६ पृष्ठोंमें १२१ ग़ज़लें और १६३ रुबाइयाँ हैं;

२—आयाते-वजदानी—प्रकाशक, मिर्ज़ा मुरादबेग चुग़ताई हैदराबाद दक्षिण—१९४५ ई०में प्रकाशित पृ० ४००, विस्तृत टीका और भाष्य सहित।

'आसी' ग़ाज़ीपुरी

[......—१९१७ ई०]

हज़रत शाह अब्दुलअलीम 'आसी' अपने सूफियाना कलाम और रुबा-इयोंके कारण प्रसिद्ध थे। आप नासिख स्कूलके स्नातक और लखनवी शाइर थे। अतः आपके यहाँ खारजी और लखनवी रंगके अशआरकी भी काफी सख्या है, जिनके नमूने न देकर हम केवल चन्द चुने हुए शेर दे रहे है—

गौना करते ही पिया कमाने-खाने परदेश चला गया और वहाँ मिरच-देशवालोंके' फन्देमें फँस गया। बेचारे परस्पर मुँह भी न देख सके। वहाँसे किसी तरह बचकर आया भी तो कब? जब केस रूपा हो गये। और आँखे इस योग्य न रही कि एक-दूसरेको निहार सकें। विरह-व्यथा सहते-सहते वे विरहके मूर्तमान रूप हो गये है। उन्हे तब वस्ल नसीब

'दक्षिण अफ्रीका आदि प्रदेश बसानेके लिए अग्रेज़ भारतसे कुली भर्ती किया करते थे, जो निश्चित अवधिके बाद ही भारत वापिस आ सकते थे। उनमें अधिकांश कष्टोंके कारण मर जाते थे, या वही रह जाते थे, विरले ही लौटकर आ पाते थे। इन्ही प्रदेशोको उन दिनो मिरच-देश कहा जाता था।

होता है, जब वे वस्लके योग्य नहीं रहे। वे दोनों रजो-ग़मके इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें यह जीवनभरकी कठोर तपस्याके बाद मिली हुई मिलनकी शुभवेला भी आकुल किये दे रही है। देखिए इसी जीवनके अनुभवको 'आसी' किस ख़ूबीसे एक शेरमें समोते हैं—

वस्ल है, पर दिलमें अबतक ज़ौके-ग़म पेचीदा है।
बुल्बुला है ऐन दरियामें मगर नम-दीदा है॥

[वस्ल नसीब है, मगर दिल ग़मोंके शौकका इतना आदी हो गया है कि वह वस्लका लुत्फ़ उठाने योग्य नहीं रहा है। पानीका बुल्बुला पानीमें रहते हुए भी अश्रुपूर्ण (नमदीदा) है, क्योंकि वह अपने क्षणिक जीवनसे परिचित है]

अक्सर सूफ़ी शाइर हर जगह ख़ुदाका जलवा देखते हैं—

मदरसा या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी मेहमान थे, इक तू ही साहबख़ाना था॥

—ख़्वाजा दर्द

यहाँतक कि वे माशूकके पैकरमें भी ख़ुदाको ही देखते हैं।

मगर 'आसी'के इश्ककी इन्तहा और बुलन्दी देखिए कि वह ख़ुदाको ख़ुदा ही नहीं समझते। वे हश्रमें पहुँचे तो उनका ख़याल था कि वहाँ ख़ुदाका जलवा देखनेको मिलेगा और वह हमारा इन्साफ़ करेगा। मगर हश्रमें यह क्या हश्र-बरपा हुआ कि जिसे लोग ख़ुदा समझ रहे हैं, वह तो 'आसी' का—वही शोख़ माशूक है। उसने 'आसी'को देखते ही हयासे मुँह फेर लिया—

हश्रमें मुँह फेरकर कहना किसीका हाय! हाय!!
"आसी-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना-बख़्शीदा है॥"

वहाँ भी वादए-दीदार इस तरह टाला।
"कि ख़ास लोग तलब होंगे बारे-आमके बाद॥"

मूर्ति-पूजक तो मुसलमानोसे अधिक तेरे भक्त है। मुसलमान तो केवल काबेमे ही तुझे सिज्दा करते हैं और यह तो सब जगह तेरा चिन्तन और स्मरण करते है—

इतने बुतख़ानोंमें सिज्दे एक काबेके एवज़।
कुफ़्र तो इस्लामसे बढ़कर तेरा गिरवीदा है॥

वर्षोकी साधनाके बाद, प्यारेका दीदार नसीब हुआ, मगर दिलको यक़ीन नही आता कि प्यारा यूँ भी जलवागर हो सकता है—

मेरी आँखें और दीदार आपका ?
या क़यामत आ गई या ख़्वाब है॥

इश्कके बारेमें 'आसी' फर्माते है—

आशिक़ीमें है महवियत[1] दरकार।
राहते-वस्ल[2]-ओ-रंजे-फ़ुरक़त[3] क्या ?

इसी ग़ज़लके चन्द अशआर और—

न गिरे उस निगाहसे कोई।
और उफ़्ताद[4] क्या, मुसीबत क्या ?
जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[5], ऐसी सुहबत क्या ?
जाते हो जाओ, हम भी रुख़सत है।
हिज्रमें जिन्दगीकी मुद्दत क्या ?

---

[1]तल्लीनता; [2]मिलन-सुख; [3]विरह-दुःख; [4]आफतें; [5]इष्ट-मित्र।

'आसी' खुदासे दुआ माँगते हैं—

ताबे-दीदार[1] जो लाये मुझे वोह दिल देना।
मुंह क़यामतमें दिखा सकनेके क़ाबिल देना॥
रश्के-खुरशीदे-जहाँ-ताब[2] दिया दिल मुझको।
कोई दिलबर भी इसी दिलके मुकाबिल देना॥

अस्ल फ़िला[3] हैं, कयामतमें बहारे-फ़िरदौस[4]।
जुज़[5] तेरे कुछ भी न चाहे मुझे वोह दिल देना॥
तेरे दीवानेका बेहाल ही रहना अच्छा।
हाल देना हो अगर रहमके क़ाबिल देना॥
हाय-रे-हाय तेरी उक्दाए-कुशाईके[6] मजे।
तू ही खोले जिसे वोह उक्दये-मुश्किल देना॥

चन्द शेर और—

तुम नहीं कोई तो सबमें नज़र आते क्यों हो?
सब तुम ही तुम हो तो फिर मुंहको छुपाते क्यों हो?

फिराके-यारकी ताकत नहीं, विसाल मुहाल[7]।
कि उसके होते हुए हम हों, यह कहाँ यारा[8]?

तलब तमाम हो मतलूबकी अगर हद हो।
लगा हुआ है यहाँ कूच हर मुकामके बाद॥

अनलहक और मुश्ते-ख़ाके-मन्सूर।
ज़रूर अपनी हकीकत उसने जानी॥

---

[1]देखनेकी शक्ति; [2]लोक (संसार)को चमकानेवाला (सूर्य) भी ईर्ष्या करे; [3]फ़साद; [4]जन्नतकी बहार; [5]सिवा, [6]भेद खोलने, कठिनाइयाँ हल करनेके; [7]मुश्किल; [8]उपाय।

इतना तो जानते हैं कि आशिक़ फ़ना[1] हुआ।
और उससे आगे बढ़के ख़ुदा जाने क्या हुआ॥

यूँ मिलूँ तुमसे मैं कि मैं भी न हूँ।
दूसरा जब हुआ तो ख़िलवत[2] क्या?

इश्क़ कहता है कि आलमसे जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है?

न कभीके बादापरस्त हम, न हमें यह कैफ़े-शराब है।
लबे-यार चूमे हैं ख़्वाबमें, वही जोशे-मस्तिए-ख़्वाब है॥
दिले-मुब्तिला है तेरा ही घर, उसे रहने दे कि ख़राबकर।
कोई मेरी तरह तुझे मगर न कहे, कि ख़ाना ख़राब है॥
उन्हें किब्रे-हुस्नकी[3] नख़वतें[4], मुझे फ़ंजे-इश्क़की हैरतें।
न कलाम है, न पयाम है, न सवाल है, न जवाब है॥
दिले-अन्दलीब यह शक नहीं, गुलो-लालाके यह वरक नहीं।
मेरे इश्क़का वोह रिसाला है, तेरे हुस्नकी यह किताब है॥

नहीं होता कि बढ़कर हाथ रख दें।
तड़पता देखते हैं, दिल हमारा॥
अगर काबू न था दिलपर, बुरा था।
वहाँ जाना सरे-महफ़िल हमारा॥

वहाँ पहुँचके यह कहना सबा! सलामके बाद।
"कि तेरे नामकी रट है, ख़ुदाके नामके बाद॥"

यह हालत है तो शायद रहम आ जाय।
कोई उसको दिखा दे दिल हमारा॥

---

[1]मिट गया; [2]एकान्त; [3]रूपका गुरूर; [4]मद।

बे तेरे, जीनेकी किस जीसे तमन्ना करते ?
मर न जाते जो शबे-हिज्र तो हम क्या करते ?

भला किस दिलसे हम इन्कारे-दर्दे-इश्क करते हैं।
नहीं कुछ है तो क्यों रह-रहके दिलपर हाथ धरते हैं।।

बाहिरमें तो कुछ चोट नहीं खाई है ऐसी।
क्यो हाथ उठाया नहीं जाता है जिगरसे ?

ता-सहर[1] वोह भी न छोड़ी तूने ऐ बादे-सबा[2] !
यादगारे-रौनके-महफ़िल थी परवानेकी ख़ाक ।।

तूने दावाए-ख़ुदाई न किया ख़ूब किया।
ऐ सनम ! हम तेरे दीदारको तरसा करते ।।

दिले-बीमारसे दावा है मसीहाईका।
चश्मे-बीमारको अपने नहीं अच्छा करते ।।

दाग़ेदिल दिलबर नहीं, सीनेसे फिर लिपटा हूँ क्यों ?
मैं दिलेदुश्मन नहीं, फिर यूँ जला जाता हूँ क्यो ?
रात इतना कहके फिर आशिक़ तेरा ग़श कर गया।
"जब वही आते नहीं, मैं होशमें आता हूँ क्यों ?"

वोह कहते हैं—"मैं जिन्दगानी हूँ तेरी"।
यह सच है तो इसका भरोसा नहीं है ।।*

---

[1]सुबहतक; [2]प्रातःकालीन हवा।

*तुम हमारी ज़िन्दगी, पर ज़िन्दगीकी क्या उम्मीद ?
तुम हमारी जान, लेकिन क्या भरोसा जानका ?
—ज़ौक़

क़भी न जोशे-जुनूँमें, न पाँवमें ताक़त।
कोई नहीं जो उठा लाये घरमें सहराको[1] ॥

ऐ पीरेमुग़ाँ[2]! ख़ूनकी बू सागरे-मै में।
तोड़ा जिसे साक़ीने, वोह पैमानए-दिल था ॥

—निगार जनवरी १९५० ई०

कुछ हमीं समझेंगे या रोज़े-क़यामतवाले।
जिस तरह कटती है उम्मीदे-मुलाक़ातकी रात ॥

ग़ुबार होके भी 'आसी' फिरोगे आवारा।
जुनूँने-इश्क़से मुमकिन नहीं है छुटकारा ॥

हम-से बेकल-से वादए-फ़रदा[3]?
बात करते हो तुम क़यामतकी ॥

साथ छोड़ा सफ़रे-मुल्के-अ़दममें[4] सबने।
लिपटी जाती है मगर हसरते-दीदार[5] हनूज़[6] ॥

हवाके रुख़ तो ज़रा आके बैठ जा ऐ क़ैस!
नसीमे-सुब्हने छेड़ा है ज़ुल्फ़े-लैलाको ॥

बस तुम्हारी तरफ़से जो कुछ हो।
मेरी सई और मेरी हिम्मत क्या ॥

जो रही और कोई दम यही हालत दिलकी।
आज है पहलु-ए-ग़मनाकसे रुख़सत दिलकी ॥
घर छुटा, शहर छुटा, कूचए-दिलदार छुटा।
कोहो-सहरामें[7] लिये फिरती है वहशत[8] दिलकी ॥

---

[1]जंगलको; [2]मैख़ानेका मालिक; [3]कल (भविष्य)का वादा; [4]परलोकके सफ़रमें, मृत्युके मार्गमें; [5]देखनेकी लालसा; [6]अभी भी; [7]पर्वतों-जगलोंमें; [8]उन्माद।

रास्ता छोड़ दिया उसने इधरका 'आसी' !
क्यों बनी रहगुज़रे-यारमें[1] तुरबत[2] दिलकी ॥

तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुलीको[3] न पूछो।
मैं दुश्मन हो गया, दुश्मन हुआ दोस्त ॥

इश्कने फ़रहादके पर्देमें पाया इन्तक़ाम[4]।
एक मुद्दतसे हमारा ख़ून दामनगीर था ॥
वोह मुसव्विर[5] था कोई या आपका हुस्नेशबाब[6]।
जिसने सूरत देख ली, इक पैकरे-तसवीर[7] था ॥

मेरे दुश्मनको न मुझपर कभी क़ाबू देना।
तुमने मुँह फेर लिया, आह, यही क्या कम है ?

कोई तो पीके निकलेगा, उड़ेगी कुछ तो बू मुँहसे।
दरे-पीरेमुग़ांपर मैंपरस्तो चलके बिस्तर हो ॥
किसीके दरपै 'आसी' रात रो-रोके यह कहता था—
कि "आख़िर मैं तुम्हारा बन्दा हूँ, तुम बन्दापरवर हो ॥"

टुकड़े होकर जो मिली, कोहकन-ओ-मजनूँको।
कहीं मेरी ही वोह फूटी हुई तक़दीर न हो ॥

यह दोनों एक ही तरकशके हैं तीर।
मुहब्बत और मर्गे-नागहानी ॥

तुम्हीं सच-सच बता दो कौन था शीरींकी सूरतमें।
कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमें कोई कोहकन क्यों हो ॥

---

[1]यारके रास्तेमें; [2]क़ब्र; [3]अवनतिकी; [4]बदला; [5]चित्रकार; [6]यौवनका सौन्दर्य; [7]चित्रवत।

कौन उस घाटसे उतरा कि जनावे 'आसी' !
बोसा लेनेको बढ़े हैं लबे-साहिलकी तरफ़ ॥

मिलनेकी यही राह, न मिलनेकी यही राह।
दुनिया जिसे कहते हैं, अजब राहगुज़र है ॥

—तनक़ीदी हाशिये



ऐ शबे-गोर ! वोह बेताबि-ए-शबहाय फ़िराक़ ।
आज आरामसे सोना मेरी तक़दीरमें था ॥

६ जून १९५२ ई०]



अमरनाथ 'साहिर'

[१८६३—१९४२ ई०]

पं० अमरनाथ मदन साहब 'साहिर' काश्मीरी ब्राह्मण थे। आपका जन्म २६ मार्च १८६३ ई०में और निधन १९४२ ई० में हुआ। आप देहलीके रईस रायबहादुर प० जानकीदास मदनके सुपुत्र थे। आपके पूर्वज पं० दीनानाथजी पंजाबके महाराजा रणजीतसिंहके दीवान और ताऊ अंग्रेजी फौजमें सूबेदार थे।

'साहिर' साहब तहसीलदारके पदसे सम्मानपूर्वक पेंशन लेकर दिल्लीमें साहित्य-सेवामें जीवन-यापन करते रहे। अपने मकानपर नियमसे मासिक मुशाअरे कराते रहते थे और बड़ी धूम-धामसे वार्षिक मुशाअरे वृहतरूपमें कराते थे। मैंने स्वयं सन् १९२४से दसों वार्षिक और न जाने कितने मासिक मुशाअरे आपके संचालकत्वमें सफलतापूर्वक सम्पन्न होते देखे हैं। उर्दू-संसारमें आपको अत्यन्त सम्मान और आदर प्राप्त था। आप हँसमुख, मिलनसार और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, चेहरेपर सफ़ेद दाढ़ी ख़ूब ज़ेब देती थी।

पहले आप फ़ारसीमें शेर कहते थे, बादमें मित्रोंके आग्रहसे २२ वर्षकी आयुमें उर्दूमें शेर कहना आरम्भ कर दिया। आपका १९३७ ई०में एक दीवान "कुफ़्रे-इश्क़" (पृ० १८४) प्रकाशित हो चुका है। आपका कलाम

उच्चकोटिका दार्शनिक और आध्यात्मिक है। भाषा भी फ़ारसीमय है। गद्यके भी आप मशहूर लेखक थे। यहाँ हम आपके कुछ सरल अशआर दीवाने-साहिर 'कुफ्रो-इश्क'से देनेका प्रयत्न कर रहे हैं—

चश्मो-दिल नज़अमें हैं महवे-तमाशाए-जमाल[1]।
हश्र[2] क्या और है इससे कोई बेहतर अपना॥

होनेको तो हैं अब भी वही हुस्न, वही इश्क़।
जो हर्फ़े-ग़लत होके मिटा नक़्शे-वफ़ा था॥

पिन्हाँ नज़रसे परदए-दिलमें रहा वोह शोख़।
क्या इम्तेयाज़[3] हो मुझे हिज्रो-विसालका॥

ऐ परीरू! तेरे दीवानेका ईमाँ क्या है।
इक निगाहे-ग़लत अन्दाज़पै क़ुर्बां होना॥

जुनूने-इश्क़में कब तन-बदनका होश रहता है।
बढ़ा जब जोशे-सौदा हमने सरको दर्दे-सर जाना॥

एक जज़्बा था अज़लसे गोशए-दिलमें निहाँ।
इश्क़को इस हुस्नके बाज़ारने रुसवा किया॥

तमन्नायें बर आईं अपनी तर्के-मुद्दआ होकर।
हुआ दिल बेतमन्ना अब, रहा मतलबसे क्या मतलब?

देखकर आईना कहते हैं कि—"लासानी हूँ मैं"
आईना देता है उनको लनतरानीका[4] जवाब॥

पा लिया आपको अब कोई तमन्ना न रही।
बेतलब मुझको जो मिलना था मिला आपसे आप॥

---

[1]मृत्युके समय हृदय-नेत्र प्रेयसीके सौन्दर्य देखनेमें लीन हैं; [2]प्रलय; [3]अन्तर मालूम दे, पहिचान हो; [4]शेखीका, गर्वका।

गुम कर दिया है आलमे-हस्तीमें होशको।
हर-इकसे पूछता हूँ कि 'साहिर' कहाँ है आज॥

दामाने-यार मरके भी छूटा न हाथसे।
उट्ठे हैं ख़ाक होके सरे-रहगुज़रसे हम॥

सदाए-वस्ल बामे-अर्शसे आती है कानोंमें—
"मुहब्बतके मज़े इस दारपर चढ़कर निकलते हैं॥"

कतरा दरिया है अगर अपनी हकीकत जाने।
खोये जाते हैं जो हम आपको पा जाते हैं॥

कहाँ दैरो-हरममें जलवए-साकी-ओ-मै बाकी?
चलें मैख़ानेमें और बैअते-पीरेमुगाँ[1] कर लें॥

परेपरवाज़े-उनका[2] लायेंगे गर लामकाँ भी हो।
तुम्हें हम ढूंढ लायेंगे कहीं भी हो, जहाँ भी हो॥

हुस्न क्या हुस्न है जलवा जिसे दरकार न हो।
यूसुफी क्या है जो हंगामए-बाज़ार न हो॥

बेतमन्नाईने बरहम रंगे-महफिल कर दिया।
दिलकी बज़्म-आराइयाँ थीं आर्जूए-दिलके साथ॥

अज़लसे दिल है महवे-नाज़ वस्फे-ख़ुद-फरामोशी।
जो बेख़ुद हो वोह क्या जाने, वफा क्या है, जफा क्या है?

पर्दा पड़ा हुआ था ग़फलतका चश्मे-दिलपर।
आँखें खुलीं तो देखा आलममें तू-ही-तू है॥

---

[1]शराब वेचनेवालेपर ईमान ले आये; [2]कल्पित पक्षी 'उनका' का उड़नेवाला पंख।

जलवए-हक नज़र आता है सनममें 'साहिर' !
है मेरे कावेकी तामीर सनम-ख़ानोंसे ॥

हुस्नमें और इ़श्क़में जब राब्ता क़ायम हुआ।
ग़म बना दिलके लिए और दिल बना मेरे लिए ॥

वोह भी आ़लम था कि तू-ही-था और कोई न था।
अब यह कैफ़ीयत है मैं-ही-मैंका है सौदा मुझे ॥

हुस्नको इ़श्क़से बेपरवा बना देते हैं वोह।
वोह जो पिन्दारे-ख़ुदी[1] दिलसे मिटा देते हैं ॥

ख़ाली हाथ आयेंगे और जायेंगे भी ख़ाली हाथ।
मुफ़्तकी सैर है, क्या लेते हैं, क्या देते हैं ॥

ज़िन्दगीमें है मौतका नक़्शा।
जिसको हम इन्तज़ार कहते हैं ॥

दीदारे-शश्जेहत[2] है कोई दीदावर[3] तो हो।
जलवा कहाँ नहीं, कोई अहलेनज़र तो हो ॥

दरे-सनमकदाको हमने जाके खड़काया।
हरममें जब न हुए बारयाब, क्या करते ?

हरम है मोमिनोंका, बुतपरस्तोंका सनमख़ाना।
ख़ुदा-साज़ इक इमारत है मेरे पहलूमें जो दिल है ॥

---

[1]अहमका अभिमान ; [2]अखिलविश्वके दर्शन ; [3]देखनेवाला।

अमरनाथ 'साहिर'

चले जो होशसे हम बेखुदीकी मंजिलमें।
मिला वोह जौके-नजर, पर उधर न देख सके॥



हम हैं और बेखुदी-ओ-बेखबरी।
अब न रिन्दी न पारसाई है॥

९ मई १९५२]



दत्तात्रय 'कैफ़ी'

[१८६६—१९५५ ई०]

पं० वृजमोहन दत्तात्रय कैफी काश्मीरी ब्राह्मण है। आपके पूर्वज फर्रुखसियर बादशाहके साथ काश्मीरसे दिल्ली आये और सरकारी दफ्तरोमे उच्च पदोपर नियुक्त हुए। कैफीके पिता प० कन्हैयालाल नाभा स्टेटमें शहर कोतवाल थे।

अल्लामा कैफी १३ दिसम्बर १८६६ ई०में दिल्लीमें उत्पन्न हुए। आपके नाना फारसीके बहुत बडे पण्डित थे। उन्हींसे फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। मिशन कॉलेजसे १८८० ई०मे बी० ए० पास किया। शाइरीका प्रारम्भ गजलसे हुआ, परन्तु हाली-आज़ादके आन्दोलनोके फलस्वरूप आपने नज्म भी लिखनी प्रारम्भ कर दी।

१९१५-१६ई०में यूरोपका भ्रमण करके वहाँके साहित्यिकोसे भेट-मुलाकात की। आपकी कई कृतियाँ सरकारसे पुरस्कृत हो चुकी है। आप काश्मीरके विदेशी विभागके उपमत्री पदसे रिटायर हुए और एक रियासतमें मजिस्ट्रेट और कलेक्टर भी रहे। शान्तिपूर्वक साहित्य-सृजन करते रहे है। आप उर्दू-साहित्य-इतिहासके बहुत प्रतिष्ठित विद्वान है। आपकी आलोचनायें बहुत गवेषणापूर्ण होती है। आप उर्दू-ससारके एक स्तम्भ

समझे जाते हैं। सैकड़ों मुशाअरों और साहित्यिक सभाओंके आप सभापति होते रहे हैं। उर्दू-साहित्यिक आपका बहुत सम्मान करते हैं। न जाने कितने युवक आपसे प्रेरणा पाकर शाइर और लेखक बन गये। विरोधी भी आपकी विद्वत्ता और साहित्यिक सेवाओंका लोहा मानते हैं और आपके दमको उर्दूके लिए एक बहुत बड़ी देन समझते हैं। हिन्दी-हितैषीके नाते जो स्थान आदरणीय पुरुषोत्तमदास टण्डनका है, वही उर्दू-संसारमें आपका है। सादा-मिज़ाज, साफ़-दिल और बा-इख़लाक़ बुज़ुर्ग हैं। सभी आपको श्रद्धा भक्तिसे देखते हैं। दिल्लीकी बड़ी-से-बड़ी बज़्मे-अदबका सभापति होते हुए हमने आपको देखा है। आपके एक-एक शब्दको लोग मन्त्रकी तरह समझते हैं।

'कैफ़ी' बूढ़े हो चले हैं और उनकी शाइरी भी बूढ़ी हो गई है। लेकिन उनके कलाममें न तो पुराने ढंगकी शोख़ी मिलेगी, न बाज़ारूपन। उनका कलाम संजीदा और पाक होता है। निगार जनवरी १९४१ से चन्द अशआर चुनकर यहाँ दिये जा रहे हैं—

हैं मेरे दिलमें वोह आहें कि जो बिजली न बनीं।
मेरी आँखोंमें वोह क़तरा है जो तूफ़ाँ न हुआ॥

ग़म रहा उनका जो दोज़ख़में पड़े जलते हैं।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ॥

राज़[1] उनके खुले जाते हैं एक-एक सब्नूपर।
और इसपै तमाशा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥

हाल यह बेख़ुदीए-इश्क़में[2] 'कैफ़ी'का हुआ।
शैख़ काफ़िर उसे और गब्र[3] मुसल्माँ समझा॥

---

[1]भेद; [2]प्रेमकी तन्मयतामें; [3]अग्निपूजक (यहाँ गैरमुस्लिमसे तात्पर्य है)।

यूँ अगर देखिए क्या कुछ नहीं यह मुश्ते-ग़ुबार[1]।
और अगर सोचिए तो ख़ाक भी इन्साँमें नहीं ॥

चारागरको हैरत है इश्तेकाए-वहशतसे।
पाँवमें जो चक्कर था आ रहा है वोह सरमें ॥

सुहबतें अगली जो याद आती हैं, जी कटता है।
कोई पूछे भी तो कहते हैं हमें याद नहीं ॥

हाँ-हाँ मगर ऐ दोस्त! तू तदबीर किये जा।
यह भी तेरी तक़दीरके दफ़्तरमें लिखा है ॥

गुले-पज़मुर्दाकी बिखरी हुई कुछ पत्तियाँ देखीं।
तो इक बेदिल यह चीख़ उट्ठा "मेरा दिल है, मेरा दिल है ॥"

तुमसे अब क्या कहें, वोह चीज़ है दाग़े-ग़मे-इश्क़।
कि छुपाये न छुपे और दिखाये न बने ॥

बात वोह कह गये आये भी तो किस तरह यक़ीं।
और सेहर इसमें कुछ ऐसा कि भुलाये न बनें ॥

जिसको ख़बर नहीं, उसे जोशो-ख़रोश है।
जो पा गया है राज़, वोह गुम है, ख़मोश है ॥

पैकरे-ख़ाक है तू चर्ख़पै छा मिस्ले-ग़ुबार।
तुझको मिट्टीमें मिलाया है जवीं-साईने ॥

नहीं मालूम अज़ाँ थी कि वोह बाँगे-नाक़ूस[2]।
कहीं खींचे लिये जाती है इक आवाज़ मुझे ॥

"इन्क़िलाब आनेको ऐसा है न आया हो कभी।"
दरो-दीवारसे आती है यह आवाज़ मुझे ॥

---

[1]मुट्ठीभर ख़ाक; [2]शंख-ध्वनि।

जो जिन्दादिल हैं हमेशा जवान रहते हैं।
बहारे-ज़ीस्त यक़ीनन इसी शबाबमें है॥

हम तो बुरे बने यूँ ही नालेसे आहसे।
दिलमें जो था वोह फूट ही निकला निगाहसे॥

आबाद है यह ख़ानए-दिल इक ख़यालसे।
दुनियाके हादिसे इसे वीराँ न कर सके॥

१६ मई १९५२]

द्वितीय संस्करणके लिए

अफसोस कि अल्लामा कैफीका ८९ वर्षकी आयुमे १ नवम्बर १९५५को दिनके १२॥ बजे दिल्लीमे देवलोक हो गया। उसी सन्ध्याको यमुना-तटपर आपका दाहसंस्कार हुआ।

भारत-विभाजनसे पूर्व लाहौरमें निजी कोठी बनवाकर आप स्थाईरूप-से रहने लगे थे। साम्प्रदायिक-संघर्षोंके दिनोमे संयोगसे आप अपने एक मित्रके यहाँ बम्बईमें थे। उन्ही दिनो आपके क़त्ल किये जानेकी ख़बरें भी समाचारपत्रोमे उडी। ख़बरें पढकर आपने लिखा—"अगर्चे मैं जिन्दा हूँ, लेकिन अहले वतनने जिस वहशत-ओ-बरबरीयत और जुल्मो-सितमका मुजाहिरा किया है। काश कि उसे देखनेके लिए मैं जिन्दा न रहता"। उन्ही दिनो २८ मई १९४७ को आपने यह नज्म लिखी—

यह क्या कर रहे हो ? यह क्या हो रहा है ?
यह तूफान क्या कुश्तो-ख़ूँका बपा है ?
यह क्यों भाई, भाईका दुश्मन हुआ है ?
जुनूँ क्या यह सरको तुम्हारे चढ़ा है ?
यह क्या कर रहे हो, यह क्या हो रहा है ?
ज़रा फ़िक्र और गौरसे काम लो तुम।
न भूलो कि अव्वल तो इन्सान हो तुम॥

कहाँ अक़्ल और होश तुमने गँवाये।
बुज़ुर्गोंके सब कारनामे भुलाये॥
परख़्चे शराफ़तके तुमने उड़ाये।
सुनो तो, जो कहते है अपने-पराये—

"यह क्या हिन्दियोंको जुनूँ हो गया है?
उन्हें क्यों पसन्द अपना ख़ूँ हो गया है?"

कहीं तुम नहीं मुँह दिखानेके क़ाबिल।
यह हालत है रोने-रुलानेके क़ाबिल॥
नहीं मर्सिया यह सुनानेके क़ाबिल।
नही है मगर भूल जानेके क़ाबिल॥

मचाई है क्या आग और ख़ूँकी होली।
न दामन ही बाक़ी रहा और न चोली॥

• •

जुनूँ बरबरीयतका क्यों सरपै छाया?
कहाँ तुमने इन्सानियतको गँवाया?
यह शैतानने तुमको क्या गुर सिखाया?
कि तहज़ीबका तुमने ख़ाका उड़ाया॥

यही हुर्रियतकी अगर इब्तदा है।
तो फिर बरबरीयतकी क्या इन्तहा है?

ज़रा सोचो फिर क्यों यह ख़ूँख़्वारियाँ है?
किसे मारनेकी यह तय्यारियाँ है॥
यह सब नारे-दोज़ख़की चिंगारियाँ है।
जहालतकी सारी फ़ुसूँकारियाँ है॥

कभी ख़ूनसे ख़ूँका धब्बा धुला है?
वह नेकी है जिससे बदीकी फ़ना है॥

अल्लामा कैफीके सस्मरण रहमत क़ुत्वी साहवने लिखे है। उनमे-से चन्द यहाँ दिये जा रहे है—

"दोपहरको आपके आराम करनेका वक़्त था कि दो साहव तशरीफ लाये। खासी देरतक वैठे रहे और अदवी (साहित्यिक) वातें वघारते रहे। जैसे—गालिवके वाज़ अशआरकी शरह (टीका) फलाँ शेर वज़नमे ठीक है या नही। फलाँ मुहावरा सही वाँधा गया है या गलत। मुलाकातियो-का लहजा साइलाना (जिज्ञासुओ जैसा) भी था और नाकिदाना (आलो-चको-जैसा) भी। आप वहुत सहूलियतसे उनको जवाव देते रहे। · · · · मै इस मुलाकातके वक़्त मौजूद था। जब वे लोग चले गये तो मैने अर्ज किया—'शायद आपको मालूम नही कि यह वे साहव थे जो आपके कलामपर एतराज़-ओ-तअरीज (आक्षेप और व्यग्य) करते है।' आप मुसकराये और फर्माया—'मियाँ क्या मै उनको यहाँसे निकलवा देता ? या उनसे शिकायत करता ? ये दोनो वाते मेरी शानके खिलाफ थी। तुम देखोगे कि वे फिर आयेगे और उनको तुम वदला हुआ पाओगे'। चुनाचे वादमें ऐसा ही देखा गया।"

"दिल्लीमें एक साहव कहीसे आ टपके। वे अपनेको 'निज़ामी' उरूज़ीका हमपल्ला समझते थे। एक दिन वे आपकी खिदमतमें भी हाज़िर हुए। इत्तिफाकसे मै मौजूद था। उन्होने लखनऊके किसी शाइरका एक शेर पेश किया और पूछा 'इसमें क्या उरूज़ीनुक्स (छन्द शास्त्रीय त्रुटि) है ?' जवावनें आपने फर्माया 'शायद आपको मेरी अदवी मसरूफियतो (साहित्यिक व्यस्तताओ)का इल्म नही और न यह मालूम है कि किन-किन अमराज़ (रोगो)ने मुझे दवा रक्खा है। मआनी और वयान (अर्थ-भावार्थ)को तो आप अलग रखिए। उर्दूके खिलाफ जो ताज़े हमले हो रहे है, उनका दफाअ (वचाव) मुश्किलसे होता है। फिर इतनी फ़ुरसत कहाँ, फिर लेक्चरके अदाज़में फर्माया—'यह वक्त है कि सारे उर्दूवाले मुत्तहिद और हम-आहग (एक आवाज़) होकर उर्दूके मुस्तक़विल

(भविष्य)के लिए सोचे और कमर कस ले कि उर्दूपर हरगिज़-हरगिज़ आँच न आने देंगे।'

"एक साहब जो अक्सर कैफी साहबके यहाँ आया करते थे। एक रोज आये और निहायत मिन्नत समाजतसे मुशाअरेकी सदारत (अध्यक्षता स्वीकृत करने)की दरख्वास्त की, जो कि उन्हीके एहतमाम (व्यवस्था)में हो रहा था। अल्लामा कैफीने अपनी बीमारी और जिस्मानी नाकाबिलियतोका जिक्र करते हुए फर्माया—'तुम देखते ही हो मेरा जो हाल है। खुली जगहमे मुशाअरा, रातका वक़्त और मेरा यह हाल।' बहुत माज़रत (क्षमा याचना) की, मगर वे न माने। आखिर यह तय पाया कि मुशाअरेके वक्तसे कुछ पहले वे आयेंगे और अल्लामा कैफीको ले जायेंगे, और यह कि अल्लामा मौसूफ सिर्फ मुशाअरेका इफ्तताह (उद्‌घाटन)करके और अपनी नज्म सुनाके वापिस पहुँचा दिये जायेगे। १५-२० मिनटसे ज्यादा उनको वहाँ नही रहना पडेगा। अगले दिन दाई (निमत्रणदाता) ने एक रुक्केसे जवानी करार दादकी तौशीक-ओ-याद्दहानी की (मौखिक वातचीतको लिखित निमंत्रणद्वारा पक्का किया) अब वह दिन और वक्त आया, मगर न आपको कोई लेने आया, न किसी किस्मकी इत्तला दी गई। हाँ, अगले दिन अखबारोसे मालूम हुआ कि वह मुशाअरा हुआ और खूब हुआ।

एक महीने बाद दाई साहब आये, मगर उन्होने मुशाअरेके मुतअल्लिक अपनी इस अहद शिकनीका जिक्रतक भी नही किया। जो कुछ उनका काम था, आपने कर दिया और वे चले गये। करीब दो माह बाद वे फिर आये। उनकी फर्माइश जो अदवी नौईय्यत (साहित्यिक ढग) की थी, पूरी करके जब वे जाने लगे तो अल्लामा कैफीने उनको रोका और फर्माया—'तुम देख ही रहे हो कि मै बूढा आदमी हूँ, एक जमाना देखा है और हजारो आदमियोको बरता है। तुमको यह भी मालूम है कि लोग मुझे अल्लामा भी कहते है। अल्लामा-वल्लामा तो मै नही, मगर इल्मे-नफ़्सियात (मनोविज्ञान)को मैने बहुत अच्छी तरह पढा है। लेकिन तुमने मुझको

ख़बरदार कर दिया कि इस शाअ़बा (अंश) में मेरी तहक़ीक़-ओ-मुताला़अ् नाकिस (खोज एवं अध्ययन व्यर्थ) है। मियाँ ! क्या तुम भूल गये कि मेरी अज़हद मअ़ाज़रतके बावजूद (अत्यन्त क्षमा याचना करने पर) भी तुमने मुझसे उस रोज़ मुशाअ़रेकी शिरकत (उपस्थिति) का वादा लिया और अगले दिन तहरीरसे उसकी तौसीक़-ओ-याद दहानी भी की (लिखित पत्र-द्वारा समर्थन किया और याद भी दिलाई) लेकिन मुशाअ़रे के वक़्त तुमको वह सब भूल गया। उसके बाद न ज़बानी न तहरीरके ज़रिये उस अ़हद-शिकनीकी मअ़ाज़रत (न मुँहज़बानी न लिखित वादा भूलनेकी क्षमा याचना) की। यह तो यह, महीने बाद आये तो भी उसका ज़िक्र नहीं। अब फिर आये तो अपना काम करके जा रहे थे कि मैंने रोका। मैं हैरान हूँ कि तुमने मुझको क्या समझा ? दोनों मुलाक़ातोंके वक़्त मैं तुम्हारे चेहरेको ग़ौरसे देखता रहा। न उसमें शर्मकी सुर्ख़ी थी, न आँखोंमें झुकाव था, न ख़िजालतका कोई पसीना तुम्हारी पेशानीपर था।'' 'दाई (निमन्त्रण दाता) साहब कुछ कहनेको हुए मगर कैफ़ी साहबने ज़रा सख़्त आवाज़से उनको रोक दिया और फ़र्माया—'आपकी मअ़ाज़रतकी मीआद (क्षमा-याचनाकी अवधि) कभीकी गुज़र चुकी है। मैं इस सिलसिलेमें अब एक लफ़्ज़ भी सुनना नहीं चाहता। मैंने अपने ज़हनमें फ़ैसला कर लिया है कि तैमूर और हलाकूकी फ़ेहरिस्तमें आपका नाम लिखना चाहिए। एहसासात और जज़्बात (चेतनाओं और भावनाओं) पर जो क़ाबू आपको है, वह आपको इसका इस्तहक़ाक़ बख़्शता (अधिकार प्रदान करता) है। कहा जाता है कि तैमूरकी पीठमें एक साल तक सख़्त ख़ारिश (बहुत बुरी खुजली) रही। मगर उसने एक दफ़ा भी खुजलाया नहीं। अब मैंने आपकी निस्बत यह फ़ैसला किया है कि अदबी इमदाद (साहित्यिक-सहायता) तो जहाँ तक मुमकिन होगा रोकी नहीं जायगी, लेकिन आपकी किसी बातपर एतबार नहीं किया जायगा।'

हज़रत फर्माया करते हैं—'बाज़ोका खयाल है कि मैं भुलक्कड या तबियतका निहायत फैयाज (उदार हृदय) हूँ। यह दोनो बातें गलत हैं। जो कोई मेरे साथ किसी किस्मकी बदी करे, मैं उसको भूलता नही, न मुझे गुस्सा आता है। लेकिन इन्तकाम (बदलेकी भावना) को मैं अपने-से नीचे और अपनी तौहीन समझता हूँ।' बारहा आपने अशआरमें फर्माया है और आपका अमल भी इसी उसूलपर है कि बदीके बदलेमें बदी करना बदीकी ज़िन्दगीको बढाना है, घटाना नही। किसी शख्सने बुरी बात कही, अब उसका जवाब देना, गोया उस बुराईमे शिरकत करना है।"[1]

जनवरी १९५४मे आपकी जन्मगाँठ बहुत धूम-धामसे मनाई गई। आपको चार हज़ारकी थैली भेट की गई, जिसे आपने उसी समय साहित्यिक सेवाओके लिये प्रदान कर दी।

भारत-विभाजनके बाद आप अपने वतन दिल्ली चले आये थे और वही स्थाईरूपसे साहित्यिक सेवाओमें सलग्न रहते थे।

कैफी-जैसे हिन्दू-मुस्लिम एकताके हिमायतीका लाहोरमे रहना असम्भव हो गया और भरा हुआ घर छोडकर हिजरत करनेको मजबूर होना पड़ा। जिसने जीवनभर उर्दूकी सेवा की। अपनी बेशबहा कृतियोंसे उर्दू-साहित्यको मालामाल किया। अपने भाषणो और शास्त्रार्थोसे उर्दूपक्षका अकाट्य समर्थन किया और दिनरातकी अविराम उर्दू-साहित्य-साधनासे उर्दूके विकासमें प्रकाशस्तम्भका काम किया। मृत्यु-समयतक जो उर्दू-समर्थनके नारे लगाता रहा, उसी कैफीको वहाँ सकूनत नसीब न हो सकी। जहाँकी राज्य-भाषा उर्दू घोषित हुई है। और तो और भारतमें उनको बाबा-ए-उर्दू कहा जानेपर एतराज़ भी किये गये। उसी कैफीपर जिसका ओढना-बिछौना' इज्जत-आबरू, खाना-पीना, शग्ल-तफरीह सभी कुछ उर्दू थी।

---

[1]नकूश शख़्सियात नं० जनवरी १९५६ पृ० २४२-२४४।

आपने व्याख्यानो और लेखोंद्वारा उर्दूकी जीवन-पर्यन्त सेवा की। बीसवीं शताब्दीके उर्दूके हर आन्दोलनमें आप पेश-पेश रहे। आपने ग़ज़लें बहुत कम कहीं।

नज़्मोंके शेर २५-३० हज़ारके लगभग कहे हैं। आपके लिखे नाटक, उपन्यास, नज़्में छप चुकी हैं। लेखो और भाषणोंके दो बडे-बडे सकलन पुस्तक रूपमें प्रकाशित होने भी न पाये थे कि आपका निवन हो गया।

२७ अगस्त १९५७]

'आज़ाद' अन्सारी

[१८७०—१९४२ ई०]

शेख अलताफ अहमद 'आज़ाद' अन्सारीका जन्म १८७० ई०मे नागपुरमें हुआ। वहाँ आपके पिता ओवरसियर थे। १८-१९ वर्षकी अवस्थातक अरबी-फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। १९०० ई०मे देहरादूनमे मक़तव खोला। १९०२से १९०६ तक कानपुरमें हकीमी की। यही आपकी पत्नीका निधन हो गया। फिर आप सहारनपुर, अम्बाला, अलीगढ, दिल्ली, आदि कई स्थानोमें रहे। १९२३के वाद आप हैदरावाद चले गये और वहाँ चश्मेका व्यापार करने लगे। आप शाइरीमें हालीके शिष्य थे। आप पुन. दिल्लीमें रहने लगे थे। यूँ आप सहारनपुरके रहनेवाले थे। १८९०में आपने शाइरी प्रारम्भ की और २० वर्षतक हालीकी सुहवतका लाभ उठाया। आपका १९४२ ई० मे निधन हो गया। आपके स्वय निर्वाचित कलामसे चन्द शेर हम यहाँ निगार जनवरी १९४१ से साभार दे रहे हैं—

अचानक नुज़ूले-वला[1] हो गया।
यकायक तेरा सामना हो गया॥

तवीअ़त ही दर्द-आश्ना[2] हो गई।
दवाका न करना दवा हो गया॥

---

[1]आपदाओंका आजाना; [2]दुखोकी अभ्यस्त।

यूं याद आओगे हमें असला[1] ख़बर न थी।
यूं भूल जाओगे हमें वहमो-गुमां न था॥

आह! किसने मुझे दुनियासे मिटाना चाहा।
आह! उसने कि जिसे हासिले-दुनिया जाना॥

ज़ाहिर हूं कि बेकस हूं, साबित हूं कि बेबस हूं।
जो ज़ुल्म किया होगा, बरदाश्त किया होगा॥

उम्मीदे-सुकूं[2] रुख़सत, तस्कीने-दरूं[3] रुख़सत।
अब दर्दकी बारी है, अब दर्द मज़ा देगा॥

इक वो हैं कि बेख़ौफ़ो-ख़तर गर्मे-शिकायत।
इक हम हैं कि इज़हारे-तमन्ना नहीं होता॥

तुम और चारए-ग़मे-फ़ुर्कत,[4] ख़ुशानसीब[5]!
दु.खको दवा नसीब, मरज़को शफ़ा[6] नसीब॥

ज़ुल्फ़ोंवालो! यह अन्धेर!!
दुहरे-दुहरे काले नाग!!

तालिब[7] हूं, मगर नाकाम, साइल[8] हूं मगर महरूम[9]।
तकदीर मेरी तकदीर, मकसूम[10] मेरा मकसूम॥
किस्मतसे वोह मुल्ज़िम हूं, शामतसे वोह मुजरिम हूं।
जो दादसे भी महरूम, बेदादसे भी महरूम॥

ख़याले-निगाहे-मुहब्बत अबस[11]।
किताबे-निगाहे[12] मुहब्बत कहां?

---

[1]कदापि; [2]चैनकी आशा; [3]अन्तरंग शान्ति; [4]विरह-दुःखका इलाज, [5]अहोभाग्य, [6]आरोग्यता; [7]अभिलाषी; [8]भिक्षुक; [9]उपेक्षित; [10]भाग्य, [11]व्यर्थ; [12]देखनेकी शक्ति।

जो उट्ठे हैं तो गर्मे-जुस्तजूए-दोस्त उट्ठे हैं।
जो बैठे हैं तो महवे-आर्ज़ू-ए-यार बैठे हैं॥

वोह दिल जिसमें तमन्नाकी खुशी थी।
उसे सर्फ़े-तमन्ना देखता हूँ॥

कभी दिनरात रंगीं सुहबतें थीं।
अब आँखें हैं, लहू है, और मैं हूँ॥

तेरा गुलशन वोह गुलशन, जिसपै जन्नतकी फ़ज़ा सदके।
मेरा ख़िरमन[1] वह ख़िरमन, जिसपर अंगारे बरसते हैं॥

अगर कारे-उल्फ़तको मुश्किल समझ लूं।
तो क्या तर्के-उल्फ़तमें आसानियाँ हैं?
सज़ायें तो हर हालमें लाज़िमी थीं।
ख़तायें न करके पशेमानियाँ[2] हैं॥

आओ फिर अहदे-विसाले-यारकी बातें करें।
दास्ताने-लुत्फ़ छेड़ें प्यारकी बातें करें॥
अब आँखोंके आगे वोह जलवे कहाँ?
अब आँखें उठानेसे क्या फ़ायदा?

अब फ़रेबे-मेहर्बानी[3] रायगाँ[4]।
जिन्दगी भरको नसीहत हो गई॥

जब हमें बज़्ममें आनेकी इजाज़त न रही।
फिर यह क्यों पुरसिशे-हालात है? यह भी न सही॥
अब हाले-दिल न पूछ, कि तावे-बयाँ[5] कहाँ?
अब मेहर्बां न हो कि ज़रूरत नहीं रही॥

---

[1]खलिहान; [2]शर्मिन्दगी; [3]कृपाओंका मायाजाल; [4]व्यर्थ; [5]बयान करनेकी शक्ति।

मैं तो इज़हारे-दर्द करता हूँ।
कोई दर्द-आश्ना नहीं न सही॥

तेरा बारे-गिराने-मेहर्बानी कौन उठा सकता ?
तेरा नामेहर्बां होना कमाले-मेहर्बानी है॥

सितमशआर ! सता, लेकिन इस क़दर न सता।
कि शुक्र शक्ले-शिकायात इख़्तियार करे॥
ख़ुदाके वास्ते आ और इससे पहले आ।
कि यास चारए-तकलीफ़े-इन्तिज़ार करे॥

हाय ! वोह राहत कि जबतक दिल कहीं आया न था।
हाय ! वोह साअ़त कि जब तुमसे शनासाई हुई॥

मेरे शौक़े-सज़ाका ख़ौफ़नाक अंजाम तो देखो।
किसीका जुर्म हो अपनी ख़ता मालूम होती है॥

समझता हूँ कि तुम बेदादगर हो !
मगर फिर दाद लेनी है तुम्हींसे॥

फ़सूँगर ! मैं तुझे पहचानता हूँ।
वहींसे बात करना बस वहींसे॥

इक गदाए-राहको[1] नाहक न छेड।
जा, फ़क़ीरोंसे मज़ाक़ अच्छा नहीं॥

तेरा अदील[2] कोई तेरे सिवा न होगा।
तुझ-सा कहांसे लाऊँ, तुझ-सा हुआ न होगा॥
मंज़िलकी जुस्तजूसे पहले किसे ख़बर थी ?
रस्तोंके बीच होंगे और रहनुमा[3] न होगा॥

---

[1]मार्गके भिक्षुकको, [2]नज़ीर, मिसाल, तुझ जैसा; [3]पथ-प्रदर्शक।

हक़[1] बना, बातिल[2] बना, नाक़िस[3] बना, कामिल[4] बना।
जो बनाना हो बना, लेकिन किसी क़ाबिल बना॥

ज़बाँ तक शिकवए-महरूमिये-दीदार[5] आना था।
ख़िताब आया कि "जा, और ताक़ते-दीदार पैदा कर॥"

ग़ैर फ़ानी[6] ख़ुशी अ़ता कर दी।
ऐ ग़मे-दोस्त! तेरी उ़म्रदराज़[7]॥

उठो दर्दकी जुस्तजू करके देखें।
तलाशे-सकूने तबीअ़त कहाँ तक?

दीदारकी तलबके तरीक़ोंसे बेख़बर।
दीदारकी तलब है तो पहले निगाह माँग॥

जो चाहता है चाह मगर क़ाएदेके साथ।
जो माँगना है माँग मगर राह-राह माँग॥

निशाने-राह हाथ आया तो किससे? सिर्फ़ उल्फ़तसे।
कमाले-रहबरी पाया तो किसमें? सिर्फ़ रहज़नमें॥

आओ, फिर मौक़ा है, कुछ, असरारकी बातें करें?
सूरते-मन्सूर बहकें, दारकी बातें करें॥

बयाने-राज़े-दिलकी ख़्वाहिशें और वोह भी मिम्बर पर?
ख़बर भी है? यह बातें दारपर कहनेकी बातें हैं॥

कोई दोनों जहाँसे हाथ उठा बैठा तो क्या परवा?
तुम इन मोलों भी सस्ते हो, तुम इन दामों भी अरज़ाँ हो॥

---

[1]वास्तविक, हक़ीक़ी, [2]असत्य, दुनियावी; [3]घटिया; [4]योग्य; [5]दर्शन न होनेकी शिकायत, [6]न मिटनेवाली; [7]लम्बी उ़म्र होवे।

दिल और तेरे ख़यालसे राहत न पा सके।
शायद मेरे नसीबमें राहत नहीं रही॥

इसे भी ख़ुश नज़र आया, उसे भी ख़ुश नज़र आया।
तेरे ग़ममें ब-हाले शादमाँ कर दी बसर मैंने॥

मुनासिब हो तो अब पर्दा उठाकर।
हमारा शक बदल डालो यक़ींसे॥

तद्‌बीर क्या है ? आपको जानिबसे हुक्मकार।
तक़्दीर क्या है ? आपकी मंशा कहें जिसे॥

या दर्दके एहसासको लज़्ज़त भी अ़ता कर।
या दर्दके एहसाससे बेगाना बना दे॥

बेख़बर! कारेख़बर मुश्किल नहीं।
बेख़बर हो जा, ख़बर हो जायगी॥

जो वोह मिलता नहीं है आप खो जा।
कि इक यह भी तरीक़े-जुस्तजू है॥

तेरे होते मेरी हस्तीका क्या ज़िक्र ?
यही कहना बजा है "मैं नहीं हूँ"॥

अगर हदसे गुज़रें तो बेशक हराम।
जो थोड़ी-सी पी ली तो क्या हो गया ?

आज वोह दिन है कि इक साक़ीके दस्ते-ख़ाससे।
पी और इतनी पी कि मैं हक़दारे-कौसर हो गया॥

याराए-ज़ुहदो-ताबे-वरए कुछ तलब न कर।
तौफ़ीक़ हो तो सिर्फ़ मजाले-गुनाह माँग॥

जो महलेहरम दरपए-दुश्मनी है।
तो परवा नहीं, आस्ताँ और भी हैं॥

आ, मगर इस कदर करीब न आ।
कि तमाशा मुहाल हो जाये॥

बनाया, खेल देखे, तोड़ फेंका।
यह क्या अन्दाजे-तख़लीके-जहाँ है ?

जब रुख़े-मकसदसे इक पर्दा उठा।
और ला-तादाद पर्दे पड़ गये॥

इन्सानकी बदबख़्ती अन्दाजसे बाहर है।
कम्बख़्त ख़ुदा होकर बन्दा नजर आता है॥

बन्दापरवर ! मैं वोह बन्दा हूँ कि बहरे-बन्दगी।
जिसके आगे सर झुका दूँगा ख़ुदा हो जायगा॥

२४ मई १९५२ ई०]

द्वितीय संस्करणके लिए

लुत्फकी आँखोंसे क्या देखा ?
आह किसी मसरफका[1] न रक्खा॥
आजतक आँखें ढूँढ़ रही हैं।
आह वोह प्यारा-प्यारा जल्वा[2]॥

रहम न खाना, ठीक नहीं है।
देखो ! सताकर कुछ न मिलेगा॥
दामने-ग़फलत छूट न जाए।
आँख उठाकर देख न लेना॥

---

[1]कामका; [2]रूप, छवि।

ज़ीस्तके[1] दिन काटे नहीं कटते।
काश तेरा अरमान न होता॥
आह ! हमारी नावकी हालत।
मौजें हाइल[2], तूफ़ाँ बरपा[3]॥

मै पी, दिलको ग़मसे न पाट।
ख़ुश जी और ख़ुश जी कर काट॥
आह ! ख़याले-फ़ुरक़ते-दोस्त।
जी भी बेकल, दिल भी उचाट॥

जौरो-जफ़ाकी[4] ख़ू[5] तो न डाल।
महरो-वफ़ा[6]की जड़ तो न काट॥
रहरवे-हैरत[7] ! देखके चल।
गाफ़िल ! आगे राह न घाट॥

अरज़ो-फ़लक[8], सब सरगरदाँ[9]।
जिसको देखो बारह बाट॥

न पूछो कौन हैं, क्यों राहमें नाचार बैठे हैं।
मुसाफ़िर हैं, सफ़र करनेकी हिम्मत हार बैठे हैं॥
उधर पहलूसे तुम उट्ठे, इधर दुनियासे हम उट्ठे।
चलो हम भी तुम्हारे साथ ही तैयार बैठे हैं॥
किसे फ़ुर्सत ? कि ख़िदमते-उल्फ़त बजा लाये।
न तुम बेकार बैठे हो न हम बेकार बैठे हैं॥

---

[1]ज़िन्दगीके, [2]लहरें बाधक, [3]तूफ़ानोंका आक्रमण; [4]ज़ुल्म करनेकी, [5]आदत [6]दया और नेकी की, [7]आश्चर्यचकित यात्री, [8]पृथ्वी, आकाश; [9]व्यस्त।

जो उट्ठे हैं तो गरमे जुस्तजूए-दोस्त उट्ठे हैं।
जो बैठे हैं तो महवे-आर्जूए-यार बैठे हैं॥
मुक़ामे-दस्तगीरी है कि तेरे रहरवे-उल्फ़त।
हज़ारों जुस्तजूएँ करके हिम्मत हार बैठे हैं॥
न पूछो कौन हैं? क्या मुद्द‌आ है? कुछ नहीं बाबा!
गदा[1] हैं और ज़ेरे साय-ए-दीवार बैठे हैं॥
यह हो सकता नहीं, आज़ादसे मैख़ाना ख़ाली हो।
वह देखो कौन बैठा है, वही सरकार बैठे हैं॥

वोह तेरा दिलमें रहकर, आँखसे मस्तूर[2] हो जाना।
वोह मेरा बा-वजूदे क़ुर्ब[3], तुझसे दूर हो जाना॥
वह तेरा मेरी उम्मीदोंको बेदर्दीसे ठुकराना।
वह मेरा शीशए-दिल, संगे-ग़मसे चूर हो जाना॥
वह तेरा जौरपर ताकीदे-शुक्रे-जौर फ़र्माना[4]।
वह मेरा इस्तसाले-मुअ़्सें माज़ूर हो जाना[5]॥
वह तेरा मुझको आख़िर मुज़्दए-पासे-वफ़ा[6] देना।
वह मेरी ग़मनसीब उम्मीदका मसरूर[7] हो जाना॥
वह तेरा मुझको आख़िर अपनी मंज़िलका पता देना।
वह मेरी जह्दो-जहदे-शौक़[8]का मशकूर[9] हो जाना॥
वह तेरा मुझको अपने दर्दकी दौलत अता[10] करना।
वह मेरे दामने-उम्मीदका भरपूर हो जाना॥

---

[1]फ़क़ीर, भिखारी; [2]पोशीदा; [3]नज़दीक होते हुए; [4]अत्याचारके लिए भी कृतज्ञता प्रकट करनेका आदेश; [5]माशूक़की आज्ञाके आगे अपराधी न होते हुए भी अपराध स्वीकार कर लेना; [6]वफ़ा करनेका शुभ समाचार; [7]प्रसन्न, खुश; [8]इच्छाओंके संघर्षका; [9]कृतज्ञ; [10]प्रदान।

ख़ुशा 'आज़ाद' का फ़ज़ाने-मुहब्बत, जिसने समझाया—
ख़ुदाका कुर्ब[1] क्या शै है, ख़ुदीसे[2] दूर हो जाना ॥

सम्मे-क़ातिल भी[3] है, तिर्याके-शफ़ा[4] भी इश्क है।
मौत भी है, मौतके दुखकी दवा भी इश्क है ॥

रहरवो[5] ! राहे-मुहब्बतमें निडर आगे बढो।
सिर्फ़ रहज़न[6] ही नहीं है, रहनुमा[7] भी इश्क है ॥

मुश्किलाते-इश्क़से घबरा न जाना चाहिए।
मुश्किलाते-इश्कका मुश्किल-कुशा भी इश्क है ॥

शेख़ साहब ! इश्क, कारे-अहले-इस्याँ[8] ही नहीं।
पीरो-मुर्शिद ! मस्लके-अहले-सफ़ा भी इश्क है ॥

ज़िन्दगीमें तर्के-शुग़्ले-इश्क़ क्योंकर कीजिए।
ज़िन्दगी भी, ज़िन्दगीका मुद्दआ भी इश्क है ॥

आओ अब 'आज़ाद' आसन मार बैठें और जपें।
आत्मा भी इश्क है, परमात्मा भी इश्क है ॥

—नाकूश गज़ल न० १९५६ ई०

२२ अगस्त १९५७ ई०]

---

[1]नज़दीकी, [2]अहमसे; [3]घातक विष; [4]रोग दूर करनेका काढा; [5]यात्रियो, [6]लुटेरा, [7]मार्गदर्शक; [8]पाप, अपराध।

'वहशत' कलकत्वी

[१८८१-१९५६ ई०]



खान बहादुर मौलाना रजाअली 'वहशत' १८ नवम्बर १८८१ ई०मे उत्पन्न हुए। कलकत्ता आपका पैत्रिकस्थान था। भारत-विभाजनके समय आप पूर्वी पाकिस्तान जा वसे थे। वही आपका ७५ वर्षकी आयुमे १९५६ ई० में इन्तकाल हुआ।

आपके कलामका पहला सकलन 'दीवाने-वहशत' १९११ ई०मे और दूसरा सकलन 'तरानए-वेहशत' १९५४ ई०में प्रकाशित हुआ। कलकत्तेमें पहले आप इस्लामिया कालिजमे उर्दूके प्रोफेसर रहे। १९३१ ई०में आपको अंग्रेजी सरकारसे खान वहादुरीका खिताव भी मिला।

मौलाना 'वहशत' एक शरीफ़ इन्सान, वजअ़दार और मेहमाँ नवाज़ थे। अपने समकालीन शाइरो और अदीवोसे कभी आपकी चश्मक नही हुई। हर छोटे-वडेसे वहुत अच्छा और शरीफ़ाना व्यवहार करते थे। आपके शिष्योमे कई भारतके ख्यातिप्राप्त वड़े आदमी थे, परन्तु आपने दूसरोपर यह कभी प्रकट नही होने दिया। आप अपने शिष्योसे पुत्रवत्त व्यवहार करते थे। नजरो-नियाज़ कभी नही लेते थे। जरूरत पडनेपर अपनी तरफसे आर्थिक सहायता भी करते थे। दुःख-दर्दमें इष्ट-मित्रो, शिष्यो आदिका हाथ वटाते थे।

शाइरी आपका व्यवसाय नही था। मुशाअरोंमे जानेका कभी पारिश्रमिक नही लेते थे। किराया लेनेमें भी आपको पसो-पेश होता था। पत्रका उत्तर तुरन्त देते थे। यह वज़अदारी आपने अन्त समय तक निभाई, जबकि आपके हाथ-पाँव काँपने लगे थे।

लम्बी शेरवानी, शेरवानीकी जेबमें घड़ी, चौड़े पाँयचेका पायजामा, सरपर टोपी, बढ़िया मोजे और जूते अमूमन 'वहशत' साहबका मख़सूस पहनावा था। वक्तके बहुत पाबन्द थे। जनाब अज़हर कादिरी बयान फ़र्माते हैं—"एक मर्त्तबाका ज़िक्र है कि मुहसिन कॉलेजमें एक मुशाअरा 'वहशत' साहबकी सदारतमें हो रहा था। मुहसिन कालेज कलकत्तेसे किसी कद्र दूर है। जहाँ लोग आमतौरपर ट्रेनसे जाते हैं। ट्रेन शामके ७ बजे छुटनेवाली थी। जानेवाले तमाम शोअरा स्टेशन पहुँच चुके थे। और मौलाना 'वहशत'का इन्तज़ार कर रहे थे। सात बजनेवाले थे और मौलाना 'वहशत' इस वक्ततक स्टेशन नही पहुँचे थे। लोगोंके दिलोमें मुख्तलिफ किस्मके शुबहात पैदा हो रहे थे और उनपर एक बेचैनी-सी तारी थी। सभी कह रहे थे कि ज़रूर कोई ऐसी-वैसी बात हो गई है। वर्ना वक्तकी पाबन्दीका खयाल मौलानासे ज्यादा किसको हो सकता है? सात बजनेमें एक मिनट बाकी था। तमाम लोग मायूस हो चुके थे कि इतनेमें दूरसे मौलाना 'वहशत' ट्रेनकी तरफ तेज़ीसे आते हुए दिखाई दिये। जब वे करीब पहुँचे तो तमाम लोग उनको लेकर एक डिब्बेमे दाखिल हो गये और फिर फौरन ट्रेन चल पडी। कुछ देरके बाद एक साहबने मौलाना 'वहशत'से कहा—'हुज़ूर आज ख़िलाफ़े-मामूल (टाइम टेबिलके विपरीत) ट्रेन एक-दो मिनट देरसे रवाना हुई। यह अच्छा हुआ वर्ना हमलोग शायद इससे न जा सकते।' मौलाना 'वहशत'ने मुसकराते हुए फर्माया—"मैंने हमेशा वक्तका ख़याल किया है, क्या आज वक्त मेरा ख़याल न करता।"

'वहशत' बहुत अच्छे दोस्तनवाज़ थे। वे अपने गरीब-अमीर, छोटे-बडे सभी दोस्तोंसे हृदयसे मिलते थे। वे उन अवसरवादियोंमें नही थे

जो बड़े आदमियोंसे मुलाक़ातके कोई-न-कोई तरीक़े निकाल लेते हैं। और अपनेसे घटिया किस्मके रिश्तेदारो-दोस्तोको पहचान भी नही पाते। मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जो एक धनिकको अपना बहनोई बताया करते थे। एक रोज़ बातों-बातोमे मैंने कहा, 'उनके तो कोई साला नही और आप तो उनकी ज़ातके भी नही हैं। फिर वे आपके बहनोई कैसे लगते हैं ?' कहने लगे उन्हें हमारे यहाँकी लड़की विवाही है। मैंने फिर दुरूखा, 'वे तो फलाँ गाँव विवाहे हैं और आपका गाँव फला है', बोले—'अरे साहब तहसील तो एक है। अब वे बड़े आदमी हैं, हमे भले ही न पूछे; वर्ना रिश्तेदार होनेमे क्या शक है।' कई हज़रत ऐसे भी मिले जो उन्हे अपना लँगोटिया यार कहते थे। पूछा—'भई मैंने तो तुम्हे उनके साथ कभी देखा नही, लँगोटिया यार कैसे हुए' ?बोले—'हम और वे एक ही कालेजमें पढे है।' मैंने कहा—'आप तो कहते थे हमने एम. ए इसी वर्ष किया है। उन्हे कालेज छोड़े ८-१० वर्ष हो गये। उम्रमे भी काफी अन्तर मालूम होता है। जवाबमे फ़र्माया—'जिस वर्ष उन्होने कालेज छोड़ा था, हम उसी वर्ष फर्स्टईयरमे दाखिल हुए थे। आप लँगोटियायार न समझिए, कॉलिज फेलो तो है ही।'

बात जब चल निकली है तो दो लतीफे जो याद आ गये है, उन्हे भी लिखे देता हूँ। सम्भवत १९३३-३४ की घटना है। दिल्लीसे मेरा परिचित एक विद्यार्थी डाक्टरी पढने कलकत्ते गया था। उन दिनो सिनेमा-ससारमें मिस कज्जन बहुत जोरोसे छाई हुई थी। दुर्गा खोटे भी मशहूर हो चुकी थी। छुट्टियोमें वे दिल्ली आये तो उनके वार्त्तालापका एकमात्र विषय फिल्म था। हिर फिरकर फिल्मके मौजूपर आ जाते और मिस कज्जन और दुर्गा खोटेका जिक्र बहुत मज़े ले-लेकर करते। मैंने कहा—"भई तुम तो इनका जिक्र इस तरह कर रहे हो, जैसे अच्छी-खासी मुलाकात हो।"

उछलकर बोले—"मुलाकात ! मुलाक़ात क्या होती है साहब ! हमारे उनके बहुत गहरे मरासिम है।" मैंने कहा—"भाई वह किस तरह"?

फर्माया—"कज्जनके मोटर ड्राइवरके कपड़े जिस दर्ज़ीके यहाँ सिलते हैं, उस दर्ज़ीका दोस्त मेरा दोस्त है। उसकी मार्फ़त कज्जनके सब हालात मालूम होते रहते हैं, और हम जिस मकानमें रहते हैं, उसके सामनेका पिछला हिस्सा दुर्गा खोटेके मकानका है। उसके पिछवाड़ेकी खिड़की ठीक हमारे दर्वाज़ेके सामने पड़ती है।" मैंने पूछा—"तब तो दुर्गाको कई बार देखा होगा।" बोले—"अभी तो इत्तफ़ाक नहीं हुआ है, मगर कभी-न-कभी दीदार नसीब ज़रूर होंगे।" मेरे मुँहसे बरजस्ता निकला—

हमने भी कोठा लिया तेरी कोठीके सामने।

सुनकर बहुत झेंपे। 'वहशत' साहबकी दोस्तनवाज़ीके बारेमें अज़हर कादिरी साहब एक घटनाका उल्लेख इस तरह करते हैं—"मैंने अपने एक बुज़ुर्गसे सुना है कि 'वहशत' साहबके एक हमजमाअत थे, जो ज्यादा तालीम हासिल न कर सके और तालीम तर्क करके एक छोटा-सा होटल खोल लिया था। वह होटल हरगिज़ ऐसा नहीं था, जहाँ कोई शरीफ़ और माकूल किस्मका आदमी जाकर बैठता। लेकिन कहते हैं कि 'वहशत' साहब जब कभी उस राहसे गुज़रते तो बिला ज़रूरत भी उस होटलमें जाकर चाय ज़रूर पी लेते और उसकी वजह सिर्फ़ यह बताई जाती है कि कहीं मौलानाके इस हमजमाअतके दिलमें यह गुमान न गुज़रे कि 'वहशत' साहब बड़े और मशहूर आदमी हो गये हैं तो मुझसे मिलनेमें हिचकिचाहट होती है और इसे कस्रेशान समझते हैं।"[1]

'वहशत'ने—मिर्ज़ा दाग़, अमीर मीनाई, जलालके युगमें आँखें खोलीं। कहीं-कहीं आपके कलाममें उस युगका रंग झलकता है; परन्तु आप मिर्ज़ा ग़ालिबका अनुकरण करनेका प्रयास करते रहे। फर्माया है—

तेरे अन्दाज़े-सुख़नसे है यह ज़ाहिर 'वहशत'!
कि मुकद्दर है तेरा ग़ालिबे-दौरां होना॥

---

[1]नकूश अक्तूबर १९५६ पृ० ८७३-७४।

सुख़नसे तेरे 'वहशत' तर्ज़े-गालिब आशिकारा है।
कहीं रंगींबयानीमें, कहीं नाज़ुक ख़यालीमें॥

और इस प्रयासमे 'वहशत'को काफ़ी सफलता भी मिली है। गालिबके रंगमें चन्द शेर—

हूँ मै इक शमअ़ कि है मुन्तज़िरे-मुवज्जहे-वाद।
देखिए कब वह इनायतकी नज़र करते हैं॥

वही मतलूब है दिलको कि जिससे हो ज़ियाँ मेरा।
मेरी तरकीबमें इक जुज़्वे बरबाद भी शामिल है॥

तुम वह बेदर्द कि रोनेको गिला कहते हो।
हम वह मिसकीं कि जफ़ाको भी वफ़ा कहते हैं॥

नहीं है महरो-वफ़ा ही की जब तुझे परवा।
तो मेरी महरो-वफाका फिर इम्तहाँ क्यों हो?

याँ ज़ौके-सितम मुज़्दा कि वह बेसबब आज़ार।
सरगर्म दिल-आज़ारि-ए-अरबाबे-वफा है॥

उमीदें खाकमें मिल-मिल गईं तेरे तग़ाफुलसे।
कोई क्योंकर हरीफे-बादए-सब्र आज़्मा होता॥

किसीका गोशए-अबरू है शायद माइले-जुम्बिश।
कि अपने काम जो मुश्किल थे आसाँ होते जाते हैं॥

ख़ाक उससे बन पड़ेगा तेरी बातोंका जवाब।
हम-सुख़न तेरा हलाके-शोख़िये-तकरीर है॥

कही-कही मोमिनका रग भी झलकता है—

करो रकीब पै क्यों जुल्म मै तो हाजिर हूँ।
गिला तुम्हारे सितमका यहाँ-वहाँ क्यों हो ?

तूने जो ग़ैरको न सताया भला किया।
जाती तेरी शिकायते-बेदाद हर तरफ़॥

खुल गया मुझपै तेरा ग़ैरसे छुपकर मिलना।
तुझसे मिलते हुए अब मुझको हया आती है॥

'वहशत'का शुमार दिल्ली स्कूलमें किया जाता है। उनकी शाइरी मस्तिष्ककी उपज न होकर हृदयकी शाइरी है। उसमे कृत्रिमता कम और वास्तविकता अधिक है। स्वय फर्माते है—

खुदा गवाह कि हूँ तर्जुमाने-दिल 'वहशत'।
कहे है शेर, नहीं की है शाइरी मैंने॥

यानी शेर कहनेके लिए कभी नही कहे। जब शेर बर्बस दिलसे निकले तभी कहे—

वही कहता हूँ दिल जिसकी मुझे तालीम करता है।
नहीं है शाइरी मेरी, मगर 'वहशत' जबाने-दिल॥

और जब कभी आपको फर्माइशी कलाम कहना पडा तो उनमे वह बात न आपाई जो आपकी विशेषता है। इसी मजबूरीकी तरफ इशारा करते हुए फर्माया है—

हमारी शाइरी अब दिल्लगी-सी रह गई 'वहशत'!
कि कुछ कह लेते है, अहबाब जब इसरार करते है॥

'वहशत' प्रथम श्रेणीके गजल-गो शाइर हुए है। मगर आपके कलाममें

न तो मीर-जैसा सोजो-गुदाज मिलता है, न ग़ालिब-जैसा तर्ज़ और रंगे-बयान। इसका कारण यही है कि उन्होने दिलके वे अन्तरंग भाव व्यक्त नही किये, जो शाइरीके लिए ज़रूरी है। दुनियाकी बदनामीके भयने उन्हे वास्तविक हृदयोद्गार प्रकट नही करने दिये। आपने इस मजबूरीका इजहार भी किया है—

गज़ल लिखते हुए 'वहशत' मुझे अन्देशा होता है।
ज़बाने-ख़ामापर आयें न अफ़साने कहीं दिलके॥

वकौल प्रोफेसर अरशद काकोरवी—"यह अन्देशा हर गज़लगो शाइर-को ले डूबता है। 'वहशत'ने अपनी जिन्दगीमे इससे बड़ी गलती कोई नही की और अपनी गज़लगोईके साथ इससे बड़ा जुल्म कोई नही किया कि दिलके अफसानोको छुपाये रखनेकी कोशिश करते रहे और गज़ल कहते रहे।"[1]

अब हम स्वयं 'वहशत' साहबके पसन्दीदा अश्आरमें-से चन्द शेर निगार जनवरी १९४१ से दे रहे है—

हमारे पाँवमें तो तुमने ज़ंजीरे-वफ़ा[2] डाली।
तुम्हारे हाथसे क्यों रिश्तए-महरो-करम[3] छूटा ?

तग़ाफ़ुल तो अदा है, पुरख़तर है इल्तफात उसका।
मुसीबत आयगी उस वक़्त जब वोह महरबाँ होगा॥

अभी तो तेरी मायूसीसे[4] इत्मीनान है ऐ दिल !
मुझे उस वक़्त होगा खौफ, जब तू शादमाँ[5] होगा॥

फिर नवाज़िश[6] आपकी हद्दसे ज़ियादा हो गई।
फिर दिले-आफ़तरसीदा[7] बदगुमाँ[8] होने लगा॥

---

[1]निगार जुलाई १९५४ ई० पृ० १८; [2]नेकी करनेकी आदतरूपी बेड़ियाँ; [3]दया-कृपाका रिश्ता; [4]निराशासे; [5]प्रसन्न; [6]कृपाएँ; [7]मुसीबतें उठाया हुआ दिल; [8]अविश्वासी।

फिर हुआ मेरे लिए शौक आफरीं[1] उसका शबाब[2]।
फिर मेरा दिल अहदे-पीरीमें[3] जवाँ होने लगा॥

हुई जो चश्मे-हविस[4] कामयाबे-नज्जारा[5]।
करम[6] है यह भी तेरे शौके-खुदनुमाईका[7]॥

मुझे अब तानए-अफसुर्दगी[8] देता है तू ऐ दिल!
कभी तूफान था मैं भी जमाना यादकर मेरा॥

गो हयाने जुम्बिशे-लबकी न दी रुखसत उन्हें।
मैं शहीदे-तर्जे-पुरसिश हाय पिन्हाँ हो गया[9]॥

किसीसे कहती है चितवन किसीकी।
"कि तू क्या और तेरा मुद्आ क्या॥"

मजाले तर्के-मुहब्बत[10] न एक बार हुई।
खयाले-तर्के-मुहब्बत तो बार-बार आया॥

निशाने-मंजिले-जानाँ मिले-मिले-न-मिले।
मजेकी चीज है यह जौके-जुस्तजू मेरा॥

न जाने नाज करती किस क़दर बुलबुल गुलिस्ताँ पर।
अगर इक फूल भी शर्मिन्दए-बूए-वफा होता॥

बारहा बेइल्तिफाती[11] देखकर सैयादकी।
खुद-ब-खुद बेताब होकर मैं तहे-दाम[12] आ गया॥

---

[1]उत्साहवर्द्धक, [2]यौवन-रूप, [3]वृद्धावस्थामें; [4]लालायित नेत्र; ...खनेमें सफल; [6]दया,कृपा; [7]अपने दिखानेका शौक; [8]मुर्झाये ...नेका उलाहना; [9]शर्म-लाजके कारण प्रेयसी ओठतक न हिला सकी। ...गर मैं तो उसकी इसी अदापर न्योछावर (शहीद) हो गया, जो भाव ...रा हाल पूछनेके लिए उसके मनमें उठ रहे थे, मगर बाहर नहीं निकल ...रहे थे; [10]प्रेम त्यागकी हिम्मत, [11]अकृपायें, उपेक्षायें; [12]जालमें।

हैं नज़रबाज़ोंमें हलचल, सब हैं गरमे-जुस्तजू।
वोह परी है कौन 'वहशत' जिसका दीवाना हुआ॥

ईमां अगर जाता रहा, उस बुतको 'वहशत' क्या ख़ता ?
हम भी ख़ुदा लगती कहें तू भी तरफ़दारी न कर॥

गोया है कोई और भी मामन[1] ज़मानेमें।
मायूस होके उट्ठे हैं उस आस्तांसे हम॥

तेवर तेरे कुछ और ख़बर देते हैं हमें।
घबरा रहे हैं अपने दिले-शादमांसे[2] हम॥

क्या रंग इन्तक़ामे-ख़िज़ांका हो देखिए।
डरने लगे हैं जोशे-बहारे-चमनसे हम॥

हमारे आगेसे जब वोह कभी गुज़रते हैं।
हम अपने खोए हुए दिलको याद करते हैं॥

यह क्या हुजूमे-तमन्ना है, ख़ैर हो यारब !
हम उनसे डरते नहीं अपने दिलसे डरते हैं॥

दिलके कहनेपै चलूँ अक़्लका कहना न करूँ।
मैं इसी सोचमें हूँ, क्या करूँ और क्या न करूँ॥

ख़फ़ा तुम जुर्मे-उल्फ़तपर, ख़िजिल[3] मैं जुर्मे-उल्फ़तसे।
न तुम मिलनेपर आमादा, न मैं मिलनेके क़ाबिल हूँ॥

वही ग़व्वास[4] हैं जो डूबकर उभरे न दरियासे।
नहीं है इश्क़में उनकी सनद जो पार उतरते हैं॥

---

[1]शरण-योग्य स्थान; [2]प्रसन्न दिलसे; [3]शर्मिन्दा; [4]गोताख़ोर।

ज़रूरत तुमको क्या मुझसे तकल्लुफ़की तवाज़अ़की[1] ।
यही अन्दाज़ वोह हैं जो मुझे मायूस[2] करते हैं ॥

इस दिलनशीं अदाका मतलब कभी न समझे ।
जब हमने कुछ कहा है, वोह मुसकरा दिये हैं ॥*

कुछ शौक़ कर दिया है, छेड़ोंसे हमने तुमको ।
कुछ हौसले हमारे तुमने बढ़ा दिये हैं ॥

निशाने-ज़िन्दगि-ए-दिल है, बेकरारिए-दिल ।
है दिलकी मौत अगर चैन आ गया दिलको ॥

बज़्मे-अग़ियारमें[3] माज़ूर[4] न थे वोह 'वहशत' !
बात अगर कर नहीं सकते थे, इशारा करते ॥

इक हद् ज़रूर होती है सब्रो-क़रारकी ।
अब नौबत आई नाल-ए-बेइख़्तियारकी ॥

आप अपना रुए-ज़ेबा[5] देखिए ।
या मुझे महवे-तमाशा[6] देखिए ॥

हसरतोंका[7] हायरे दिलमें हुजूम ।
आर्ज़ूओंका नतीजा देखिए ॥

मरहमका ज़िक्र किसने अदावतसे कर दिया ।
यह क्या नई ख़लिश[8] मेरे ज़ख़्मे-कुहनमें[9] है ?

---

*इसी ख़यालको 'सबा' अकबराबादीने किस ख़ूबीसे व्यक्त किया है—

गलतफ़हमियोंमें जवानी गुज़ारी ।
कभी वोह न समझे कभी हम न समझे ॥

[1]ख़ातिर-तवाज़अ़की, [2]निराश, [3]शत्रुकी महफ़िलमें, [4]मजबूर; [5]सुघड चेहरा, मोहकरूप; [6]देखनेमें लीन, [7]अभिलाषाओंका; [8]चुभन, टीस; [9]पुराने घावमें ।

जिससे चाहो पूछ लो तुम मेरे सोज़े-दिलका हाल।
शमअ़ भी महफिलमें है; परवाना भी महफिलमें है ॥

कूए-जानाँके[1] लिए मै ही नहीं हूँ मुज़्तरिब[2]।
कूए-जानाँ भी है आतश[3] ज़ेरे-पा[3] मेरे लिए ॥

अब ख़फा होने लगे हो मुझसे हर-हर बातमें।
तुम कि हो जाते थे दुश्मनसे ख़फा मेरे लिए ॥

दोनोंने किया है मुझको रुसवा।
कुछ दर्दने और कुछ दवाने ॥

वतनमें आँख-चुराते हैं हमसे अहले-वतन।
तड़पते रहते थे ग़ुर्‌बतमें[4] हम वतनके लिए ॥

सरेबालीं ज़रा आजाओ तुम बीमारे-हिज्राँके।
कि इक हिचकीमें वोह कह दे कहानी ज़िन्दगी भरकी ॥

निगाहे-नाज़ तेरी मेरे हकमें इक मुअ़म्मा[5] है।
समझ ही में नहीं आता है क्या इर्शाद[6] होता है ॥

कफ़समें उम्र गुज़री नालओ-आहो-फ़ुग़ाँ करते।
हम आख़िर किस तवक़्क़ुअ़पर ख़याले-आशियाँ करते ॥

पता मिलता नहीं जिन्से-वफ़ाका इस ज़मानेमें।
कहींसे हाथ अगर लगती तो नज़रे-दोस्ताँ करते ॥

दमे-इ़श्‌रत मुझे अन्देशए-अंजाम होता है।
मेरा दिल काँपता है, दौरमें जब जाम होता है ॥

---

[1] प्रेयसीकी गलीके; [2] बेचैन; [3] -मेरे लिए प्रेयसीकी गली भी उद्विग्न है; [4] परदेशमें; [5] पहेली; [6] आदेश।

वहशत कलकत्तवी

हँसा हूँ हालपर अपने जहाँ रोनेका मौक़ा था।
किया है शुक्रके पर्देमें क़िस्मतका गिला मैंने॥

है हिदायतके लिए मौजूद ख़ुद तेरा ज़मीर[1]।
गोशे-दिलसे[2] सुन हक़ीक़तकी[3] यही आवाज़ है॥

गो मैं हूँ तुझसे दूर तेरी आर्ज़ू तो है।
तेरा पता मिले न मिले आर्ज़ू तो है॥

वोह आयें या न आयें, उन्हें इख़्तियार है।
ऐ ज़ौक़े-इन्तज़ार मैं ख़ुश हूँ कि तू तो है॥

परवानेकी है मौतपर ऐ शमअ़! मुझको रश्क[4]।
तेरा शहीदे-नाज़ तेरे रूबरू तो है॥

उन्हें इल्म हो चुका है मेरी ताक़तो-तवाँका[5]।
वह करेंगे ख़ाक पर्वा मेरे नालए-फ़ुग़ाँकी?

सरे-शाख़े-आशियाँ भी मुझे ख़ौफ़ था क़फ़सका।
न हुई नसीब दिलको कभी राहत आशियाँकी॥
मेरे गिरयए-अलम[6] पर न बहाये जायें आँसू।
कहीं तुम हँसी न करना मेरी चश्मे-ख़ूँ फ़िशाँकी[7]॥
मुझे हमनवा[8] न देना कहीं ज़हमते-तकल्लुम।
कही जायगी क़फ़समें न हिकायत आशियाँकी॥

हो रसाई क्या वहाँतक बस इक आसरा यही है।
कि उन्हींको याद आये कभी अपने नातवाँकी॥

---

[1]अंतरात्मा; [2]अन्तरात्माके कानसे, [3]सत्यकी, [4]ईर्ष्या; [5]ताक़त और सामर्थ्यका; [6]व्यथापूर्ण रुदनपर; [7]रक्तरंजित नेत्रोंकी, [8]हम ज़बान।

मुझे अब शगुफ़्तगीकी हो कफ़समें क्या तवक़्क़ुअ़ ।
गई साथ आशियांके जो थी बात आशियाँकी ॥

अब हम समाचार पत्रोंमें प्रकाशित नवीन कलाममे-से कुछ शेर चुनकर दे रहे हैं—

दिलवाले हैं वाकिफ़ मेरी बरबादि-ए-दिलसे ।
हर चन्द कि यह वाकेआ़ मशहूर नहीं है ॥

कुछ समझकर ही हुआ हूँ मौजे-दरियाका[1] हरीफ़[2] ।
वर्ना मैं भी जानता हूँ आ़फ़ियत[3] साहिलमें है[4] ॥

हसरतोंका हायरे दिलमें हुजूम ।
आर्ज़ूओंका नतीजा देखिए ॥

ख़यालतक न किया अहले अंजुमनने कभी ।
तमाम रात जली शमअ़ अंजुमनके लिए ॥
—निगार जुलाई १९५४ ई०

हुए हैं गुम जिसकी जुस्तजूमें, उसीको हम जुस्तजू करेंगे ।
रखा है महरूम जिसने हमको, उसीको हम आर्ज़ू करेंगे ॥

गये वोह दिन जबकि इस चमनमें हवा-ए-नश्वो-नुमा थी हमको ।
ख़िज़ांको देखा नहीं है हमने कि ख़्वाहिशे-रंगो-बू करेंगे ॥

हिकायते-आर्ज़ू है नाज़ुक, ज़बान क्या ख़ाक कह सकेगी ।
लबे-ख़मोश-ओ-निगाहे-हसरतसे दिलकी हम गुफ़्तगू करेंगे ॥

जगह जो आँखोंमें मैंने दी थी, तो उनसे थी चश्मे-राज़दारी ।
यह क्या ख़बर थी कि अश्क मेरे, मुझीको बेआबरू करेंगे ॥

---

[1]लहरोंका; [2]शत्रु,लड़नेको प्रस्तुत; [3]कुशल; [4]दरिया किनारेमें ।

वहशत कलकत्तवी

अभी तो गुमकरदा राह खुद हैं, मए-मुहब्बतकी बेखुदीमें।
अगर कभी आपमें हम आये तो उसकी भी जुस्तजू करेंगे॥

दर्दका मेरे यकीं आप करें या न करें।
अर्ज इतनी है कि इस राजका चर्चा न करें॥
मेरे अरमानोंको काश इतनी समझ हो 'वहशत'!
कि उन आंखोंसे मुरव्वतका तकाजा न करें॥

नकूश ग़ज़ल नम्बर फ़रवरी १९५६

शक्ल कुछ ऐसी बदल दी यासने[1] उम्मीदकी।
आर्जू पर[2] भी नहीं होता गुमाने[3]-आर्जू॥

कोई किस तरह मुसीबतसे बचे दुनियामें।
मजनूसे[4] और भी है इश्कका सौदा न सही॥

जहांमें छोड़ जाता मैं अलमनाक[5] एक अफ़साना।
अगर मुझसे मेरी रुदादे-ग़म[6] तहरीर[7] हो जाती॥

मुझे ज़िद है अपनी फलाहसे[8] नहीं फायदा मेरा मुद्दआ[9]।
है ज़रर ही से[10] मुझे वास्ता, मेरा नफ़ा जैसे जररमें है॥

जो जिन्दगीमें हमें कुछ उम्मीद ही न रही।
तो जिन्दगी ही हमारी रही-रही न रही॥

दिले-फसुर्दाने[11] यूं मुझको बेनियाज[12] किया।
कि दहरमें[13] कोई भी वजहे-दिलकशी न रही॥

---

[1]निराशाने; [2]सफलताओंपर भी; [3]विश्वास; [4]कमेले; [5]व्यथापूर्ण; [6]ग़मकी कहानी; [7]लिखी जाती, [8]भलाईसे; [9]उद्देश्य; [10]हानिसे [11]मुर्झाये दिलने; [12]उदासीन, [13]संसारमें।

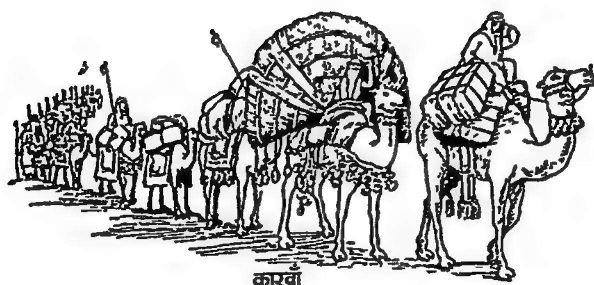
मुक़ामे-शुक्र है कि इक वक़्त ऐसा आ पहुँचा।
कि दिलके हालसे ख़ुद दिलको आगही[1] न रही॥

ग़लत है दूँ जो गुलिस्ताने-दहरको इल्ज़ाम।
जब अपने गुंच-ए-ख़ातिरमें ताज़गी न रही॥

यह क्या ज़रूर है रोऊँ मैं ऐशे-रफ़्ताको[2]।
बुरा ही क्या है जो लबपर मेरे हँसी न रही॥

—नक़ूश अक्तूबर १९५६ ई०

१ सितम्बर १९५७ ई०]


कारवाँ

न परवा की हमारी कारवाँने जब तो, फिर हम भी।
बिछुड़कर कारवाँसे क्या तलाशे-कारवाँ करते ?

१ सितम्बर १९५७ ई०]

---

[1]जानकारी; [2]भूतकालीन सुख सुविधा।



'अमजद' हैदराबादी

[१८८४ —……ई०]

हजरत अमजद १८८४ ई० में हैदराबादमें पैदा हुए। आपके जन्मके ४० रोज बाद पिताका निधन हो गया। माताके अतिरिक्त कोई ऐसा कुटुम्बी या रिश्तेदार न था, जो भरण-पोषणका भार उठाता। आमदनीका कोई जरिआ नही था। जिन्दगी निहायत तकलीफमे बसर होती थी। फिर भी विधवा और असहाय माँ ने हिम्मत न हारी और मेहनत-मजदूरी करके अमजदका भरण-पोषण ही नही किया, अपितु उन्हे उन दिनोंके रिवाजके अनुसार फारसीकी उच्च शिक्षा भी दिलाई।

'अमजद' अपनी आत्म-कथामे लिखते हैं—"हमारे वालिद् हजरत सूफी रहीमअलीका हमारी वालिदाने अक्द (शादी)के तीन साल बाद ऐन हमारे चिल्ला (जन्मके चालीसवे रोज मनाए जानेवाले उत्सव)के दिन मर्जे-फालिजने आनन्-फानन्मे इन्तकाल हो गया। मेहमानोंसे भरा हुआ इशरतकदा दमभरमे मातम्कदा बन गया। अगर्चे हमारी वालिदाके अजीजो-अकारिब सब मर चुके थे। शौहरका साया भी सरपर बाकी नही रहा था। सब बच्चे गुजर जाकर हम अकेले रह गये थे। मगर न मालूम हमारी इन अम्मीजानमें तालीमका शौक कहाँसे और किस तरह पैदा हो गया था कि हमने बार-बार फर्माती—

"बेटा अगर जीना हो तो कुछ होकर जियो, वर्ना मर जाओ"। माँ इल्मकी दिलदादा, हम खेलपर आमादा। उनको इल्मसे मुहब्बत, हमको पढनेसे वहशत।. . .गरज किसी तरह जान चुरा-चुराकर, मार खाकर खानगी (प्राइवेट) तौरपर कुरान मजीद और उर्दूकी दो-एक किताबे उल्टी-सीधी खत्म करली।

जब मदर्सेमे शरीक हुए, किसी हीले-बहानेकी चन्दाँ जरूरत न पडी। किताबोका बस्ता बगलमे दबाकर शौकीन बच्चेकी तरह घरसे निकल जाते। बागो और जगलोकी सैर किया करते और फिर अस्र (शाम)के वक्त उसी तरह बस्ता बगलमे लिये हुए घर वापिस आ जाते। आखिर एक दिन वालिदाको हमारी आवारागर्दीका पता चल ही गया।

एक रोज हमारे दर्वाजेके सामनेसे कहारोके कन्धोपर पालकीमे सवार कोई अमीर जा रहा था। पालकी पकडे हुए एक आदमी भी साथ-साथ दौड़ रहा था। वालिदाने हमे बुलाकर दिखाया और कहा "देखो और अच्छी तरह समझो। एक आदमी सवार है, एक पाँव पैदल पालकीके साथ-साथ दौड रहा है। बताओ इन दोनोमे-से किसकी ज़िन्दगी तुम्हे पसन्द है ?" हमने कहा—"पालकी सवारकी"।.... वालिदाने कहा—"ऐसी ज़िन्दगी तो बगैर इल्मके किसीको नसीब नही हो सकती। अगर न पढोगे तो तुमको भी इसी दूसरे आदमीकी तरह पालकीके साथ दौडना पडेगा।"

वक्तकी बात, गुफ्तगूका असर, इस बेगवहा मिसालसे हम बहुत सहम गये और आइन्दा खेलनेसे तौबा करके पढने-लिखनेका अहद कर लिया—

दिलपै लगी जाके हथौड़ेकी तरह।
कहनेको जाहिरमें वह एक बात थी॥
कर दिया दम भरमें इधर-से-उधर।
बात थी या कोई करामात थी[1]॥

---

[1]नकूश जनवरी १९५९ पृ० ३२९-३०।

अमजद बहुत परिश्रमी और अध्ययनशील थे। जिन उस्तादसे आपने फ़ारसी-का अध्ययन किया, वे आपके मकानसे १४ मील दूर रहते थे। फिर भी आप उनके पास दैनिक पढ़ने जाते थे। इस परिश्रमका परिणाम यह हुआ कि आपने फारसीमे मुंशी फाज़िलकी सर्वोच्च डिगरी प्राप्त की।

हैदराबाद उन दिनों शेरो-शाइरीका मुख्य केन्द्र बना हुआ था। मिर्ज़ा 'दाग'-जैसे ख्यातिप्राप्त उस्ताद हैदराबादमें जलवा-फ़र्मा थे। दो हज़ारके लगभग उनके शिष्य भारतके कोने-कोनेमे बिखरे हुए थे। 'दाग' की गज़लसराईसे जब समस्त भारत गमक रहा था, तब हैदराबादकी साहित्यिक मजलिसोंके तो ठाट ही निराले होंगे, जहाँ वे स्वयं अपनी ज़बाने-मुबारकसे गज़ल पढ़ते थे। स्थानीय लोगोंके अतिरिक्त बीसों शिष्य दिल्ली, इलाहाबाद, एटा, पंजाब आदि-जैसे सुदूर शहरोंसे उस्तादकी ख़िदमतमे रहते थे। महाराजा सर किशनप्रसाद 'शाद' जो कि हैदराबाद राज्यके प्रधान मंत्री थे, अधिक-से-अधिक शाइरोंका समागम बनाये रखते थे। उन जैसा मेहर्बा-नवाज़, कद्रदाँ, कला-पारखी और उदार-हृदय प्रधान शासक जहाँ मौजूद हो और स्वयं नवाब हैदराबाद मिर्ज़ा 'दाग'के शिष्य हों, और शेरो-शाइरीमे दिलचस्पी लेते हों, उस हैदराबादका क्या कहना? गली-गली, कूचे-कूचेमें मुशाअरोंकी महफिले जमती थी। 'दाग'के अतिरिक्त उत्तरी भारतमे 'सरशार', 'तुर्की', 'गिरामी', 'ज़हीर' वगैरह भी रौनक अफ़रोज थे। इसी वातावरणमे अमजद भी परवान चढ रहे थे। चुनांचे शाइरीका शौक बचपनमे ही हो गया। कहींसे 'नासिख'का दीवान हाथ लग गया, अतः चुपचाप उसे पढ़ते रहते और शेर कहनेका अभ्यास करते रहते थे। पहले-पहल आपने यह शेर मौज़ूं किया—

> नहीं ग़म गरचे दुश्मन हो गया है, आस्मां अपना।
> मगर या रब! न हो, नामेहरबाँ वोह मेहरबाँ अपना॥

जीविकोपार्जनके लिए आप स्कूलमें शिक्षक हो गये, और उसी अल्प वेतनमे स्वाभिमानके साथ सन्तोषपूर्वक जीवन-निर्वाह कर रहे थे, कि

दैवसे आपका यह सुख भी नही देखा गया। आपकी माँ, पत्नी और पुत्री दरियामे डूब गये। किसी तरह कई फर्लांग मौजोके थपेडे खाकर अकेले 'अमजद' साहब बचे। इस दुर्घटनासे आपको बहुत सद्मा पहुँचा।

इस दर्दनाक मज़रका हाल खुद अमजद साहबके दिले-पुरदर्दसे सुना जाय-

"हमारा मकान मूसा नदीसे कोई साठ गज़के फासिले पर था। शाम ही से मूसा नदी लबरेज होकर अपने दोनो साहिलो (किनारो) की तरफ सैले-बला की तरह बढ रही थी। रातके दस बजेतक तो बढते हुए पानीने गनीम (आक्रमणकारी) की फौजकी तरह चारो तरफसे मुहासेरा कर लिया था। थोडी ही देरके बाद कमरेके हालमे पानी आ गया। हम उधरसे भागकर दूसरी तरफ जा बैठे। उधर भी दम लेने न पाये कि सहन्का पानी दर्वाजेके रास्ते चढता हुआ ऊपर आ गया। आखिर एक तख्त बीचमे डालकर हम सब उसपर बैठ गये। हमारे लिए यह बहुत नाजुक वक्त था। दोनो तरफसे पानी बराबर चढता-उतरता आ रहा था। न इधर कोई रास्ता न उधर कोई मफर (भागनेकी जगह) इधर मौत उधर मलिकुल मौत।... हम एक तरफ, माँ एक तरफ, बीबी एक तरफ, बच्ची एक तरफ। सब मुन्तशिर (अलग-अलग) हो गये। इस जगह भी कुदरतका करिश्मा देखनेके काबिल है। हमारा कदम डूबनेके बाद जमीनकी जगह घासके छप्परपर जा पडा। डूबतेको तिनकेका सहारा। कुछ वक्त उसीपर गुजर गया। यहाँतक कि सुबह नमूदार हुई। नदीकी जदसे शहरकी फसील (परिकोटा) का एक हिस्सा गिर पडा। जिसकी वजहसे नदीका सिमटा हुआ ज़ोर दूर-दूर फैलकर हमारी तरफ भी मुन्तकिल हो गया। माँने बेटेकी आवाज सुन ली। उस आलमे-बद-हवासीमे हाथ बढाकर एक पतली-सी डाली पकड ली और मेरी तरफ देखकर कहा—"हाय बेटा! मेरे दोनो चाँद (बहू और पोती) डूब गये।" हमने कहा खैर जो हुआ सो हुआ। तुम तो किसी तरह बच जाओ। ...और वह पतली-सी डाली भी हाथसे छूट गई। अम्माके दो चाँदोकी तरह हमारा एक चान्द (माँ) भी पानीमे हमेशाके लिए डूब गया।

नगे-खान्दान, खान्दानको डुबोकर डूबते-डूबते नदीके ज़बर्दस्त धारेमें
ृ चले। इसी धारमें कुछ दूर बहने और ज़नाने हस्पतालके महाज़ोंमें
ानेके बाद हस्पतालकी बीमार औरतोंने हिम्मत करके डूबते हुएको बचा
लया। बेग़ैरतकी बला दूर, अज़ीज़ोंको खोकर नंगे-धड़ंगे, भयानक सूरत,
डरावना चेहरा लिये हुए एक मर्तबा फिर किनारे लग गये। बहनेवाले
बह गये, डूबनेवाले डूब गये और ऐसे गये कि लाशोंतकका पता न
मिला—

सैलाबमें जिस्मे-चार गोया खस था।
इफ़्रात् मुहीते-ग़म कसो-नाकस था॥
इतने दरियामें भी न डूबा 'अमजद'!
ग़ैरतवालेको एक चुल्लू बस था[1]॥

अमजदने बहुत दुर्दिन देखे हैं। दरिद्रताका यह हाल था कि दो रुपये माहवारपर एक लड़कीको पढ़ानेके लिए चार मील पैदल जाया करते थे। बहुत प्रयत्नों और अनेक स्थानोंकी ख़ाक छाननेके बाद आपको १५ रु० मासिककी मुदर्रिसी मिली।

फिर क़िस्मतने ज़ोर मारा तो आप मुदर्रिसीके चक्करसे निकलकर दीवानी अदालतमें नियुक्त हो गये। जहाँ आप ४० रु० से बढ़ते-बढ़ते ६०० रु० मासिक वेतन पाने लगे, और पेंशन होनेपर ४०० रु० मासिक वज़ीफ़ा मिलता रहा।

आप स्वाभिमानी, मेहमाँनवाज़, विनम्र और सरल एवं सादा स्वभाव-के बुज़ुर्ग हैं। आप ग़ज़ल और नज़्म दोनों ही कहते हैं।

खेद है कि हमें आपका दीवान दस्तयाब न हुआ। अतः पत्र-पत्रिकाओंसे चुनकर कुछ ग़ज़लोंके शेर और कुछ रुबाइयाँ दे रहे हैं—

---

[1]नकूश जनवरी १९५६ ई० पृ० ३३१-३२।

नालए-जाने-ख़स्ता-जाँ,[1] अर्शेबरींपै[2] जाये क्यों ?
मेरे लिए ज़मीनपर साहबे-अर्श[3] आये क्यों ?
नूरे-ज़मीन-ओ-आस्माँ, दीदए-दिलमें आये क्यों ?
मेरे सियाह-ख़ानेमें कोई दिया जलाये क्यों ?
ज़ख्मको घाव क्यों बनाओ ? दर्दको और क्यों बढ़ाओ ?
निसबते-हूको[4] तोड़कर कीजिए हाये-हाये क्यों ?
बख्शनेवाला जब मेरा उफ़्वपै[5] है तुला हुआ ?
मुझ-सा गुनाहगार फिर जुर्मसे बाज़ आये क्यों ?
'अमजदे'-ख़स्ता हालकी पूरी हो क्योंकर आर्ज़ू ।
दिल ही नहीं जब उसके पास, मतलबे-दिल बर आये क्यों ?

अमजद सूफ़ी ख़यालके हैं । आपका इश्क़ ईश्वरीय और भाव दार्शनिक हैं । उसी दृष्टिसे निम्न अशआर अवलोकन कीजिए—

हम तो एक बार उसके हो जायें ।
वोह हमारा हुआ, हुआ, न हुआ ॥
ढूँढता हूँ मैं हर नफ़स[6] उसको ।
मुझसे जो एक नफ़स[7] जुदा न हुआ ॥
क्या मिला वहदते-वजूदोसे[8] ?
बन्दा, बन्दा रहा, ख़ुदा न हुआ ॥
बन्दगीमें यह किब्रियाई[9] है ?
ख़ैर गुज़री कि मैं ख़ुदा न हुआ ॥

---

[1]निर्बल शरीरवाले दिलकी आहें ; [2]ऊँचे आकाशपर, ईश्वरके आसनके समीप तक ; [3]भगवान् ; [4]'हू*' के रिश्तेको, [5]क्षमाशीलतापै ; [6]हर स्वासमें ; [7]एक लमहेको , [8]एक ईश्वरवादसे , [9]बड़ाई, अभिमान, ईश्वर बनना ।

*सूफ़ी लोग ईश्वर-लीनताके निमित्त 'अल्लाहू'की रट लगाते हैं, इसीको 'हू'का रिश्ता कहते हैं ।

अमजद हैदराबादी

किस तरह नजर आये वोह पर्दानशीं 'अमजद' !
हर पर्देके बाद और एक पर्दा नजर आता है ॥*

वोह करते हैं सब छुपकर, तद्बीर इसे कहते हैं।
हम घर लिये जाते हैं तक्दीर इसे कहते हैं ॥†

चन्द रुबाइयात—

हर जर्रेपै फ़ज्ले-किब्रिया[1] होता है।
इक चश्मे-जदनमें[2] क्या-से-क्या होता है॥
असनाम दबी जबाँसे यह कहते हैं—
"वोह चाहे तो पत्थर भी खुदा होता है॥"

हर गामपै चकराके गिरा जाता हूँ।
नक़्शे-कफ़े-पा बनके मिटा जाता हूँ॥
तू भी तो सम्भाल मेरे देनेवाले !
मैं बारे-अमानतमें दबा जाता हूँ॥

इस जिस्मकी केचुलीमें इक नाग भी है।
आवाजे-शिकस्ता दिलमें इक राग भी है॥
बेकार नहीं बना है, इक तिनका भी।
खामोश दियासलाईमें इक आग भी है॥

---

*आह पर्दा तो कोई मानए-दीदार नहीं।
अपनी गफ़लतके सिवा कुछ दरो-दीवार नहीं॥

†हम ख्वाबमेंवाँ पहुँचे, तद्बीर इसे कहते हैं।
वोह नींदसे चौंक उट्ठे, तकदीर इसे कहते हैं॥ —अज्ञात

[1]ईश्वरीय कृपा, [2]पलक मारते।

हर चीजका खोना भी बड़ी दौलत है।
बेफ़िक्रीसे सोना भी बड़ी दौलत है॥
इफ्लासने[1] सख़्त मौत[2] आसाँ कर दी।
दौलतका न होना भी बड़ी दौलत है॥

साँचेमें अजलके[3] हर घड़ी ढलती है।
हर वक़्त यह शमए-जिन्दगी जलती है॥
आती-जाती है साँस अन्दर-बाहर।
या उ़म्रके हल्कपर छुरी चलती है॥

हासिल न किया महरसे[4] ज़र्रा तुमने।
दरियासे पिया न एक कतरा तुमने॥
'अमजद' साहब ! ख़ुदाको क्या समझोगे ?
अबतक ख़ुद ही को जब न समझा तुमने॥

—आजकल १५ जुलाई १९४६ ई०

कामयाबीके नहीं हम ज़िम्मेदार।
कामकी हदतक हमारा काम है॥
जब्र उस मुख़्तारपर क्योंकर करें ?
अ़र्ज़ कर देना हमारा काम है॥

हुस्ने-सूरतको नहीं कहते हैं हुस्न।
हुस्न तो हुस्ने-अ़मलका नाम है॥
रह सके किस तरह 'अमजद' मुत्मइन !
जिन्दगी ख़ौफ़े-ख़ुदाका नाम है॥

—आजकल जून १९४६ ई०

---

[1]निर्धनताने ; [2]कठिनतासे आनेवाली मृत्यु, दुखदमृत्यु ; [3]मौत-के ; [4]सूर्यसे।

तू कानका कच्चा है तो बहरा हो जा।
बदबीं[1] है अगर आँख तो अन्धा हो जा॥
ग़ाली-ग़ीबत[2] दरोगगोई[3] कबतक?
'अमजद' क्यों बोलता है, गूँगा हो जा॥

मत सुन पर्देकी बात बहरा हो जा।
मत कह असरारे-ग़नीम[4] गूँगा हो जा॥
वोह रूए-लतीफ़[5] और यह नापाक नज़र[6]।
'अमजद' क्यों देखता है अन्धा हो जा॥

दुनियाके हरइक ज़र्रेसे घबराता हूँ।
ग़म सामने आता है, जिधर जाता हूँ॥
रहते हुए इस जहाँमें मुद्दत गुज़री।
फिर भी अपनेको अजनबी पाता हूँ॥

दिल शाद[7] अगर नहीं तो नाशाद सही।
लबपर नग़मा[8] नहीं तो फ़रियाद सही॥
हमसे दामन छुड़ाके जानेवाले!
जा-जा गर तू नहीं तेरी याद सही॥

गुलज़ार[9] भी सहरा[10] नज़र आता है मुझे।
अपना भी पराया नज़र आता है मुझे॥
दरिया-ए-वजूदमें है तूफ़ाने-अदम[11]।
हर क़तरेमें ख़तरा नज़र आता है मुझे॥

—आजकल फ़रवरी १९५४ ई०

---

[1]कुदृष्टि; [2]पीठ पीछे बुराई; [3]असत्य सम्भाषण; [4]शत्रुका भेद; [5]पवित्र चेहरा; [6]गन्दी निगाह; [7]प्रसन्न; [8]संगीत; [9]उद्यान; [10]वीरान जंगल; [11]अस्तित्व रूपी दरियामें नेस्ती रूपी तूफ़ान।

सब कहते हैं मर्कज़े-बदी[1] है दुनिया।
किसकी ? मरदूदकी[2] हुई है दुनिया॥
शाकी[3] दुनियाका है, हरएक दुनियामें।
आखिर किसके लिए बनी है दुनिया ?

तस्कीन[4] नहीं जानको जानाँके[5] सिवा।
मोमिनको नहीं सुकून, ईमाँके सिवा॥
माँ बच्चेको मारती है लेकिन फिर भी।
बच्चेको कहीं पनाह[6] नहीं माँके सिवा॥

है उनको यही ख़ुशी कि हम ग़ममें रहें।
हरवक़्त सदाए-इरहम-इरहममें[7] रहें॥
है मक़्सदे-दम कि दम न लें हमदम भर।
जबतक दम है तलाशे-हम-दममें रहें॥

जो कुछ भी मुसीबतें हैं तुझपर कम है।
ख़ुशियाँ दुनियाकी तेरे हक़में सम हैं॥
ग़मसे क्यों दूर भागता है 'असजद' !
मालूम नहीं तुझे कि ग़ममें हम हैं॥

तहरीक मार्च १९५६

ग़जल

बरबाद न कर बेकसका चमन, बेदर्द खिज़ाँसे कौन कहे।
ताराज[8] न कर मेरा खिरमन[9], उस बर्क़-तपाँसे[10] कौन कहे।

---

[1]बुराईका केन्द्र; [2]बहिष्कृतकी; [3]बुरा कहनेवाला; [4]... [5]प्यारेके बिना; [6]शरण; [7]हे दीनदयालु ! दयाकर-दयाकर पु...; [8]नष्ट; [9]खलिहान; [10]कौन्दती हुई बिजलीसे।

अमजद हैदराबादी

मुझ खस्ता जिगरकी जान न ले, यह कौन अजलको[1] समझाये।
कुछ देर ठहर जा ऐ दरिया! दरिया-ए-रवाँसे[2] कौन कहे॥
सीनेमें बहुत गम हैं पिन्हाँ[3] और दिलमें हजारों हैं अरमाँ।
इस कहरे-मुजस्सिमके[4] आगे, हाल अपना जबाँसे कौन कहे॥
हरचन्द हमारी हालतपर रहम आता है हरइकको लेकिन—
कौन आपको आफतमें डाले, उस आफ़ते-जाँसे कौन कहे॥
कासिदके बयाँका ऐ 'अमजद' क्योंकर हो असर उनके दिलपर।
जिस दर्दसे तुम खुद कहते हो, उस तर्जे-बयाँसे कौन कहे॥

—आजकल फरवरी १९५४ ई०



किस शानसे 'मैं' कहता हूँ, अल्लाहरे मैं।
समझा नहीं 'मैं' को आजतक वाहरे मैं॥

[२ सितम्बर १९५७ ई०]

---

[1]मृत्युको, [2]बहते हुए दरियामें; [3]छिपे हुए; [4]साक्षात गजबके।